कुमारसम्भवम्

(पञ्चमः सर्गः)

(भूमिका, प्रसङ्ग, मूल, मल्लिनाथकृतसञ्जीवनीटीका, चरित्रवर्धनाचार्यकृतशिशुहितैषिणीटीका, अन्वय, हिन्दी-आंग्लानुवाद, संस्कृत-हिन्दी शब्दार्थ, हिन्दी-संस्कृत भावार्थ, व्याकरण, कोश, अलंकार, छन्द सहित)

लेखक

डॉ० कुन्दन कुमार

एम० ए० संस्कृत, पीएच० डी०, साहित्याचार्य

भूमिका लेखक

महामहोपाध्याय **प्रो० उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि'**

(राष्ट्रपति सम्मानित)

पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष

पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

सारस्वतम् पब्लिकेशन

पटना, बिहार

प्रकाशक :
सारस्वतम् पब्लिकेशन
बाँकीपुर गोरख, पो॰ - फतुहा,
जिला - पटना, बिहार - 803201

क्षेत्रीय कार्यालय - 27/28,
शक्ति नगर, दिल्ली – 110007

अधिकृत वितरक : परिमल पब्लिकेशन्स, 22/3,
शक्ति नगर, दिल्ली – 110007
Website : www.saraswatam.com
E-mail : saraswatampublication@gmail.com
दूरभाष - 8510875530, 7042215874

प्रथम संस्करण – 2021 ई॰

© प्रकाशक

ISBN: 978-81-949692-8-0

मूल्य: ₹ 125

मुद्रक:
बालाजी प्रेस
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

कुमारसम्भवम्
(पञ्चमः सर्गः)

1

प्रसङ्ग → भगवान् शिव की पूर्वपत्नी भगवती सती थी। एक बार सती के पिता दक्ष ने यज्ञ का आयोजन किया किन्तु पार्वती और शिव को निमन्त्रित नहीं किया। अपने पति के द्वारा मना करने के बाद भी सती दक्ष के यज्ञ में चली गई जहाँ यज्ञ में पूजित देवताओं में शिव के स्थान को न देखकर उसने बहुत अपमानित अनुभव किया और यज्ञकुण्ड में कूदकर अपने प्राण त्याग दिये। सती के वियोग में क्रोधित शिव ने यज्ञ का विध्वंस करने के पश्चात् हिमालय पर समाधि धारण कर लिया। जन्मान्तर में उसी सती ने पर्वतराज हिमालय और मैना की पुत्री पार्वती के रूप में जन्म ग्रहण किया। कालान्तर में देवर्षि नारद ने हिमालय के समक्ष भविष्यवाणी करते हुए कहा कि पार्वती का विवाह भगवान् शिव के साथ होगा। इस भविष्यवाणी से प्रभावित होकर पार्वती ने मन ही मन शिव को पति के रूप में वरण करने का निश्चय कर लिया। माता मेना के मना करन के बाद भी पिता हिमालय की आज्ञा लेकर पार्वती शिव को पति के रूप में प्राप्ति हेतु तपश्चर्या करने शिव के तपःस्थल गौरीशिखर पर चली गई। इधर तारकासुर से त्रस्त देवतागण ब्रह्मा के पास समाधान हेतु पहुँचे। तब ब्रह्मा ने बताया कि शिव और पार्वती से उत्पन्न पुत्र ही तारकासुर का वध करेगा। परन्तु शिव की तपस्या खत्म न हो पाने के कारण व्यग्र देवताओं ने शिव की तपस्या भङ्ग करने और पार्वती के प्रति शिव के हृदय में प्रेम उत्पन्न करने के उद्देश्य से कामदेव को भेजा। कामदेव के प्रयास से शिव जी की तपस्या तो भङ्ग हुई किन्तु क्रोधित शिव ने अपने तृतीय नेत्र की ज्वाला से कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया। उपरोक्त चतुर्थ सर्ग की कथा के उपरान्त महाकवि कालिदास पञ्चम सर्ग में पार्वती की अवस्था और तपश्चर्या का वृत्तान्त लिखते हैं -

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥

(सञ्जी०) तथेति। पर्वतस्यापत्यं स्त्री **पार्वती तथा** तेन प्रकारेणाक्ष्णोः समीपे **समक्षं** पुरतः। "अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०" इत्यादिनाव्ययीभावः। **मनोभवं** मन्मथं **दहता** भस्मीकुर्वता **पिनाकिना** ईश्वरेण [**भग्नम-**

नोरथा]भग्नः खण्डितो मनोरथोऽभिलाषो यस्याः सा तथोक्ता सती **हृदयेन** मनसा **रूपं** सौन्दर्यं **निनिन्द**। धिग्मे रूपं यद्धरमनोहरणाय नालमिति गर्हितवतीत्यर्थः युक्तं चैतदित्याह - तथाहि। **चारुता** सौन्दर्यं **प्रियेषु** पतिषु विषये [**सौभाग्यंफला**] सौभाग्यं प्रियावल्लभ्यं फलं यस्याः सा तथोक्ता। सौन्दर्यस्य तदेव फलं यद्भर्तृसौभाग्यं लभ्यते। नो चेतिफलं तदिति भावः। अस्मिन्सर्गे वंशस्थं वृत्तम् - (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ) इति लक्षणात्॥

(शिशु०) तथेति। सा पार्वती हृदयेन चित्तेन रूपं सौन्दर्यं निनिन्द निर्भर्त्सितवती। कीदृशी तथा तेन प्रकारेण पिनाकिना हरेण भग्नमनोरथा भग्नः खण्डितो मनोरथो हरो मे भर्ता स्यादित्येवंरूपोऽभिलाषो यस्याः सा तथा। कीदृशेन पिनाकिना। समक्षं प्रत्यक्षमेव मनोभवं कामं दहता ज्वालयता। किमित्येतावतैव रूपं,निनिन्देत्याह। प्रियेष्वित्यादि। यस्माच्चारुता सुन्दरता प्रियेषु सौभाग्यफला सौभाग्यमेव फलं यस्याः सा तथा। येन रूपेण प्रियवल्लभा न भवति। तद्रूपं व्यर्थमित्यर्थः। सर्गे चात्र वंशस्थं वृत्तम्। तल्लक्षणं (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ) इति॥

अन्वयः → तथा समक्षं मनोभवं दहता पिनाकिना भग्नमनोरथा सती पार्वती हृदयेन रूपं निनिन्द हि चारुता प्रियेषु सौभाग्यफला (भवति)।

अर्थ → उस प्रकार से अपनी आँखों के सामने कामदेव को भस्म करते हुए शिव के द्वारा अपनी मनोकामना (शिव को अपने पति के रूप में पाने की इच्छा) के नष्ट हो जाने पर पार्वती ने हृदय से (अपने) रूप की निन्दा की, क्योंकि सौन्दर्य प्रियतम विषयक सौभाग्य रूप फल (इच्छित वर प्राप्ति ही सौभाग्य है वही सौभाग्य रूपी फल है जिसका) को देने वाली होती है।

शब्दार्थ → **तथा** = (तेन प्रकारेण) उस प्रकार से, **समक्षं** = (अग्रे, पुरतः, स्वसम्मुखं) अपनी आँखों के सामने, **मनोभवं** = (मदनम्, कामदेवं) कामदेव को, **दहता** = (भस्मसात्कुर्वता, भस्मीकुर्वता) जलाते हुए, **पिनाकिना** = (महादेवेन, शङ्करेण) पिनाक धनुषधारी शंकर के द्वारा (पिनाक नामक धनुष को धारण करने के कारण भगवान् शिव को पिनाकी कहा जाता है), **भग्नमनोरथा** = (नष्टाभिलाषा खण्डितहरप्राप्तिरूपाभिलासा) खण्डित अभिलाषा वाली, **सती** = (भवन्ती) होती हुई, **पार्वती** = (हिमालयपुत्री, पर्वत-पुत्री गौरी) पर्वतराज हिमालय की पुत्री ने, **हृदयेन** = (हृदा, मनसा) पूर्ण मन से, **रूपं** = (सौन्दर्यम्, स्वकीयं रूपं) अपने सौन्दर्य को, **निनिन्द** = (गर्हयामास, निन्दितवती, गर्हितवती)

निन्दा की, **हि** = (यतः) क्योंकि (निस्सन्देह, निश्चय ही), **चारुता** = (मनोहारिता, सौन्दर्य), सुन्दरता, रम्यता **प्रियेषु** = (वल्लभेषु, पतिषु विषये, प्रेमपात्रेषु) प्रिय में, **सौभाग्यफला** = (प्रेमपरिणामा, प्रियवल्लभ्यफला) वाञ्छित पति, सौभाग्य रूपी फल वाली (भवति - होती) है।

भावार्थ → पार्वती शिव को पतिरूप में प्राप्त करने की कामना से शंकर की पूजा करती थीं। किन्तु अनेक वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जब शिव की तपस्या समाप्त नहीं हो थी तो जब देवताओं के निर्देश पर कामदेव ने अपने पुष्पबाण से शिव की तपस्या भङ्ग कर दी। अपने नेत्र खोलने के उपरान्त शिव ने पार्वती को देख कर भी अनदेखा कर दिया और क्रोधवश अपने तृतीय नेत्र की ज्वाला से कामदेव को भस्म कर दिया। अपनी आंखों के सामने ही प्रेम के देवता कामदेव को भस्म होते देखकर शिव को पति के रूप में पाने की अभिलाषा नष्ट हो जाने के कारण पार्वती अपने रूप- सौन्दर्य की हृदय से निन्दा करने लगी; क्योंकि स्त्री का सौन्दर्य तभी सौभाग्य सम्पन्न माना जाता है जब वह सौन्दर्य वाञ्छित प्रियतम पति रूप सौभाग्य को प्राप्त करने में सहायक हो। यदि स्त्री के सौन्दर्य से उसका प्रियतम ही आकृष्ट न हो सका, तो वह सौन्दर्य व्यर्थ ही है।

भावार्थः → स्वसम्मुखे भगवतः शिवस्य क्रोधाग्निना भस्मसाद्भवन्तं कामदेवं अवलोक्य पार्वती मनोरथभङ्गात् स्वकीयं सौन्दर्यं निन्दितवती यद् धिग्मे सौन्दर्यं यत् शिवस्य मनः वशीकर्तुं न समर्थमभवत्। रमणीयतायाः इदमेव फलं विद्यते यत् आकृष्टः प्रियतमः प्रसन्नो भवेदिति भावः।

व्याकरणम् → **तथा** - अव्ययपद, प्रकारवचने थाल् से तद्+थाल्, **समक्षं** - (सम्+√अक्षि+टच्) 'अक्ष्णोः समीपम्' इस व्युत्पत्ति में 'अव्ययं विभक्तिसमीप०' सूत्र से अव्ययी० समास,सम् उपसर्ग पूर्वक 'अक्षि' शब्द से 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' सूत्र से टच् प्रत्यय। अव्ययी० समास, होने के कारण 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से यह शब्द अव्यय हो जाता है। **मनोभवं** - मनसि भवतीति इस व्युत्पत्ति में (मनस्+√भू+अच्) द्वि०वि०, एक०व०। **दहता** - (दह्+शतृ) दहतीति दहन्, तेन दहता √दह् भस्मीकरणे से 'लटः शतृशान०' से शतृ प्रत्यय करने पर तृ०वि०, एक०व०। **पिनाकिना** - पिनाकः अस्यास्तीति पिनाकी, तेन पिनाकिना - पिनाक शब्द से 'अत इनिठनौ' द्वारा इनि प्रत्यय करने पर तृ०वि०, एक०व०। **भग्नमनोरथा** - (√भञ्ज्+क्त) भग्नः नष्टः वा मनोरथः हरप्राप्तिरू-

पोऽभिलाषः यस्याः सा, बहु॰ समास,स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्ययान्त प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सती -** (√अस्+शतृ+ङीप्) अस्तीति सती √अस् भुवि धातु से 'लटः शतृशानचा॰' सूत्र से शतृ प्रत्यय, 'श्नसोरल्लोपः' से अस् के 'अ' का लोप होकर स्त्रीत्व विवक्षा में 'उगितश्च' से ङीप् प्रत्ययान्त प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पार्वती** - (पर्वत+√अण्+ङीप्) पर्वतस्यात्यं स्त्री इस व्युत्पत्ति में 'तस्यापत्यम्' से अण् 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि और 'टिड्ढाणञ्द्वय' से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय प्र॰वि॰, एक॰व॰। **हृदयेन** - हृदय शब्द का तृ॰वि॰, एक॰व॰। **रूपं** - रूप शब्द का द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **निनिन्द** - √णिदि नन्दि कुत्सायाम् अर्थ में निन्द् धातु से लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **हि** - अव्ययपद। **चारुता** - (चारु+तल्+टाप्) चरति चित्रे इति चारु औणादिक अण् प्रत्यय करने पर चारु पुनः 'तस्य भावस्त्वतलौ' से तल् प्रत्यय करने पर स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्रियेषु** - प्रीणातीति 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' से 'क' प्रत्यय, सप्त॰वि॰, बहु॰व॰। यहाँ विषय सम्बन्धी समास, होने के कारण इसका अर्थ होगा 'प्रिय के विषय में'। **सौभाग्यफला** - (सुभग+ष्यञ्) सौभाग्यं फलं यस्याः सा सौभाग्यफला बहु॰ समास, प्र॰वि॰, एक॰व॰। चारुता शब्द का विशेषण।

कोशः → **पार्वती** - अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाम्बिका उमा कात्यायनी गौरी। **पिनाकी** - पिनाकोऽजगवं धनुः। मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रथमाधिपः। **मनोरथः** - इच्छा काङ्क्षास्पृहेहातृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः। कामोऽभिलाषस्तर्षश्च। **हृदय** - चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः। **प्रियः** - धवः प्रियः पतिर्भर्ता। **फलम्** - सस्ये हेतुकृते फलम्। **चारु** - सुन्दर रुचिरं चारु। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → इस श्लोक के चतुर्थ पाद में 'प्रियेषु सौभाग्याफला हि चारुता' इस सामान्य कथन के द्वारा 'निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती' इस पार्वती के विशिष्ट कथन का समर्थन हुआ है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

छन्द → कुमारसम्भव के सम्पूर्ण पञ्चम सर्ग में वंशस्थ छन्द है। सर्गान्त के 85 एवं 86 वें श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। वंशस्थ छन्द का लक्षण है -

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।
जगण तगण जगण रगण

जभान ताराज जभान राजभा
।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ
तथास मक्षं द हताम नोभवम्
। लघु अक्षर की मात्रा का द्योतक है।
ऽ दीर्घ अक्षर की मात्रा का द्योतक है।

2

प्रसङ्ग → शिव के द्वारा कामदेव को भस्म कर देने पर पार्वती का मनोरथ नष्ट हो गया, और वे जान गई कि उनका सौन्दर्य शिव को प्रभावित करने में असमर्थ है। और वे इस प्रकार उनको पतिरूप में नहीं पा सकेंगी। तब उन्होंने तपस्या करके अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने का संकल्प किया।

इयेष सा कर्तुमवन्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

(सञ्जी०) इयेषेति। **सा** पार्वती **समाधिम् ए**काग्रताम् **आस्थाय** अवलम्ब्य **तपोभिः** वक्ष्यमाणनियमैः करणभूतैः **आत्मनः** स्वस्य **अवन्ध्यरूपतां** सफलसौन्दर्यं **कर्तुम् इयेष** इच्छति स्म। तपसा शिवं वशीकर्तुमुद्युक्तेत्यर्थः। **अन्यथा** ततोऽन्यप्रकारेण **कथं** वा तत् **द्वयम् अवाप्यते।** किं तद्द्वयम्। तथाभूता विधा प्रकारो यस्य तत् **त्तथाविधं प्रेम** स्नेहः। येनार्धाङ्गहरा हरस्य भवेदिति भावः **तादृशः पतिश्च**। यो मृत्युंजय इति भावः। द्वयमेव खलु स्त्रीणामपेक्षितं तद्भर्तृवाल्लभ्यं जीवद्भर्तृकत्वं चेति। तच्च तपश्चर्यैकसाध्यमिति निश्चिकायेत्यर्थः। अत्र मनुः - (यदुष्करं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुस्तरम्। तत्सर्वं तपसा प्राप्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥) इति॥

(शिशु०) सा गौरी समाधिमास्थाय नियमं कृत्वा तपोभिर्वक्ष्यमाणव्रतविशेषैरात्मनो वन्ध्यरूपतां सफलरूपत्वं कर्तुमियेषेष्टवती। ननु सुकरोपायं त्यक्त्वा किमति क्लेशकरे तपसि प्रावर्तत इत्याह। अन्यथा तपश्चरणाभावे वा द्वयं कथं प्राप्यते लभ्यते। किं तद् द्वयं तथाविधमर्द्धशरीरहारि प्रेम तादृशः सकललोकाराध्यः पतिश्च अवन्ध्यरूपतामिति त्वतलौ गुणवचनवद्भावो वक्तव्यः। यद्वा अवन्ध्यं तद्रूपं चेति॥

अन्वयः → सा समाधिम् आस्थाय तपोभिः आत्मनः अवन्ध्यरूपतां कर्तुम् इयेष। अन्यथा तथाविधं प्रेम तादृशश्च पतिः द्वयं कथं वा अवाप्यते?

अनुवाद → उस पार्वती ने समाधि लगाकर तपस्या के द्वारा अपने

सौन्दर्य को सफल करने की इच्छा की। अन्यथा वैसा प्रेम और उस प्रकार का पति ये दोनों कैसे प्राप्त हो सकते हैं?

शब्दार्थ → **सा =** (पार्वती) उस पार्वती ने, **समाधिं** = (चित्तैकाग्र्यम्, एकाग्रताम्) चित्त की एकाग्रता को तपस्या में, **आस्थाय** = (अवलम्ब्य) आश्रय लेकर, सहारा लेकर, स्थित होकर, **तपोभिः** = (व्रतोपवासादितपोनियमैः, वक्ष्यमाणैः व्रतविशेषैः, नियमैः) - तप के कृत्यों से (दुःख- सुख, शीत- उष्ण आदि द्वन्द्वों को नियमपूर्वक सहन करना एवं व्रतों का निष्ठापूर्वक पालन करना ये सब तप के विभिन्न प्रकार हैं) **आत्मनः** = (स्वस्य) अपने, **अवन्ध्यरूपतां** = (सफलसौन्दर्यं, वन्ध्यः = निष्फलः, न वन्ध्यः अवन्ध्यः = फल युक्त, सफलसौभाग्यम्) रूप को सफल, **कर्तुं =** (विधातुं)करने के लिए, **इयेष** = (इच्छितवती, इच्छति स्म, काङ्क्षति स्म) इच्छा करने लगी, **अन्यथा =** (तपोव्रतानुष्ठानाभावे, ततोऽन्यप्रकारेण, नो चेत्) अन्य प्रकार से, नहीं तो, **तथाविधं =** (तादृक्, तादृशं) वैसा, उस प्रकार का प्रेम दिव्य अलौकिक प्रेम, **प्रेम** = (प्रीतिः, स्नेहः) प्रेम, **तादृशः च** = (तथाविधः) और वैसा, **पतिः** = (भर्ता च, स्वामी) शिव के समान दिव्य पति, **द्वयं** = (उभयम्, तदुभयं) दोनों, **कथं वा** = (केनोपायेन, केन प्रकारेण) कैसे, **अवाप्यते** = (लभ्यते, प्राप्यते) प्राप्त हो सकते हैं।

भावार्थ → कामदेव को भस्म कर देने से पार्वती को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि भगवान् शिव को सौन्दर्य से वशीभूत नहीं किया जा सकता है। तब उसने तप करके शिव को प्रसन्न करने का विचार किया। मनुस्मृति में भी प्रतिपादित किया गया है कि तपोबल से ही अतीव दुष्कर मनोरथ की पूर्ति हो सकती है -

यद् दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुस्तरम्।
तत्सर्वं तपसा प्राप्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

भावार्थः → सा पार्वती स्वेन्द्रियाणि नियम्य तपश्चर्यया शिवप्राप्तिरूपं स्वमनोरथं सफलीकर्तुम् इयेष। तदभावे तादृशः प्रणयः शिवसदृशः लोकोत्तरः पतिश्चेति द्वयं कथं प्राप्यते?

व्याकरणम् → **सा** - तद् सर्वनाम का स्त्रीलिंग, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **समाधि** - (सम्+आ+√धा+कि) समाधीयतेऽस्मिन् मनो जनैरिति। सम्+आ उपसर्ग पूर्वक √धा धातु से 'उपसर्गे घोः किः' से कि प्रत्ययान्त द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **आस्थाय** - अव्ययपद, (आ+√स्था+ल्यप्) आङ्

उपसर्ग पूर्वक √ष्ठा गतिनिवृत्तौ धातु से 'समानकर्तृकयोः०' से क्त्वा प्रत्यय पुनः उसको 'समासेऽनञ् पूर्वे क्त्वो ल्यप्' से ल्यप् आदेश करके 'क्त्वातोसुकसुनः' से अव्यय संज्ञा। **तपोभिः** - तपस् शब्द से तृ०वि०, बहु०व०। **आत्मनः** - आत्मन् शब्द का तृ०वि०, बहु०व०। **अवन्ध्यरूपतां** - न वन्ध्यम् अवन्ध्यम् नञ् समास, अवन्ध्यं (सफलं) रूपं यस्याः सा अवन्ध्यरूपा (बहु० समास) अवन्ध्यरूपायाः भावः अवन्ध्यरूपता ताम् अवन्ध्यरूपताम् द्वि०वि०, एक०व० 'तस्य भावस्त्वतलौ' से तल् प्रत्यय। **कर्तुम् -** (√कृ+तुमुन्) 'समानकर्तृकेषु तुमुन्' से एवं 'कृन्मेजन्तः' से अव्यय संज्ञा। **इयेष** - √इषु इच्छायाम्, लिट् लकार, प्र०पु०, एक०व०। **अन्यथा** - अन्य सर्वनाम से 'प्रकारवचने थाल्' एवं 'तद्धितश्चासर्व०' से अव्यय संज्ञा। **तथाविधम्** - तथा विधा यस्य तत् तथाविधम्, बहु० समास। **प्रेम -** 'प्रियस्य भावः' अर्थ में 'पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा' इमनिच् प्रत्यय एवं प्रिय शब्द को प्र आदेश तथा गुणादि कार्य होकर, प्रेम शब्द बना, प्र०वि०, एक०व०। **तादृशः** - तद् उपपद √दृश्+कञ्, प्र०वि०, एक०व०।'त्यदादिषु दृशो०' सूत्र से कञ् प्रत्यय 'आ सर्वनाम्नः' से आत्व तुलना अर्थ में। **च** - अव्ययपद। **पतिः** - पाति रक्षति, √पा+डति, प्र०वि०, एक०व०। **द्वयं** - द्वौ अवयवौ यस्य, द्वि+तयप् पुनः उसको अयच् आदेश -'संख्याया अवयवे०' से तयप् और उसको 'द्वि त्रिभ्यां तथस्यायज्वा' से अयच् आदेश, प्र०वि०, एक०व०। **कथम् -** किम् सर्वनाम से थमु प्रत्यय 'किमश्च' सूत्र से और किम् को 'क' आदेश होकर कथम्। **वा** - अव्ययपद। **अवाप्यते -** अव उपसर्ग √आप् धातु लट् लकार, प्र०पु०, ए०व०।

कोशः → समाधि - समाधिर्ध्यान - नीवाक् - नियमेषु समर्थने इति विश्वकोशः। स्युरेवं तु पुनर्वैवेत्यवधारणवाचकाः इत्यमरकोषः। **अवन्ध्य** - वन्ध्योऽफलोऽवकेशी च। **तप** - तपः कृच्छ्रादि कर्म च। **प्रेम** - प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः। **पतिः** - धवः प्रियः पतिर्भर्त्ता। इति इत्यमरकोशः।

टिप्पणी → भारतीय स्त्रियाँ अपने पति से दो प्रकार की इच्छा करती है-

(i) दृढ़ स्नेह (ii) दीर्घ जीवन। प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त ''तथाविधं प्रेम'' तथा ''तादृशः पतिः'' इन दोनों वाक्याशों से शिव के सम्बन्ध में यही अभिप्राय ध्वनित हो रहा है। अतएव पार्वती के द्वारा शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए दुष्कर तप का निश्चय युक्तिसंगत है।

प्रसङ्ग → शिव को पति के रूप में प्राप्त करने की कामना से तप करने को उद्यत जानकर पार्वती की माता मेना अत्यन्त चिन्तित हो गई। मेना सुकुमार पार्वती को कठोर तप करने से रोकने के लिए प्रयास करती है -

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात्॥

(सञ्जी०) निशम्येति। **मेना** मेनका च **गिरीशप्रतिसक्तमानसां** हरासक्तचित्तां **तपसे** तपश्चरणाय **कृतोद्यमां** कृतोद्योगां **सुतां निशम्य** श्रुत्वा **एनां** पार्वतीं **वक्षसा परिरभ्य** आलिङ्गय **महतः मुनिव्रतात्** तपसो **निवारयन्त्यी उवाच**। मुनिव्रतादित्यत्र यद्यपि मुनिव्रतस्य मेनकाया अनीप्सितत्वात् ''वारणार्थानामीप्सितः'' इति नापादानत्वं तथापि कृतोद्यमामिति मानसप्रवेशोक्तत्वात् ''ध्रुवमपायेऽपादानम्'' इत्यपादानत्वमेव स्यात्। यथाह भाष्यकारः - (यच्च मिथ्या संप्राप्य निवर्तते तच्च ध्रुवमपायेऽपादानमिति प्रसिद्धम्) ॥

(शिशु०) निशम्येति। मेना एनां सुतां गौरीं त्रिनेत्रं हरं प्रतिसक्तमानसां प्रतिबद्धमानसां तपसे कृतोद्यमां निशम्य श्रुत्वा वक्षसा परिरभ्योवाच। कीदृशी मेना महतो मुनिव्रता निवारयन्ती निषेधयन्ती॥

अन्वयः → मेना गिरीशप्रतिसक्तमानसां तपसे कृतोद्यमां च सुतां निशम्य एनां वक्षसा परिरभ्य महतः मुनिव्रतात् निवारयन्ती उवाच।

अनुवाद → मेना (हिमालय की पत्नी) शिव के प्रति आसक्त हृदयवाली पुत्री को तपस्या करने के लिए उद्यत सुनकर(जानकर) वक्षस्थल से (उस पार्वती को) लगाकर कठोर मुनिव्रत (तप) से रोकती हुए बोली।

शब्दार्थ → **मेना** = पार्वती की माँ (पर्वतराज हिमालय की पत्नी, हिमालयमाता), **गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्** = (शंकरासक्तहृदयाम्, शिवासक्तचित्ताम्, शिवलग्नचित्ताम्) शिव के प्रति अनुरक्त मन वाली, **तपसे** = (तपश्चरणाय, तपश्चरितुम्) तपस्या के लिए, **कृतोद्यमां** = (विहितप्रयत्नां, विहितोद्योगाम्, कृतनिश्चयाम्) उद्यमयुक्त, **सुतां** = (पुत्रीं, तनयाम्) पुत्री को, **निशम्य** = (श्रुत्वा, आकर्ण्य) सुन कर, **मेना** = (पार्वतीमाता) पार्वती की माता, **एनां =** (पुत्रीं पार्वतीं) इस (पुत्री) को, **वक्षसा** = (उरसा, हृदयेन) छाती से, **परिरभ्य** = (समालिङ्ग्य, आलिङ्गय) आलिंङ्गन करके, **महतः** = (बृहतः, अतिदुष्करात्, भूयसः) महान्, **मुनिव्रतात्** = (तपस्यातः, तपसः) तपस्वियों के समान तप से, **निवारयन्ती** = (नि-

षेधयन्ती, प्रतिषेधयन्ती) रोकती हुई, **उवाच** = (अब्रवीत्) बोली।

भावार्थ → पार्वती तप हेतु कृतसंकल्प है यह जानकर माता मेना अत्यन्त चिन्तित हो गयी। सम्भावित तपजन्य कष्ट की आशंका से चिन्तित माता मेना अपव्य स्नेह वश अपनी पुत्री पार्वती का आलिङ्गन करके समझाने लगी।

भावार्थः → माता मेनका पुत्रीं पर्वतीं तपसे कृतनिश्चयां शिवासक्त-चेतसां च ज्ञात्वा वक्षसा गाढमालिङ्ग्य दुष्करतपश्चरणाद् निवारयन्ती सती वक्ष्यमाणवचनं उक्तवती।

व्याकरणम् → **मेना** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **गिरीशप्रतिसक्तमानसां** - (गिरि+ईश) गिरेः ईशः गिरीशः (ष॰तत्पुरुष) गिरीशे प्रतिसक्तमानसः यस्याः सा तां गिरीशप्रतिसक्तमानसां (बहु॰ समास)। **प्रतिसक्तं** - (प्रति-+√सञ्ज+क्त) मानसं यस्या सा (बहु॰ समास), ताम् द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **तपसे** - तपस् शब्द का च॰वि॰, एक॰व॰। **कृतोद्यमां** - कृतः उद्यमो यया सा (बहु॰ समास) ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **सुतां** - सुता शब्द, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **निशम्य** - निशम्य = नि+√शम्+ल्यप्, नि उपसर्ग पूर्वक √शमु उपशमने धातु से क्त्वा प्रत्यय एवं ल्यप् आदेश, अव्ययपद। **एनां** - इदम् शब्द का स्त्री॰ में द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **वक्षसा -** वक्षस् शब्द का तृ॰वि॰, एक॰व॰। **परिरभ्य** - (परि+√रभ्+ल्यप्) परि उपसर्ग √रभि शब्दे धातु में क्त्वा और ल्यप् आदेश, अव्ययपद। **महतः -** महत् शब्द का पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **मुनिव्रतात्** - मुनीनां व्रतं मुनिव्रतं (ष॰ तत्पु॰ समास) तस्मात्, पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **निवारयन्ती** - (नि+√वृ+णिच्+शतृ+ङीप्) नि उपसर्ग√वृ धातु णिच् प्रत्यय से निवारि पुनः शतृ प्रत्यय एवं स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् (उगितश्च से) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **उवाच** - √वच् परि-भाषणे = ब्रू+लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰ (इस क्रिया का कर्ता 'मेना' तथा कर्म 'एनां' है)।

कोशः → **सुता** - सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी प्राहुर्दुहितरः सर्वे। **गिरीश** - गिरीशो मृडः। **मानसं** - स्वान्तं हृन्मानसं मनः। **वक्षः** - उरो वत्सञ्च वक्षश्च। **महत्** - विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्। **मुनि** - तपस्वी तापसः पारिकाङ्क्षी वाचंयमी मुनिः। **व्रत** - नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवा-सादि पुण्यकम्। इत्यमरकोशः।

4

प्रसङ्ग → मेना अपनी पुत्री पार्वती को समझाती हुई कहती है कि

कोमल शरीर से कठोर तप सम्भव नहीं है। तथा कार्य सिद्धि हेतु तप के अतिरिक्त अन्य सरल उपाय हैं -

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः॥

(सञ्जी०) मनीषिता इति। हे **वत्से!** मनस ईषिता इष्टा **मनीषिताः**। शकन्ध्वादित्वात्साधुः। **देवताः** शच्यादयो **गृहेषु सन्ति**। त्वं ता आराधयेति शेषः। **तपः क्व**। तवेदं **तावकम्**। "युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च" इत्यण्प्रत्ययः। 'तवकममकावेकवचने' इति तवकादेशः। वपुश्च क्व। तथाहि। **पेलवं** मृदुलं **शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य** भृङ्गस्य **पदं** पदस्थितिं **सहेत**। **पतत्रिणः पुनः** पक्षिणस्तु पदं न सहेत। अतिसौकुमार्याद्दिव्योपभोगयोग्यं ते वपुर्न दारुणतपःक्षममित्यर्थः। अत्र दृष्टान्तालंकारः।

(शिशु०) मनीषिता इति। इति ध्रुवेच्छामिति। युग्मं देवताराधनार्थं चेत्तपसि तर्हि तपश्चर्या न कर्तव्या। भो वत्से पुत्रि! मनीषिता अभीष्टदेवताः गृहेषु सन्ति। सन्तु देवतास्तथापि तपस्यामीत्यशङ्क्याह। तपः क्लेशरूपं क्व। तावकं त्वदीयं सुकुमारं वपु क्व च। दृष्टान्तेनैतदेव समर्थयति। पेलवं पेशलं शिरीषं पुष्पं भ्रमरस्य भृङ्गस्य पदमवस्थितिं सहेत। षट्पदभारं सोढुं शक्नोतीत्यर्थः। पुनः पतत्रिणः पक्षिणो न॥

अन्वयः → वत्से! मनीषिताः देवताः गृहेषु सन्ति। तपः क्व? तावकं वपुश्च क्व? पेलवं शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य पदं सहेत पतत्रिणः पुनः न (सहेत)।

अनुवाद → हे पुत्री! मनोवाञ्छित फलों को देने वाले देवतागण तो घर में ही हैं। कहाँ तो यह कठोर तप और कहाँ तुम्हारा यह कोमल शरीर? अत्यन्त कोमल शिरीष का पुष्प भ्रमर के पैर के भार को तो सहन कर सकता है किन्तु पक्षियों के पैर के भार को तो कभी सहन नहीं कर सकता है।

शब्दार्थ → **वत्से** = हे पुत्रि! **मनीषिताः** = (अभीष्टाः, इष्टार्थप्रदाः) मनोवाञ्छित अभीष्ट (मनचाहे), **देवताः** = (देवगणाः, सुराः) देवगण, **गृहेषु** = (अस्माकं सदनेषु, भवनेषु) घरों में ही, हिमालय के विभिन्न भागों में, **सन्ति** = (विद्यन्ते, वर्तन्ते) हैं, **तपः** = (नियमव्रतं, व्रतम्) तपस्या, **क्व** = (कुत्र) कहाँ, **च** = (तथा) और, **तावकं** = (त्वदीयं) तुम्हारा, **वपुः** = (शरीरं) शरीर, **क्व** = (कुत्र) कहाँ, **पेलवं** = (सुकुमारं, कोमल) **शिरीषपुष्पं** = (शिरीषकुसुमं) शिरीष का फूल, **भ्रमरस्य** = (भृ-

ङ्गस्य,षट्पदस्य) भँवरे की, **पदं** = (चरणस्थितिं, अवस्थानम्, अवस्थितिम्) पदस्थिति को, **सहेत** = (सोढुं शक्नुयात् मर्षयेत्) सह सकता है, **पतत्रिणः** = (पक्षिणः, विहगस्य) पक्षी के, **पुनः** = (भूयः चरणस्थितिं, तु) तो फिर चरणनिक्षेप को, **न** = (न मर्षयेत्, सोढुं न शक्नुयात्) नहीं।

भावार्थ → मेना पार्वती को समझाते हुए कहती है घर में (हिमालय पर) ही अभीष्ट मनोरथों को पूर्ण करने वाले अनेक देवी- देवता विद्यमान हैं जिनकी आराधना करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर सकती हो। कहाँ तुम राजमहल की सुखसुविधा में पली- बढ़ी और सुकोमल शरीर वाली हो और कहाँ तपस्या की कठोर दिनचर्या है। क्योंकि कोमल शिरीष का पुष्प भ्रमर के भार को तो सह सकता है किन्तु किसी पक्षी के भार को तो कदापि नहीं। जिस प्रकार पक्षी के भार से पुष्प टूट जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा कोमल शरीर भी तपजन्य कष्ट को सहन नहीं कर सकेगा। अतः तप का विचार त्याग कर घर में ही रहते हुए मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति हेतु इष्ट देवता की आराधना करो।

भावार्थः → हे पुत्रि पार्वति! मनोऽभीष्टदायिकाः देवताः भवनेषु एव उपस्थिताः विद्यन्ते। तां यथेच्छं पूजय। कठोरकलेवरैः मुनिवरैः सम्पादयितुं शक्यं तपः कुत्र? अत्यन्तं कोमलं त्वदीयं शरीरं च कुत्र? यथा भ्रमरचरणस्थितियोग्यं शिरीषकुसुमं कठिनं कोकिलादिपक्षिचरणाघातं न सहते तथैव अतिकोमलं तव शरीरं दुष्कर- कार्यसाध्यं तपश्चरितुं न क्षममिति भावः।

व्याकरणम् → **वत्से** - वत्सा का सम्बो॰ एक॰व॰। **मनीषिता** - (मनीषा+इतच्) मनसा ईषिताः इति मनीषिताः (तृ॰तत्पु॰ समास), प्र॰वि॰, बहु॰व॰ 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्', से पररूप आदेश। **देवताः** - देव शब्द से 'देवात्तल्' तल् प्रत्यय करके प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **गृहेषु** - गृह शब्द का समास, बहु॰व॰। **सन्ति** - √अस् धातु लट् लकार, प्र॰पु॰, बहु॰व॰। **तपः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **क्व** - किम् √अत् = 'किमोऽत्' से अत् प्रत्यय कु आदेश पुनः यण् करके सप्त॰वि॰, प्रतिरूपक अव्यय। **तावकं** - (युष्मद् को तवक आदेश+अण्) युष्मद्+अण्+खञ् 'तवकममकावेकवचने' से तवक आदेश आदिवृद्धि। **वपुः** - वपु शब्द का प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पेलवं** - पेलं कम्पनं वातिति, पेल उपपद √वा धातु + 'क' प्रत्यय 'आतोऽनुपसर्गे कः' से प्र॰वि॰, एक॰व॰। **शिरीषपुष्पम्** - शिरीषस्य पुष्पं इति शिरीषपुष्पम्, (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰।

भ्रमरस्य - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पदं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सहेत** - √षह् मर्षणे धातु से आत्मने॰ में विधिलिङ् प्र॰पु॰, एक॰व॰। **पतत्रिणः** - पत् + शतृ = पतत्, पतन्तं त्रायते यत् तत् पतत्रं (पंख) पतत्रं अस्ति इति पतत्रिन् तस्य पतत्रिणः, पतत्रिन् शब्द का ष॰वि॰, एक॰व॰। **न** - अव्ययपद निषेधात्मक। **पुनः** - अव्ययपद।

कोशः → **गृह** - गृहाः पुंसि भूम्न्येव निकाय्य निलयालयाः। **देवता** - वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवाताः स्त्रियाम्। **वपुः** - गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः। **पदं** - पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्मांघ्रिवस्तुषु। **भ्रमर** - द्विरेफपुष्पालिड्- भृङ्ग- षट्पद- भ्रमरालयः। **पेलवं** - मृदु चातीक्ष्णपेलवौ। **शिरीष** - शिरीषस्तु कपीतनः। **पतत्रिन्** - पतत्रिपत्रिपतंगपतत्पत्ररथाण्डजाः। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → इस पद्य के पूर्वार्ध 'तपः वत्से क्व च तावकं वपुः' में दो बार 'क्व' शब्द का प्रयोग करके कवि ने विषमता का वर्णन किया है। अतः यहाँ विषम अलङ्कार है; जिसका लक्षण विश्वनाथ के अनुसार इस प्रकार है -

विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं मतम्। - सा॰द॰

इसी पद्य के उत्तरार्ध में शिरीष पुष्प और पार्वती के शरीर की कोमलता के साथ- साथ तप और पक्षी के पैर की कठोरता में समान धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार है।

साथ ही यहाँ उत्तरार्ध से पूर्वार्ध की घटना विशेष का समर्थन किए जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

5

प्रसङ्ग → मेना के द्वारा अनेक प्रकार से समझाने पर भी पार्वती अपने लक्ष्य पर अडिग रही। कवि पार्वती की दृढ़ता का वर्णन प्रस्तुत श्लोक में करते हैं -

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्॥

(सञ्जी॰) इतीति। **इति** एवम् **अनुशासती** उपदिशन्ती **मेना ध्रुवेच्छां** स्थिरव्यवसायां **सुतां** पार्वतीम् **उद्यमात्** उद्योगात्तपोलक्षणात् **नियन्तुं** निवारयितुं **न शशाक** समर्था नाभूत्। तथाहि। **ईप्सितार्थ स्थिरनिश्चयं** इष्टार्थे स्थिरनिश्चयं **मननिम्नाभिमुखं पयः च कः प्रतीपयेत्** प्रतिकूलयेत्।

प्रतिनिवर्तयेदित्यर्थः। निम्नप्रवणं पय इवेष्टार्थाभिनिविष्टं मनो दुर्वारमिति भावः। अत्र दीपकानुप्राणितोऽर्थान्तरन्यासालंकारः॥

(शिशु०) इति ध्रुवेच्छामिति। इतीत्थं ध्रुवेच्छां दृढेच्छां सुतामनुशासती शिक्षन्ती उद्यमात्तपःकरणरूपान्नियन्तुं निवारयितुं न शशाक न समर्थाऽभवत्। अर्थान्तरन्यासमाह। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयमभीष्टार्थकरणनिष्ठं मनश्चित्तं निम्नाभिमुखं गम्भीराभिमुखं पयस्तोयं कः प्रतीपयेत् व्यावर्तयितुं शक्नुयात् अपितु न कोपि प्रतीपयेदिति। प्रतीपं करोतीत्यर्थे णिच्॥

अन्वयः → इति अनुशासती मेना ध्रुवेच्छां सुताम् उद्यमात् नियन्तुं न शशाक। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः निम्नाभिमुखं पयश्च कः प्रतीपयेत्।

अर्थ → इस प्रकार उपदेश देती हुए मेना (तपस्या करने के लिए) दृढ़ संकल्प वाली पुत्री को उसके तप के उद्यम से रोकने में समर्थ नहीं हुई। अभीष्ट प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प वाले मन को और नीचे की ओर प्रवाहित होते हुए मन को भला कौन रोक सकता है?

शब्दार्थ → **इति** = (एवं) इस प्रकार, **अनुशासती** = (उपदिशन्ती, बोधयन्ती)उपदेश देती हुई, **मेना** = (पार्वत्याः माता, हिमालयभार्या) पार्वती की माता, **ध्रुवेच्छां** = (स्थिरव्यवसायां, दृढाभिलाषां, स्थिरनिश्चयाम्) दृढ़ इच्छा वाली, **सुतां** = (पुत्रीं, तनयाम्) पुत्री को, **उद्यमात्** = (तपोलक्षणात्, संकल्पात्, तपोव्यवसायात्) उद्यम से, **नियन्तुं** = (निवारयितुं) रोकने में, **न शशाक** = (न समर्था बभूव अभूत्, शक्ता नाभवत्) समर्थ नहीं हुई। **ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं** = (अभीष्टार्थदृढ़संकल्पं, इष्टार्थदृढव्यवसायम्) इच्छित प्रयोजन के लिए दृढ़ निश्चय वाले, **मनः** = (चित्तं, मानसम्) मन को, **च** = और, **निम्नाभिमुखं** = (अधोमुखं निम्नप्रदेशगामीप्रवाहं, निम्नप्रदेशानुवर्ति) नीचे की ओर बहते हुए, **पयः** = (जलं) जल को, **कः** = (व्यक्तिः) कौन, **प्रतीपयेत्** = (प्रतिकूलयेत्, प्रतिनिवर्तयेत्) पलट सकता है? अर्थात् न कोऽपि इत्यर्थः

भावार्थ → माता के द्वारा अनेक प्रकार से समझाने पर भी पार्वती अपने संकल्प के प्रति दृढ़ रही। क्योंकि अधोगामी जल प्रवाह को वापस ऊपर की ओर प्रवाहित करना असम्भव है।

भावार्थः → पूर्वोक्तप्रकारेणोपदिशन्ती माता मेनका स्वीयां पुत्रीं पार्वतीं तपश्चरणात् वारयितुं न समर्था बभूव। यतो हि अभिलषितवस्तुनि कृतनिश्चयं मनः निम्नाभिमुखं जलं च कः पुमान् निरोद्धुं शक्नुयात्? न कोऽपीति भावः।

व्याकरणम् → **इति** - इ+क्तिच्, अव्ययपद है। **अनुशासती** - (अनु-+√शास्+शतृ+ङीप्) अनु उपसर्ग √शासु अनुशिष्टौ धातु से शतृ एव ङीप् करके प्र०वि०, एक०व०। **मेना** - प्र०वि०, एक०व०। **ध्रुवेच्छां** - ध्रुवा इच्छा यस्याः सा (बहु० समास)। **ताम्** - द्वि०वि०, एक०व०। **सुताम्** - द्वि०वि०, एक०व०। **उद्यमात्** - (उत्+√यम्+घञ्) पञ्च०वि०, एक०व० यहाँ 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' वार्तिक से पञ्चमी विभक्ति हुई है। **नियन्तुं** - (नि+√यम्+तुमुन्) नि उपसर्ग √यम् धातु से तुमुन् प्रत्ययान्त अव्ययपद। **न** - अव्ययपद निषेधात्मक। **शशाक** - √शक्लृ शक्तौ धातु से लिट् लकार, प्र०पु०, एक०व०। **ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं** - (√आप्+सन्+क्त) √आप् धातु से 'धातोः कर्मणः समान०' सूत्र से सन् प्रत्यय। 'आप्नप्य०' से ईत्त्व पुनः 'निष्ठा' से क्त होकर ईप्सित बना। ईप्सितश्चासौ अर्थश्च - कर्मधा० समास, पुनः ईप्सितार्थे स्थिरः निश्चयः यस्य तत् (बहु० समास) द्वि०वि०, एक०व०। **मनः** - द्वि०वि०, एक०व०। **निम्नाभिमुखं** - निम्नं अभिमुखं यस्य यत् (बहु० समास) द्वि०वि०, एक०व०। **पयः** - द्वि०वि०, एक०व० पयस् शब्द का। **कः** - किम् सर्वनाम का पुल्लि०, प्र०वि०, एक०व० 'किमः कः' सूत्र से किम् को 'क' आदेश। **प्रतीपयेत्** - प्रति उपसर्ग + √आप् धातु से 'प्रति गता प्रतिकूलाः वा आपः यत्र प्रतिगताः आपः अस्मिन् इति प्रतीपम्' इस अर्थ में 'ऋक्पूरब्धुः' सूत्र से अच् करके 'द्व्यन्तरूपसर्गे०' सूत्र से ईत्व होकर प्रतीप बना पुनः 'प्रतीपं करोतीति' इस अर्थ में 'तत्करोति तदाचष्टे' से 'णिच् पुनश्च' विधिलिङ्ग, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **ध्रुव** - ध्रुवो भभेदे क्लीबन्तु निश्चिते शाश्वते त्रिषु। **निश्चय** - समौ निर्णयनिश्चयौ। **पयः** - पयः कीलाल ममृतम् जीवनं भुवनं वनम्। **निम्नं** - निम्नं गभीरं गम्भीरम्। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → यहाँ पद्य के पूर्वार्ध में पार्वती के सम्बन्ध में वर्णित विशिष्ट कथन का उत्तरार्ध के सामान्य कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

पुनः अभीष्ट वस्तु पर स्थिर मन तथा निम्न जल प्रवाह दोनों के लिए एक ही कारक 'कः' विद्यमान होने के कारण यहाँ कारक दीपक अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

6

प्रसङ्ग → माता द्वारा अनेक प्रकार से रोकने पर भी पार्वती तप के

लिए शान्त वन प्रदेश जाना चाहती है। पार्वती वन प्रस्थान हेतु माता-पिता से अनुमति हेतु अपनी सखी के माध्यम से इस श्लोक में निवेदन कर रही हैं -

कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी।
अयाचतारण्यनिवासमात्मनः फलोदयान्ताय तपःसमाधये॥

(सञ्जी०) कदाचिदिति। अथ **कदाचित् मनस्विनी** स्थिरचित्ता **सा** पार्वती **मनोरथज्ञम्** अभिलाषाभिज्ञं **पितरं** हिमवन्तम् [**आसन्नसखीमुखेन**] मासन्संख्याप्तसखी सैव मुखमुपायः। 'मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि' इति विश्वः। तेन। [**फलोदयान्ताय**] फलोदयः फलोत्पत्तिरन्तोऽवधिर्यस्य तस्मै **तपःसमाधये** तपोनियमार्थम् **आत्मनः** स्वस्य **अरण्यनिवासं** वनवासम् **अयाचत।** 'दुह्याच्' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम्॥

(शिशु०) कदाचिदिति। सा मनस्विनी साभिमाना मनोरथज्ञं हरप्राप्तिलक्षणाभिलाषविदं पितरं आसन्नसखीमुखेन निकटसखीद्वारा आत्मनोऽरण्यनिवासं वनवासं तपःसमाधये तपःप्राप्त्यर्थे यः समाधिस्तस्मै अयाचत याचितवती कीदृशाय। फलोदयान्ताय फलस्य उदय उत्पत्तिरन्तोऽवधिर्यस्य तस्मै॥

अन्वयः → कदाचित् मनस्विनी सा मनोरथज्ञं पितरम् आसन्न- सखीमुखेन फलोदयान्ताय तपःसमाधये आत्मनः अरण्यनिवासम् अयाचत।

अनुवाद → किसी दिन उस दृढ़ मन वाली पार्वती ने (अपने) मन की इच्छा को जानने वाले पिता को पास में स्थित सखी के माध्यम से अभीष्ट फल की प्राप्ति होने तक तपस्या करने के लिए अपने वन में निवास करने की आज्ञा माँगी।

शब्दार्थ → **(तब) कदाचित्** = (कस्मिंश्चित् काले, कस्मिंश्चित्समये) किसी समय, **मनस्विनी** = (स्थिरचित्ता, दृढ़संकल्पवती, दृढव्यवसाया) बुद्धिमती, स्थिर मन वाली, **सा** = (पार्वती) पार्वती ने, **मनोरथज्ञं** = (अभिलाषज्ञ, स्वेच्छाभिज्ञम्) मन की इच्छा को जानने वाले, **पितरम्** = (जनकं, जनयितारम्) पिता हिमालय को, **आसन्नखीमुखेन** = (आप्तसखीद्वारा समीपस्थसखी- उपायेन, अन्तरङ्गसहचरीद्वारेणा) समीपस्थ सखी के मुख से, **फलोदयान्ताय** = (फलोत्पत्तिपर्यन्तम्, फलोत्पत्तयबधये) फल की प्राप्ति तक, **तपः समाधये** = (तपोनियमाय, तपश्चर्यायै) तपस्या करने के लिए, **आत्मनः** = (स्वस्य, स्वकीयम्) अपने, **अरण्यनिवासं** = (वनवासं वनवसतिम्, वनवासम्) वन में निवास करने की,

अयाचत = (याचितवती, अभ्यर्थितवती) याचना की।

भावार्थ → दृढ़ निश्चय वाली पार्वती तपस्या हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए अपनी सखी के माध्यम से अपने पिता के पास सन्देश भेजती है - ''शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए वन में तप करना चाहती हूँ।'' क्योंकि कोई भी लड़की अपने पति (प्रेम) के विषय में सीधे पिता से कोई बात लज्जावश नहीं कह पाती है।

भावार्थः → दृढ़निश्चया पार्वती कदाचित् स्वाभिलाषाभिज्ञं पितरं हिमालयम् समीपवर्तिसखीद्वारा वररूपेण शिवप्राप्तिपर्यन्तं तपः कर्तुं स्वस्य वननिवासं प्रार्थितवती।

व्याकरणम् → **कदाचित्** - किम्+दा+चित् 'सर्वैकान्यत्किंयत्तद् काले दाः' से दा प्रत्यय। **मनस्विनी** - अव्ययपद (मनस्+विनि+ङीप्) मनः अस्याः अस्तीति मनस्विनी; प्रशस्तं मानसं अस्यास्तीति विग्रह में मनस् शब्द में 'अस्मायामेधा०' सूत्र द्वारा विनि प्रत्यय स्त्रीत्व में 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् प्रत्यय होकर प्र०वि०, एक०व०। **सा** - 'तद्' सर्वनाम का स्त्रीलिंग में प्र०वि०, एक०व०। **मनोरथज्ञं** - (मनोरथ+√ज्ञा+कः) मनोरथं जानातीति मनोरथज्ञः (उपपद तत्पु० समास) मनसः रथः मनोरथः, ष० तत्पु० समास, मनोरथं जानातीति मनोरथज्ञः तम् मनोरथज्ञं। मनोरथ √ज्ञा अवबोधने धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' के 'क' प्रत्यय होने पर द्वि०वि०, एक०व०। **पितरम्** - पितृ शब्द का द्वि०वि०, एक०व०। **आसन्न - सखीमुखेन - (**आ+√सद्+क्त**)** आसन्ना चासौ सखी च 'कर्मधारय'। आसन्नसख्या मुखं तृ० तत्पु० समास, तेन आसन्नसखीमुखेन तृ०वि०, एक०व०। आ उपसर्ग √सद् धातु 'क्त' प्रत्यय 'रदाभ्यां निष्ठातो०' सूत्र से नत्व होकर - आसन्न। **फलोदयान्ताय** - फलस्य उदयः फलोदयः - ष०तत्पु० समास, फलोदयः अन्तः यस्य सः बहु० समास। तस्मै फलोदयान्ताय, च०वि०, एक०व०। **तपःसमाधये** - (सम्+आ+√धा+कि = समाधि, च०वि०, एक०व०) तपसः समाधिः इति तपःसमाधिः (ष० तत्पु० समास) तस्मै तपःसमाधये, च०वि०, एक०व०। **आत्मनः -** आत्मन्, ष०वि०, एक०व०। **अरण्यनिवासम्** - अरण्ये निवासः अरण्यनिवासः (तत्पु० समास) तम् अरण्यनिवासम् द्वि०वि०, एक०व०। **अयाचत** - √याच् धातु आत्मनेपद, लङ् लकार, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **कदाचित्** - कदाचिज्जातु। **आसन्न -** समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीडऽवत्। **सखी** - आलिः सखी वयस्या च। **मुख -** मुखं

निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि इति विश्वः। **मनोरथ** - याञ्चा लिप्सा मनोरथः। **पिता** - तातस्तु जनकः पिता। **अरण्यम् -** अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्।

टिप्पणी → शास्त्रों के अनुसार मनस्वी का लक्षण इस प्रकार है -

महाकार्ये कृतोद्योगो विघ्नैराहतमानसः।
प्रारब्धं न त्यजति यः स मनस्वीति कथ्यते॥

अर्थात् जो व्यक्ति किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति हेतु परिश्रम करता है तथा कार्यसम्पादन के समय अनेक विघ्नों से पीड़ित होकर भी प्रारब्ध (आरम्भ किए गए) कार्यों का परित्याग नहीं करता है वह मनस्वी कहलाता है। प्रस्तुत श्लोक में फलप्राप्ति पर्यन्त तप करने का निश्चय करके सफल होने वाली पार्वती के लिए 'मनस्विनी' विशेषण साभिप्राय है।

7

प्रसङ्ग → माता- पिता की आज्ञा से पार्वती अभीष्ट प्राप्ति पर्यन्त तप हेतु गौरी शिखर पर जा रही है -

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा।
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत्॥

(सञ्जी०) अथेति। **अथ गौरी [अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा]** र्यनुरूपेण योग्येनाभिनिवेशनाग्रहेण तुष्यतीति तथोक्तेन **गरीयसा** पूज्यतमेन **गुरुणा** पित्रा **कृताभ्यनुज्ञा** तपः कुर्वति कृतानुमतिः सती **पश्चात्** तपःसिद्ध्युत्तरकालं **प्रजासु** जनेषु **तदाख्यया** तस्या गौर्याः संज्ञयाः **प्रथितम्।** गौरीशिखरमिति प्रसिद्धमित्यर्थः। **शिखण्डिमत्।** न **तु** हिंस्रप्राणिप्रचुरमिति भावः। **शिखरं** शृङ्गं **जगाम** ययौ॥

(शिशु०) अथेति। अनन्तरं गौरी शिखरं जगाम। कीदृशं शिखरं। शिखण्डिमत् शिखण्डिनो मयूरास्तद्युक्तं। कीदृशी गौरी। गुरुणा पित्रा कृताभ्यनुज्ञा। कीदृशेन गुरुणा। अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा अनुरूपो योग्यो योभिनिवेशः शम्भुप्राप्तिलक्षण आग्रहस्तेन तुष्टेन। पुनः कीदृशेन? गरीयसा पूज्येन। कीदृक् शिखरं। प्रजासु लोकेषु पश्चाद् गौरीतपश्चरणानन्तरं तदाख्यया तस्या गौर्या आख्यया नाम्ना प्रथितं विख्यातम्॥

अन्वयः → अथ गौरी अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा गरीयसा गुरुणा कृताभ्यनुज्ञा पश्चात् प्रजासु प्रथितं शिखण्डिमत् गौरीशिखरं जगाम।

अनुवाद → इसके पश्चात् अपने अनुरूप वर को प्राप्त करने की अभिलाषा से सन्तुष्ट पूज्य पिता हिमालय से आज्ञा प्राप्त करने के उपरान्त मयूरों से युक्त हिमालय की एक चोटी पर गई जो बाद में लोगों में उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध (गौरी शिखर) हुई।

शब्दार्थ → **अथ** = (तदनन्तरम्, अनन्तरम्) इसके पश्चात्, (**गौरी** = गिरिजा), **अनुरुपाभिनिवेशतोषिणा** = (स्वानुरूपाग्रहसंतुष्टेन उपयुक्ताभिलाषासन्तुष्टेन, योग्यवरकामनाप्रसन्नेन) अनुरूप (वर में) अभिलाषा से सन्तुष्ट, **गरीयसा** = (पूज्यतमेन, परमपूज्येन, पूज्येन) पूजनीय, **गुरुणा** = (पित्रा, जनकेन हिमवता,) पिता के द्वारा **कृताभ्यनुज्ञा** = (प्राप्तानुमतिः सती, लब्धानुमति) अनुमति पाकर, **पश्चात्** = (अनन्तरं, तपः सिद्ध्यनन्तरं, अनन्तरम्) बाद में, **प्रजासु** = (जनेषु, लोके) प्रजाजनों में, **तदाख्यया** = (तस्याः एव नाम्ना, तन्नाम्ना) उसी (गौरी) के नाम से, **प्रथितम्** = (प्रसिद्धम् प्रख्यातं, गौरीशिखनाम्ना विश्रुतम्) प्रसिद्ध, **शिखण्डिमत्** = (मयूरयुक्तं, नीमकण्ठसनाथम्) मयूरों से युक्त (जहाँ प्रचुर मयूर मिलते हैं ऐसे), **गौरीशिखरम्** = (गौरीनामाख्यं शृंगम्) गौरी नामक पर्वत शिखर पर, **जगाम** = (ययौ, प्राप) चली गई।

भावार्थ → पार्वती के योग्य वर- प्राप्ति विषयक सन्देश को सुनकर हिमालय को अत्यन्त सन्तोष हुआ। तथा उन्होंने भी सहर्ष तपस्या हेतु अनुमति दे दिया। पिता से अनुमति प्राप्त करके मयूरों से युक्त किसी पर्वत शिखर पर चली गई जो बाद में गौरी शिखर के नाम से प्रसिद्ध हो गया। पर्वत शिखर पर मयूरों की अधिकता भयानक वन्य पशुओं के अभाव को सूचित करता है जिससे यह ध्वनित होता है कि वह पर्वत शिखर तपस्या हेतु शान्त, सुरक्षित और उपयुक्त है।

भावार्थः → पार्वत्याः प्रार्थनां श्रुत्वा सन्तुष्टः हिमालयः पार्वत्यै तपः आचरितुं अनुमतिं दत्तवान्। हिमालयस्य आज्ञया पार्वती तपःसिद्धयर्थं प्रचुरमयूरयुक्तं शिखरं जगाम। पार्वत्याः तपकारणेन पश्चात् तत् हिमालयशिखरं 'गौरीशिखरम्' इति नाम्ना विख्यातम् अभूत्।

व्याकरणम् → **अथ** - अव्ययपद, **गौरी** - 'षिद् गौरादिभ्यश्च' से ङीष् प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा** - (अभि+नि-+√विश्+घञ्) अनुरूपश्चासौ अभिनिवेशश्च यद्वा अनुरूपे अभिनिवेशः कर्मधा॰ समास/ स॰तत्पु॰ समास अनुरूपाभिनिवेशेन तुष्यतीति अनुरूपाभिनिवेशतोषी तेन अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा, तृ॰वि॰, एक॰व॰। रूपस्य

योग्यं अनुरूपं - अव्ययी॰ समास। अभि+नि उपसर्ग+ √विश् प्रवेशने धातु से घञ् होकर 'अभिनिवेशः'। √तूष् तुष्टौ धातु से णिनि प्रत्यय होकर 'तोषी'। **गरीयसा** - (गुरु+ईयसुन्) गुरु+ईयसुन् - 'द्वि॰वि॰, विभ-ज्योपपदे' सूत्र से ईयसुन् प्रत्यय गुरु को गर् आदेश, तृ॰वि॰, एक॰व॰ में अतिशयेन गुरुः गरीयान् तेन गरीयसा। **गुरुणा** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **कृता-भ्यनुज्ञा** - (√कृ+क्त+टाप् = कृता, अभि+अनु+√ज्ञा+अङ्) अभ्यनुज्ञा यस्यै सा (बहु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पश्चात्** - यह एक निपातन है।'पश्चात्' सूत्र से अपर का पश्च भाव और अति प्रत्यय होकर अव्य-यपद बना। **प्रजासु** - सप्त॰ वि॰, बहु॰व॰। **तदाख्यया** - तस्य/तस्या आख्या तदाख्या (ष॰ तत्पु॰ समास) तया तदाख्यया, तृ॰वि॰, एक॰व॰, **प्रथितम्** - √प्रथ्+क्त = प्रथा, द्वि॰ वि॰, एक॰व॰। **शिखण्डिमत् -** (शिखण्ड+इनि = शिखण्डिन् मतुप्) प्रशस्ताः शिखण्डिनः सन्ति यत्र तत् सन्त्यस्मिन्निति वा, शिखण्डिमत् (बहु॰ समास) 'तदस्यास्तीति॰' सूत्र से मतुप्। **गौरीशिखरं** - गौर्याः शिखरः गौरीशिखरः, ष॰ तत्पु॰ समास, तम् गौरीशिखरं द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **जगाम** - √गम् धातु लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

***कोशः* →** **गुरु** - गुरुगीष्पतिपित्त द्यौः। **प्रजा** - प्रजा स्यात्सन्ततौ जने। **प्रथित** - प्रतीते प्रथितख्यातवित्तविज्ञातविश्रुताः। **आख्या** - आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च। **शिखर** - कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्। **शिखण्डिमत्** - शिखा चूडा शिखण्डस्तु पिच्छबर्हे नपुंसके। **गौरी** - उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी। इत्यमरकोशः।

8

प्रसङ्ग → आगामी 6 श्लोकों में पार्वती द्वारा किए गए तप की तैयारी का वर्णन है। तप हेतु प्रस्थान करने से पूर्व पार्वती राजसी वस्त्राभूषणों का परित्याग करके तप के योग्य वल्कल वस्त्र धारण करती है -

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति॥

(सञ्जी॰) विमुच्येति। **अहार्यनिश्चया** अनिवार्यनिश्चया **सा** गौरी [**वि-लोलयष्ठिप्रविलुप्तचन्दनम्**] विलोलाभिश्चालभिर्यष्टिभिः प्रतिसरैः प्र-विलुप्तं प्रमृष्टं चन्दनं स्तनान्तरगतं येन तं तथोक्तं **हारं** मुक्तावलीं **विमुच्य** विहाय **बालारुणबभ्रु** बालार्कपिङ्गलं [**पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति**] पयोधरयोः स्तनयोरुत्सेधेनोच्छ्रायेण विशीर्णा विघटिता संहतिरवयवसंश्लेषो

यस्य तत्तथोक्तं वल्कलं कण्ठलम्बिस्तनोत्तरीयभूतं **बबन्ध** धारयामासेत्यर्थः॥

(शिशु०) विमुच्येति। सा बाला गौरी हारं मुक्ताकलापं विमुच्योत्तार्य तदास्य हारस्थाने वल्कलबन्धं निहितवती। कीदृशी हारं? क्रीडावशाद्विलोलाश्चञ्चला या यष्टयो हारलता मौक्तिकपङ्क्तयस्ताभिः प्रविलुप्तचन्दनमङ्गरागो यस्मिंस्तम्। कीदृशं वल्कलं? बालारुणबभ्रु नवोदितोनूरुकपिशं। पुनः कीदृक्? पयोधरयोः स्तनयोर्य उत्सेध उच्छ्रायस्तेन विशीर्णा त्र्युट्यन्ती संहतिः सन्धिबन्धो यस्मिंस्तत्। एतेन हारेणैव वल्कलेनापि शोभाऽभूदित्यर्थः। कीदृशी सा? अहार्यनिश्चयाऽहार्यो हर्तुमशक्यो निश्चयो यस्याः सा॥

अन्वयः → अहार्यनिश्चया सा विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनं हारं विमुच्य बालारुणबभ्रु पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति वल्कलं बबन्ध।

अनुवाद → अत्यन्त दृढ़ प्रतिज्ञावाली उस पार्वती ने बार- बार हिलती-डुलती लड़ियों द्वारा (वक्षस्थल पर लगे हुए) चन्दन को पोंछ देने वाले हार को त्यागकर उदीयमान बाल सूर्य के समान पिङ्गलवर्ण वाले कठोर स्तनों के उभार के कारण छिन्न- भिन्न अवयवों (तन्तुओं) वाले वल्कल वस्त्र को (वक्षस्थल) पर बाँध लिया।

शब्दार्थ → **अहार्यनिश्चया** = (अनिवार्यनिर्णया, अपरिहेयाध्यवसाया) दृढ़ निश्चय वाली, **सा** = उसने (पार्वती), **विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनं** = (चञ्चलप्रतिसरप्रमृष्टचन्दनं, चञ्चमलप्रतिसरप्रविलुप्तचन्दनम्) बार- बार हिलती हुई लड़ियों से जो (वक्ष पर) लगे हुए चन्दन को पोंछ देने वाले, **हारम्** = (मौक्तिकमालां मुक्तवलीं, मुक्ताहारम्, मणिहारं वा) हार को (मोतियों के हार को), **विमुच्य** = (विहाय, परित्यज्य) उतार कर, **बालारुणबभ्रु** = (बालार्कपिङ्गल, बालसूर्यपिङ्गलं, नवोदितसूर्यपिङ्गलवर्णम्) उदीयमान प्रातः कालीन सूर्य के समान लालिमा लिए हुए, **पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति** = (स्तनोच्छायविघटिताऽवयवसंश्लेषं, कुचोच्छ्रायविघटितावयवरांश्लेषम्) स्तनों के उभार के कारण (बाँधते समय) थोड़ा उधड़ जाने से छिन्न भिन्न अवयव वाली (**पयोधर** = स्तन, **उत्सेध** = उभार, **विशीर्ण** = उधड़ गया है, कट फट गया है, **संहति** = सिलाई उस वस्त्र विशेष के अवयवों का जोड़) **वल्कलं** = (कण्ठलम्बितस्तनोत्तरीयभूतं वृक्षत्वचम्) वृक्ष की छाल से बने वस्त्र को, **बबन्ध** = (धारयामास, धृतवती) बाँध लिया।

भावार्थ → तपस्या के लिए दृढ़संकल्प वाली पार्वती ने समस्त राजसी वैभवों का परित्याग करने हेतु सर्वप्रथम उस हार को गले से निकाल दिया जो हिलने के कारण वक्षस्थल पर लगे चन्दनों को पोंछ देते थे। तदुपरान्त लाल और पीतवर्ण के सदृश वल्कलवस्त्र को अपने वक्षस्थल पर बाँध लिया। उभरे हुए स्तनों की कठोरता के कारण उस वल्कल वस्त्र (वृक्ष छाल) के तन्तु (धागे) छिन्न- भिन्न हो गए थे अर्थात् थोड़े- थोड़े फट गए थे।

भावार्थः → दृढ़निश्चया सा गौरी स्तनतटे विलसन्तं हरिचन्दनाङ्कितं मालां त्यक्त्वा बालसूर्यसदृशं पिङ्गलवर्णं स्तनावरणवल्कलं धृतवती यत् च
स्तनौन्नत्येन विशीर्णीकृतः आसीत्।

व्याकरणम् → **अहार्यनिश्चया** - हर्तुं योग्यः हार्यः 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् √ह् धातु से वृद्धि होकर हार्यः, न हार्यः अहार्यः नञ् तत्पु॰ समास, अहार्यः निश्चयो यस्याः सा (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **विलोल-यष्टिप्रविलुप्तचन्दनं** - विलोलाश्च ताः यष्टयश्च (कर्मधा॰ समास) विलोलयष्टयः। प्रकर्षेण विलुप्तं प्रविलुप्तं (सुप्सुपा समास), विलोल-यष्टिभिः प्रविलुप्तं (प्र+वि+√लुप्+क्त) चन्दनं येन सः (बहु॰ समास) **तम्** - विलोलचन्दनं, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **हारं** - √हृञ् हरणे धातु से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विमुच्य** - वि उपसर्ग √मुच् धातु+क्त्वा पुनः ल्यप् आदेश, अव्ययपद। **बालारुणबभ्रु** - बालश्चासौ अरुणश्च बालारुणः (कर्मधा॰ समास), बालारुण इव बभ्रु (उपमानपूर्व कर्मधा॰ समास)। **पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति - (**विशीर्णः = वि+√श्रृ-+क्त; संहति = सम्+हन्+क्तिन्) पयोधरयोः उत्सेधः पयोधरोत्सेधः (ष॰ तत्पु॰ समास) पयोधरोत्सेधेन विशीर्णा संहतिर्यस्य तत् (बहु॰ समास), वि उपसर्ग √श्रृ धातु+क्त प्रत्यय 'निष्ठा' से पुनः 'रदाभ्यां निष्ठातो॰' से नत्व एवं 'रषाभ्यां णो नः' से णत्व होनेपर विशीर्ण। **वल्कलं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **बबन्ध** - √बन्ध् धातु लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **हारः** - हारो मुक्तावली। **निश्चय** - समौ निर्णयनिश्चयौ। **विलोल** - चलं लोलं चलाचलम्। **अरुण** - सूरसूतोऽरुणोऽनुरुः काश्यपिर्गरुडाग्रजः। **वल्कलं -** बल्कं वल्कलमस्त्रियाम्। **उत्सेध** - उच्छ्राय उत्सेधश्चोच्छ्रायश्च सः। **संहति** - स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दम्। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → कुछ लोगों के अनुसार यहाँ उपमा और परिवृत्ति अलङ्कार

है किन्तु यह उतना चमत्कारी नहीं है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

9

प्रसङ्ग → पार्वती ने तप के योग्य वेषभूषा धारण करने के लिए समस्त बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों का परित्याग करके तपस्वी के समान केशों का जटाजूट बना लिया -

तथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते॥

(सञ्जी०) यथेति। तस्या देव्या आननं **तदाननं प्रसिद्धै**र्भूषितैः। 'प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ' इत्यमरः। रोहन्तीति रुहाः। ''इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'' इति 'क' प्रत्ययः। शिरसि रुहास्तैः **शिरोरुहैः** मूधजैः **यथा मधुरं** प्रियम् अभूत्। 'स्वादुप्रियौ तु मधुरौ' इत्यमरः। **जटाभिः अपि एवं मधुरमभूत्।** तथाहि। **पङ्कजं** पद्मं **षट्पदश्रेणिभिः** भ्रमरपङ्क्तिभिः **एव न** किंतु सह शैवलासङ्गेन **सशैवलासङ्गम् अपि**। ''तेन सहेति तुल्ययोगे'' इति बहुव्रीहिः। **प्रकाशते** शैवलेनापि शोभत एवेत्यर्थः॥

(शिशु०) यथेति। प्रसिद्धैविख्यातैः शिरोरुहैः केशैर्यथा तदाननं तस्या मुखं मधुरं रम्यं तथा जटाभिरपि रम्यमभूत्। उक्तमर्थं दृष्टान्तेन द्रढयति। पङ्कजं षट्पदश्रेणिभिरेव परं केवलं न प्रकाशते। किंतु सशैवलासङ्गमपि शैवालसम्पर्कसहितमपि शोभते॥

अन्वयः → तदाननं प्रसिद्धैः शिरोरुहैः यथा मधुरम् अभूत् जटाभिः अपि एवम् (अभूत्)। (यतोहि) पङ्कजं षट्पदश्रेणिभिः एव न, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते।

अनुवाद → उस पार्वती का मुख पहले जिस प्रकार पुष्पादि से सुसज्जित केशों से सुन्दर लगता था उसी प्रकार जटाओं से भी मनोहर प्रतीत होने लगा। कमल का पुष्प न केवल भ्रमरों की पंक्तियों से ही अपितु सेवार (काई जल में उत्पन्न हरे रंग की वनस्पति, एक प्रकार की घास) से भी घिर कर सुशोभित होती है।

शब्दार्थ → **तदाननं** = उस (पार्वतीमुखं, गिरिजामुखम्) पार्वती का मुख, **प्रसिद्धैः** = (भूषितैः, सुसज्जितैः, अलङ्कृतैः) कंघी आदि से ठीक करके अलंकरणों से सुसज्जित, **शिरोरुहैः** = (केशैः, मूर्धजैः) बालों से, **यथा** = (येन प्रकारेण) जितना, जैसा, **मधुरम् =** (मनोहरम्, सुन्दरं अभूत्, प्रियम्) मनोहर (था), **जटाभिः** = (सटाभिः, जटाजूटेन) जटाओं के द्वारा, **अपि** = भी, **एवम्** = (इत्थम्, तेनैव प्रकारेण, तथा) उतना

ही (मनोहर) **अभूत्** = (अभवत्, आसीत्) हुआ। **पङ्कजम्** = (कमलम्) कमल पुष्प, **षट्पदश्रेणिभिः** = (भ्रमरसमूहैः, भ्रमरपंक्तिभिः, भ्रमरपङ्क्तिभिः) भ्रमरों के समूह के द्वारा, **एव** = ही, **न** = नहीं, **सशैवलासङ्गं** = (शैवालसम्पर्कसहितं, शैवालसम्पृक्तम्) सेवार से युक्त होकर (पानी में कमल आदि जलीय वनस्पतियों के चारों ओर उत्पन्न होने वाली हरी- हरी काई), **अपि** = भी, **प्रकाशते** = (सुशोभते, शोभते) सुशोभित होता है।

भावार्थ → सुगन्धित तैल आदि से सुसज्जित केशों के कारण सुन्दर लगने वाला पार्वती का मुख तैल आदि अलङ्करण के साधनों के त्यागपूर्वक जटाओं को धारण करने के बाद भी सुन्दर लग रहा था। कवि उपमा देते हुए कहते हैं कि स्वभावतः सुन्दर कमल का पुष्प न केवल भ्रमरों से अपितु सेवारों से घिर कर भी उतना ही सुशोभित होता है। आशय यह है कि प्राकृतिक सौन्दर्य को किसी अलङ्करण की आवश्यकता नहीं होती है।

भावार्थः → यथा तपसः पूर्वं पार्वत्याः मुखं पुष्पाद्यलंकृतैः केशैः मनोरममासीत् तथैव तपस्यासमयेऽपि जटाभिर्मनोरममासीत्। केवलं भ्रमरैः एव कमलं न शोभते किन्तु शैवालैः अपि शोभते अर्थात् मधुराकृतीनां तु सर्वमेव साधनं शोभादायकं भवति इति भावः।

व्याकरणम् → **तदाननं** - तस्याः आननम् इति तदाननम् (ष॰तत्पु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्रसिद्धैः** - (प्र+√सिध्+क्त, तैः) तृ॰वि॰, बहु॰व॰ में 'अतो भिस ऐस्' से भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश। **शिरोरुहैः** - रोहन्तीति रुहाः, √रुह् बीजजन्मनि प्रादुर्भावे से 'इगुपदज्ञाप्री॰' द्वारा 'कः' प्रत्यय, शिरसि रुहाः शिरोरुहाः (सप्तमी तत्पु॰ समास) तैः शिरोरुहैः - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **यथा** - 'प्रकारवचने थाल्' सूत्र से यद्+थाल्, अव्ययपद। **मधुरं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अभूत्** - √भू धातु लुङ् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **जटाभिः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **अपि** - अव्ययपद। **एवम्** - अव्ययपद। **पङ्कजं** - पङ्के पङ्कात् वा जायते इति पङ्कजं (उपपद तत्पु॰ समास) 'सप्तम्यां जनेर्डः' से डः प्रत्यय पङ्क उपपद √जन् धातु+डः प्रत्यय, टि का लोप, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **षट्पदश्रेणिभिः** - षट्पदानि येषां ते षट्पदाः, तेषां श्रेणयः षट्पदश्रेणयः, ताभिः षट्पदश्रेणिभिः बहु॰ समास, गर्भ ष॰तत्पु॰ समास, तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **एव** - अव्ययपद। **न** - अव्ययपद। **सशैवलासङ्गम्** - (आ+√सञ्ज्+घञ्) शैवलानाम् आसङ्गः शैवलास-

ङ्गः, तेन सह वर्तते, तत् सशैवलासङ्गम् - 'तेन सहेति तुल्योगे' से बहु॰ समास, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्रकाशते** - प्र उपसर्ग √काश् धातु, आत्मने॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **आननं** - आननं लपनं मुखम्। **प्रसिद्धं** - प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ। **शिरोरुहः** - चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः। **मधुरं** - स्वादुप्रियौ तु मधुरौ। **जटा** - व्रतिनस्तु जटा सटा। **षट्पद** - द्विरेफपुष्पलिङ् भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः। **श्रेणी** - वीथ्यालिरावलिः पंक्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः। **शैवल** - जलनीली तु शैवालं शैवलः। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में पार्वती की कमल से, सुसज्जित केशविन्यास की भ्रमरपंक्ति से तथा जटाओं की सेवार से समान धर्म के कारण समानता दिखाई गई है; अतः यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

टिप्पणी → कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन में भी इसी प्रकार का वर्णन किया है -

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥

- अभि॰शा॰ 1.20

अन्यत्र भी ऐसे पर्याप्त वर्णन प्राप्त होते हैं -

अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्(अभि॰शा॰ 6), **अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य** (मालविकाग्निमित्र), **सर्वशोभनीयं सुन्दरं नाम** (प्रतिमानाटक-1), **न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्** (किरात॰-4.21) **रम्याणां विकृतिरपि प्रियं तनोति** (किरात॰ 7.5), **सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्** (अविमारक-2), **स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते** (दृष्टान्तशतकम्-49)

10

प्रसङ्ग → तप हेतु मुञ्ज की मेखला धारण करती हुई पार्वती का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं -

प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणां बभार याम्।
अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया सरागमस्या रसनागुणास्पदम्॥

(सञ्जी॰) प्रतीति। **सा** देवी **प्रतिक्षणं** क्षणे क्षणे **कृतरोमविक्रियां** पारुष्यात्कृतरोमाञ्चां **त्रिगुणां** त्रिरावृत्तां **यां मौञ्जीं** मुञ्जमयीं मेखलां व्रताय

तपसे बभार। [**तत्पूर्वनिबद्धया**]तदेव पूर्वं प्रथमं यस्य तत्पूर्वं यथा तथा निबद्धया **तया** मौञ्ज्या **अस्या** देव्या [**रसनागुणास्पद**] रसनागुणस्यास्पदं स्थानं जघनम्। सह रागेण **सरागं** सलोहितमकारि कृतम्। सौकुमार्यातिशयादिति भावः॥

(शिशु०) प्रतिक्षणमिति। प्रतिक्षणं मुहुर्मुहुर्व्रताय व्रतार्थं कृतरूपविक्रियां कृततापसवेषा सा गौरी त्रिगुणां त्रिरावृत्तां यां मौञ्जीं मुञ्जरज्जुं बभार दधौ। तथा मौञ्ज्या अस्या देव्या रसनागुणास्पदं काञ्चीगुणस्थानं सरागं लोहितमकारि कृतं। मौञ्ज्याः कर्कशत्वात्प्राग्रतिबन्धनत्वाच्चारुणतापादानं। कीदृश्या तया? तत्पूर्वनिबद्धया प्रथमं बद्धया॥

अन्वयः → सा प्रतिक्षणं कृतरोमविक्रियां त्रिगुणां यां मौञ्जीं व्रताय बभार, तत्पूर्वनिबद्धया तया अस्याः रसनागुणास्पदं सरागम् अकारि।

हिन्दी अर्थ → उस पार्वती ने प्रतिक्षण रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली तीन लड़ियों की मूञ्ज से बनी हुई मेखला को व्रत पालन हेतु धारण किया। प्रथम बार बाँधी गई उस मूञ्ज की मेखला ने कटि प्रदेश (करधनी बाँधने के स्थाल) को लाल रंग का कर दिया।

शब्दार्थ → **सा** = उस (पार्वती) ने, **प्रतिक्षणं** = (क्षणे क्षणे) प्रत्येक क्षण, **कृतरोमविक्रियाम्** = (पारुष्यात् विहितरोमाञ्चाम्) रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली, **त्रिगुणाम्** = (त्रिरावृताम्) तीन लड़ों (सूत्रों) से गुंथी हुई, **मौञ्जी** = (मुञ्जनिर्मितां मेखलां, मुञ्चमयीम् मेखलामिति शेषः) मुंज की बनी हुई, **यां** = जिस (मेखला) को, **व्रताय** = (तपसे तपपालनाय, नियमाय) तप और व्रत के पालन के लिए, **बभार** = (दधौ, धारयामास, धृतवती) धारण कर किया, **तत्पूर्वनिबद्धया** = (तत्प्रथमबद्धया, तदादिधृतया) जीवन में पहली बार बाँधी गई, **तया** = (मुञ्जमेखलया, मौञ्ज्या) उस (मुंज की मेखला) के द्वारा, **अस्याः** = (पार्वत्याः, गौर्याः) पार्वती का, **रसनागुणास्पदं** = (मेखलासूत्रस्थानम्, कटिप्रदेशं) करधनी बाँधने का स्थान (कमर), **सरागं** = (लोहितवर्णं, सलोहितम्) लाल, **अकारि** = (कृतम्, विहितम्) कर दिया गया।

भावार्थ → पार्वती ने तपस्या के उपयुक्त वेशभूषा धारण करने के क्रम में करधनी के स्थान पर मुञ्ज की बनी तीन लड़ वाली मेखला को धारण किया। जो खुरदरी होने के कारण अपने घर्षण से पार्वती के शरीर में प्रत्येक क्षण रोमाञ्च उत्पन्न कर रहा था। प्रथम बार मूञ्ज की बनी मेखला को धारण करने के कारण पार्वती का कोमल कटि प्रदेश घर्षण

के कारण लाल हो गया था।

भावार्थः → सा पार्वती तपसः पूर्वं धृतां रसनां परित्यज्य तत्स्थाने त्रिगुणितां पारुष्यादसहत्वेन क्षणे क्षणे कृतरोमाञ्चां मुञ्जनिर्मितमेखलां बबन्ध। प्रथमबद्धया कर्कशया तया मुञ्जमेखलया पार्वत्याः रसनासूत्रस्थानं जघनं रक्तवर्णं जातम्।

व्याकरणम् → **सा** - तद् का स्त्री०, प्र०वि०, एक०व०। **प्रतिक्षणं** - क्षणे क्षणे/ क्षणं क्षणं इति प्रतिक्षणम् अव्ययी० समास, वीप्सार्थ में 'अव्ययं विभक्तिसमीप०' से अव्ययपद। **कृतरोमविक्रियां** - रोम्णां विक्रिया रोमविक्रिया, ष०तत्पु० समास, कृता रोम विक्रिया यया सा- बहु० समास, ताम्, द्वि०वि०, एक०व०। **त्रिगुणा** - त्रयो गुणाः यस्याः सा बहु० समास, ताम्, द्वि०वि०, एक०व०। **याम्** - यद् स्त्री०, द्वि०वि०, एक०व०। **मौञ्जीं** - (मुञ्ज+अण्+ङीप् ताम्) मुञ्जस्य विकारः मौजी, तां मौञ्जीं 'तस्य विकारः' से अण् आदि वृद्धि एवं 'टिड्ढाणञ्०' से स्त्रीत्व में ङीप्, द्वि०वि०, एक०व०। **व्रताय** - च०वि०, एक०व०। **बभार** - √भृ धातु लिट् लकार, प्र०पु०, एक०व०। **तत्पूर्वनिबद्धया** - (नि+√बन्ध्+क्त) तदेव पूर्वं यस्य तत् तत्पूर्वम् बहु० समास, तत्पूर्वं यथा स्यात्तथा निबद्धा तत्पूर्वनिबद्धा तया, तृ०वि०, एक०व०। **तया** - तद् स्त्री०, तृ०वि०, एक०व०। **अस्याः** - इदम् स्त्री०, ष०वि०, एक०व०। **रसनागुणास्पदं** - रसनायाः गुणः रसनागुणः, ष० तत्पु० समास, रसनागुणस्य आस्पदं, ष० तत्पु० समास, प्र०वि०, एक०व०। **सरागम्** - रागेण सहितम् इति सरागम् (तृ० तत्पु० समास) रागेण सहितं वर्तते इति सरागम् बहु० समास, (सहपूर्व०) **तत्** - प्र०वि०, एक०व०। **अकारि** - √कृ धातु, लुङ् लकार, प्र०पु०, एक०व०, कर्मवाच्य में चिण् प्रत्यय पुनः वृद्ध्यादि।

कोशः → **क्षण** - निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः। **रोम** - तनूरुहं रोम लोम। **रसना** - स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रश(स)ना तथा। **आस्पदम्** - प्रतिष्ठाकृत्यमास्पदम्। इत्यमरकोशः। **गुण** - गुणो मौर्व्यामप्रधाने रूपादौ सूद इन्द्रिये। त्यागे शौर्यादि सन्ध्यादिसत्त्वाद्यावृत्ति रज्जुषु॥ इति मेदिनीकोशः।

टिप्पणी → प्रस्तुत पद्य में 'सरागम्' पद से ध्वनित हो रहा है। जैसे - कोई प्रेमी किसी नायिका से दीर्घकाल तक अनुरक्त रहने के उपरान्त उस नायिका से तीन गुना अधिक सौन्दर्यवती नायिका से मिलने के बाद पुरानी नायिका को छोड़ कर दुसरी नायिका में अनुरक्त हो जाता है,

तथा उससे मिलने के समय रोमाञ्जित होता रहता है; ठीक उसी प्रकार पार्वती का कटि प्रदेश भी पहले स्वर्णजटित करधनी के साथ समान्य रूप से रहा, किन्तु मुञ्ज की बनी तीन लड़ियों वाली नूतन मेखला को धारण करने के बाद रोमाञ्चित होकर सराग (लाल- लाल) हो गया है।

11

प्रसङ्ग → पार्वती तपस्वियों के समान स्वयं कुशों को उखाड़ रही है और रूद्राक्ष माला को धारण कर रही है -

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।
कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः॥

(सञ्जी०) विसृष्टेति। **तया** देव्या **विसृष्टरागात्** त्यक्तलाक्षारसरञ्जनात् **अधरात्** अधरोष्ठात् **निवर्तितः।** 'निसृष्टरागात्' इति पाठे नितरां त्यक्त-लाक्षारागात्। रागत्यागेन निष्प्रयोजनत्वादिति भावः। तथा [**स्तनाङ्गरागारु-णितात्**] स्तनाङ्गरागेणारुणितादरुणीकृतात्। पतनसमये तस्य स्तनयोरुपरो-धादिति भावः। **कन्दुकात् च निवर्तितः**। [**कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः**] कुशाङ्कुराणामादानेन लवनेन परिक्षता व्रणिता अङ्गुलयो यस्य स तथोक्तः **करः** पाणिः **अक्षसूत्रप्रणयी** अक्षमालासहचरः **कृतः**॥

(शिशु०) विसृष्टेति। तया देव्या करो हस्तो अक्षसूत्रप्रणयी अक्षसूत्रे जपमालायां स्नेहवान् कृतः। कीदृशः करः? विसृष्टरागाद्विसृष्टस्त्यक्तो रागोऽलक्तकादिर्येन तादृशादधरात् स्तनाङ्गरागारुणितात्स्तनाङ्गरागेण रक्ता-त्कन्दुकाच्च निवर्तितो निवारितः। पुनः कीदृशः? कुशाङ्कुरादनेन ग्रहणेन परिक्षतः परिपाटितोऽङ्गुलिर्यस्य सः। प्राक्करो लाक्षारसेनाधरं रञ्जते क्री-डाकन्दुके च शक्तोऽभूत्। इदानीं तस्यानुचितत्वानिवर्तित इत्यर्थः॥

अन्वयः → तया विसृष्टरागात् अधरात् स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकात् निवर्तितः, कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः करः अक्षसूत्रप्रणयी कृतः।

अनुवाद → उस पार्वती के द्वारा अधर के रंगने से तथा स्तन पर लगे चन्दन आदि के लेप से लाल- लाल हुए गेन्द से हटाकर; दर्भाङ्कुरों के उखाड़ने के कारण क्षत- विक्षत हुई अङ्गुलियों को रुद्राक्ष माला का प्रेमी बना दिया गया।

शब्दार्थ → **तया** = (पार्वत्या) उस पार्वती के द्वारा, **विसृष्टरागात्** = (त्यक्तः लाक्षारसरञ्जनात्, परित्यक्तरञ्जनात्) त्यागे गए रंग वाले, **अधरात्** = (अधरोष्ठात्) निचले होठ से, **च** = और, **स्तनाङ्गरागारु-णितात्** = (कुचाङ्गरागरक्तात् पयोधराङ्गरागारुणीकृतात्, पयोधराङ्गराग-

लोहितात्) स्तनों पर लगे हुए (लाल चन्दनादि के) अङ्गराग से लालिमा-युक्त, **कन्दुकात्** = (गेन्दुकात्, तदाख्यक्रीडनकाम्) गेंद से, **निवर्तितः** = (निवारितः दूरीकृतः, पृथक् कृतः) रोक दिया, बन्द कर दिया, हटाया गया, **कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः** = (दर्भाङ्कुरग्रहणव्रणिताङ्गुलिः, दर्भाङ्कुरलवनव्रणिताङ्गुलिः) नुकीले कुशों के अंकुरों को काटने या उखाड़ने से घायल अङ्गुलियों वाला, **करः** = (हस्तः, पाणिः) हाथ, **अक्षरसूत्रप्रणयी** = (रुद्राक्षमालासहचरः, अक्षमालासहवासी) रुद्राक्षमाला का प्रेमी, **कृतः** = (विहितः) बना दिया गया।

भावार्थ → पार्वती ने होठों को रंगना छोड़ दिया तथा वक्षस्थल पर टकराने के कारण उसपर लगे अङ्गराग से लाल हो जाने वाले गेन्द से भी खेलना छोड़ दिया। जो हाथ होठों को रंगने से लाल रहते थे तथा जिन हाथों से पार्वती गेन्द खेला करती थी उन हाथों की अङ्गुलियाँ कुशों को उखाड़ने के कारण घायल हो गयी तथादि उसने अपने हाथ में रुद्राक्ष माला धारण कर लिया। आशय यह है कि पार्वती शृंङ्गार एवं क्रीडा से विरत होकर तप के कार्यों में संलग्न है।

भावार्थः → पार्वति याभ्यां हस्ताभ्यां पूर्वम् अधरोष्ठं रञ्जयति स्म कन्दुकक्रीडां च करोति स्म तपःसमये तत्कार्यद्वयं परित्यज्य तौ एव हस्तौ कुशग्रहणे अक्षमालाजपे च नियुक्तवतीति भावः।

व्याकरणम् → **तया** - तद् स्त्री०, तृ०वि०, एक०व०। **विसृष्टरागात्** - (वि+√सृज्+क्त) विसृष्टः रागः यस्मात् सः विसृष्टरागः, बहु० समास, तस्मात्, पञ्च०वि०, एक०व०। **अधरात्** - पञ्च०वि०, एक०व०। **स्तनाङ्गरागारुणितात्** - (√रञ्ज्+घन्, अरुणित = अरुण+इतच्) स्तनस्य अङ्गरागः स्तनाङ्गरागः, ष० तत्पु०, अरुणः संजातः अस्य सः अरुणितः 'तदस्य संजातं तारकादिभ्यः इतच्' सूत्र से इतच् प्रत्यय स्तनाङ्गरागेण अरुणितः स्तनाङ्गरागारुणितः, तस्मात्, तृ० तत्पु० समास, पञ्च०वि०, एक०व०। **कन्दुकात्** - पञ्च०वि०, एक०व०। **च** - अव्ययपद। **निवर्तितः** - (नि√वृत्+णिच्+क्त) नि उपसर्ग √वृत्+इटा, गम्+क्त प्रत्यय 'निष्ठा' से 'आर्धधातुकस्ये०' से इडागम एवं 'पुगन्तलघूपधस्य' से गुण होकर प्र०वि०, एक०व०। **कुशाङ्कुरादानपरिक्षतांगुलिः** - (आ+√दा+ल्युट्; परिक्षतः = परि+√क्षि+क्तः) कुशानाम् अङ्कुरा कुशाङ्कुराः, कुशाङ्कुराणाम् आदानं कुशाङ्कुरादानं- ष० तत्पु० समास, तेन कुशाङ्कुरादानेन परिक्षताः अङ्गुलयः यस्य सः - बहु० समास, प्र०वि०, एक०व०।

करः - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अक्षसूत्रप्रणयी -** अक्षाणां सूत्रं अक्षसूत्रं, ष॰ तत्पु॰ समास, अक्षसूत्रे प्रणयी इति अक्षसूत्रप्रणयी (सप्त॰ तत्पु॰ समास)। प्रणयः अस्यास्तीति प्रणयी 'अत इनिठनौ' से इनि प्रत्यय, अक्षसूत्रे प्रणयी अक्षसूत्रप्रणयी, सप्त॰ तत्पु॰ समास, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कृतः** - √कृ धातु+क्त प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कोशः → **रागः** - रागः प्रेम्णि वर्णे च। **अधरः** - ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससि। **अरुणः** - अरुणो भास्करेऽपि स्याद्वर्णभेदेऽपि च त्रिषु। **कन्दुकः** - गेन्दुकः कन्दुकः। **कुशः -** कुशो रामसुते दर्भे इति विश्वः। अस्त्री कुशं कुथो दर्भः पवित्रम्। **अङ्कुरः** - अङ्कुरोऽभिनवोद्भिदि। करः बलिहस्तांशवः कराः। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में एक ही हाथ का प्रयोग क्रमशः अधर रंगने,
कन्दुकक्रीडा, कुशोत्पाटन और माला जप में किए जाने के कारण पर्यायोक्ति अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

12

प्रसङ्ग → पार्वती ने अपना शृंगार, बहुमूल्य वस्त्र और अनेक प्रकार के मनोरञ्जनों को त्याग कर माला जपना शुरू कर दिया और बहुमूल्य शय्या पर शयन करना छोड़ दिया है -

महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले॥

(सञ्जी०) महार्हेति। [**महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः**]महानर्हो मूल्यं यस्याः सा महार्हा श्रेष्ठा सा शय्या तस्यां परिवर्तनेन लुण्ठनेन च्युतैर्भ्रष्टैः **स्वकेशपुष्पैः अपि या** देवी **दूयते स्म** क्लिश्यति स्म। पुष्पाधिकसौकुमार्यादिति भावः। **सा** देवी बाहुलतामुपधत्त उपधानीकरोतीति **बाहुलतोपधायिनी** सती **केवले** संस्तरणरहितं **स्थण्डिले** भूमौ **एव अशेत** शयितवती। तथा **निषेदुषी** उपविष्टा च। "क्वसुश्च इति क्वसुः।" "उगितश्च।" इति ङीप्। भूमावेव शयनादिव्यवहारो न जातूपरीत्यर्थः॥

(शिशु०) महार्हेति। या गौरी महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः महार्हायां निर्मूल्यायां शय्यायां परिवर्तनानि तैः कृत्वा पतितैः च्युतैः स्वकेशपाशनिवेशितपुष्पैरपि दूयते स्म खिद्यते स्म। सा बाहुलतोपधायिनी बाहुलतामुपदधाति गण्डूकतां नयतीति तादृशे केवले तृणाद्यावरणहिते स्थण्डिल एव भूमावेव निषेदुष्युपविष्टाऽशेत सुष्वाप व्रतवशात् स्थण्डिलशयनम्॥

अन्वयः → महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैः अपि या दूयते स्म, सा बाहुलतोपधायिनी (सती) केवले स्थण्डिल एव निषेदुषी (सती) अशेत।

अनुवाद → बहुमूल्य शय्या पर करवट बदलने से गिरे हुए अपने केश के पुष्पों से भी जो पार्वती कष्ट पाती थी; वह हाथ रूपी लता का तकिया लगाती हुई केवल भुमि पर ही (बिना शय्या के) बैठी- बैठी शयन करने लगी।

शब्दार्थ → **महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः** = (बहुमूल्यशय्यापरिलुण्ठ-नभ्रष्टैः पतितैः, बहुमूल्यशयनविवलनभ्रष्ट) बहुमूल्य शय्या पर करवट लेने से गिरे हुए, **स्वकेशपुष्पैः** = (स्वकुन्तलकुसुमैः, स्वकीयकचकु-सुमैः, निजचिकुरप्रसूनैः) अपने ही केशों में लगे हुए (गजरे आदि के) फूलों से, **अपि** = भी, **या** = (पार्वती) जो पार्वती, **दूयते स्म** = (कष्टम् अनुभवति स्म, कष्टमवाप्नोत्, परितप्यते स्मः) कष्ट पाती थी, **सा =** (पार्वती) वह, **केवलं =** मात्र (आस्तरणादिरहितायां - बिछौने आदि से रहित, आस्तरणारहिते), **बाहुलतोपधायिनी** = (भुजलतोपबर्हणविधा-यिनी भुजलतोपबर्हकारिणी सती, केवले संस्तरणरहिते, भुजलतोपधा-नकारिणी) बाहुलता रूपी तकिया लगाकर, **स्थण्डिले एव** = (भूतले पृथिव्यां, भुमावेव) वेदी/चबूतरा वाली पृथिवी पर, **एव** = ही, **निषेदुषी** = (उपविष्टा सती, आसीना सती) बैठी- बैठी, **अशेत** = (शयनमकरोत्, अस्वपत्) सोती थी।

भावार्थ → पार्वती राजभवन में बहुमूल्य शय्या पर सोती थी। शयन काल में बालों से गिरे फूल भी चुभकर उसको कष्ट देते थे। अर्थात् उसका शरीर फूलों से भी अधिक कोमल था। ऐसी पार्वती तपस्या के क्रम में भूमि पर ही बैठे - बैठे शयन करने लगी। उसने अपनी भुजाओं को ही तकिया बना लिया। कोमल शरीर वाली पार्वती के लिए इस प्रकार का कठोर तप अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

भावार्थः → या पार्वती तपसः पूर्वं बहुमूल्यशय्यायां शयाना सती पा-र्श्वपरिवर्तनेन पतितैः स्वकीयकेशकुसुमैः अपि व्यथते स्म सा तपःसमये प्रच्छादनरहिते केवले प्रस्तरमय भूमितले स्वबाहुं उपधानीकृत्य शेते स्म चेति भावः।

व्याकरणम् → **महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः** - ($\sqrt{}$शीङ्+क्यप् ; च्युतैः = $\sqrt{}$च्यु+क्त, तृ॰वि॰, एक॰व॰, परिवर्तन = परि+$\sqrt{}$वृत्+ल्युट्)

महान् अर्हः (मूल्यः) यस्याः सा महार्हाः, बहु॰ समास, महान् चासौ शय्या च कर्मधा॰ समास, महार्हशय्यायां परिवर्तनं महार्हशय्यापरिवर्त्तनं, सप्त॰ तत्पु॰ समास, तेन च्युतानि महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतानि, **तैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **स्वकेशपुष्पैः** - स्वस्य केशाः स्वकेशाः, स्वकेशानां पुष्पाणिः स्वकेशपुष्पाणि, ष॰ तत्पु॰ समास, तैः स्वकेशपुष्पैः, तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **अपि** - अव्ययपद। **या** - सर्वनाम यद् स्त्री॰, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **दूयते** - √दूङ् परितापे लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। दिवादिगणीय धातु होने से 'दिवादिभ्यः श्यन्' से श्यन् विकरण। स्म का अनुप्रयोग होने से 'लट् स्मे' सूत्र द्वारा भतकालार्थ में भी लट् लकार,। **सा** - तद् सर्वनाम स्त्री॰, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **बाहुलतोपधायिनी** - बाहुरेव लता बाहुलता कर्मधा॰ समास, ताम्, बाहुलताम्, उपधत्ते = उपधानीकरोति, तच्छीला इति बाहुलतोपधायिनी प्र॰वि॰, एक॰व॰, 'व्रते॰' सूत्र से तच्छीलार्थ में णिनि प्रत्यय। आतो युक् चिण्कृतोः से युक् आगम। **केवले** - सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **स्थण्डिले** - सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **एव** - अव्ययपद। **निषेदुषी** - (नि+√सद्+क्वसु+ङीप्) नि उपसर्ग पूर्वक √षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु से 'भाषायां सद्वसश्रुवः' तथा 'क्वसुश्च' सूत्र से लिट् लकार, के स्थान पर क्वसु प्रत्यय, स्त्रीत्व विवक्षा में 'उगितश्च' सूत्र से ङीप् होकर, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अशेत** - √शीङ् स्वप्ने लङ् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **स्थण्डिल** - समौस्थण्डिलचत्वरौ। **उपधानं** - उपधानं तूपबर्हः शय्यायां शमनीयवत्। **च्युतं** - स्रस्तं च्युतयतं गलितम्। **केशः** - चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः। **पुष्पं** - सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्। **बाहू** - भुजबाहूप्रवेष्टो दोः। **केवल** - निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गं त्वेककृत्स्नयोः। इत्यमरकोशः।

टिप्पणी → महर्षि याज्ञवल्क्य ने तपस्वी की मर्यादा बताते हुए कहा है - **स्वप्याद् भूमौ शुची रात्रौ दिवसं नियमैर्नयेत्।**
स्थानासनविहारैर्वा योगाभ्यासेन वा तथा।।

अर्थात् - तपस्वी को चाहिए कि वह रात्रि में पवित्र भाव से भूमि पर शयन करे, तप के नियमों का पालन करे अथवा भूमि पर आसन लगाकर योगाभ्यास करते हुए दिन बिताये। कालिदास की तपस्यारत पार्वती भी शास्त्रोक्त तप की मर्यादा का पालन करते हुए भूमि पर सोती है।

अलंकार → परिवृत्ति

प्रसङ्ग → इस श्लोक में पार्वती द्वारा तप में बाधक स्वाभाविक भोग-विलासों का भी त्याग करने का वर्णन है -

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च॥

(सञ्जी०) पुनरिति। **नियमस्थया** व्रतस्थया **तया** देव्या **द्वये अपि द्वयं पुनः ग्रहीतुं** पुनरानेतुं **निक्षेपः अर्पितामिव** निक्षेपत्वेनार्पितं किमु। क्वचित् 'द्वयीषु' इति प्रामादिः पाठः। कुत्र द्वये किं द्वयमर्पितमित्याह - **तन्वीषु लतासु** विलास एव चेष्टितं **विलासचेष्टितं हरिणाङ्गनासु विलोलदृष्टं** चञ्चलावलोकितं **च**। व्रतस्थायां तस्यां तयोरदर्शनाल्लतादिषु दर्शनाच्चार्पितमिवेत्युत्प्रेक्षा न तु वस्तुतोऽर्पणमस्तीति भावः॥

(शिशु०) पुनर्ग्रहीतुमिति। देव्या व्रतवशाद्विभ्रमगतिचंचलः प्रेक्ष्यतेत्युक्ते तत्रोत्प्रेक्षते। कविनियमस्था व्रतस्थया तया गौर्या पुनर्ग्रहीतुं द्वयेषु द्वयं निक्षेपमिव निक्षिप्यत इति निक्षेपमर्थितं न्यस्तं। केषु किमित्याह। तेन तन्वीषु लतासु विलासचेष्टितं विलासगतिर्हरिणाङ्गनासु मृगीषु विलोलदृष्टिश्चञ्चलत्वं। द्वयमिति सामान्योपक्रमान्नपुंसकनिर्देशः॥

अन्वयः → नियमस्थया तया तन्वीषु लतासु विलासचेष्टितं हरिणाङ्गनासु
विलोलदृष्टं च, द्वये द्वयं अपि पुनः ग्रहीतुं निक्षेप अर्पितम् इव।

अनुवाद → व्रत के नियमों का पालन करने वाली उस पार्वती ने मानों पतली लताओं में अपनी सहज विलास युक्त चेष्टाओं तथा हरिणियों में चञ्चल दृष्टि इन दोनों को पुनः वापस लेने के लिए धरोहर के रूप में रख दिया।

शब्दार्थ → **नियमस्थया** = (व्रतस्थया, गृहीतव्रतया) तपस्या के नियम- पालन में स्थित, **तया** = (पार्वत्या, गौर्या) उस पार्वती के द्वारा, **तन्वीषु** = (कृशासु कृशावयवासु) कृश, सुकोमल, पतली, **लतासु** = (वल्लीषु, बल्लरीषु, विटपेषु) लताओं में, **विलासचेष्टितं** = (स्त्रीसुलभविभ्रमचेष्टितं, सलीलव्यापारः) स्त्रीसुलभ भ्रूविक्षेप आदि चेष्टाओं को, **हरिणाङ्गनासु** = (हरिणीषु, मृगीषु) हरिणियों में, **विलोलदृष्टं च** = (चञ्चलावलोकितं, चञ्चलवीक्षितं, चञ्चलेक्षितं च) और चञ्चल दृष्टि, **द्वये अपि** = (उभयत्रापि, उभयेऽपि) दोनों में, **द्वयम्** = (द्वितयम्, पयर्वोक्तमिति यावत्) दोनों को ही, **पुनः** = (भूयः) फिर से, **ग्रहीतुं** = (आदातुम्) वापस ग्रहण करने के लिए, **निक्षेपः** = (न्यासः) धरोहर के,

अर्पितम् इव = समर्पिम् किमु, **अर्पितं** = (समर्पितमिव, दत्तम् इव) मानों सौंप दी गईं।

भावार्थ → जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपना धन किसी दूसरे के पास धरोहर के रूप में रखता है और आवश्यकता पड़ने पर पुनः वापस ले लेता है. उसी प्रकार पार्वती ने भी अपनी समस्त विलास चेष्टाओं को सुकोमल लताओं के पास तथा अपनी चञ्चल दृष्टि हिरणियों के समीप (तपस्या समाप्ति के उपरान्त पुनः वापस ले लेने के लिए) मानों धरोहर के रूप में रख दिया।

भावार्थः → गृहीतव्रतया पार्वत्या शिवसमागमकाले पुनः ग्रहीतुं न्यास-भूतं धनमिव कोमलासु मालत्यादिलतासु विभ्रमादिचेष्टितं हरिणिषु चञ्च-लदृष्टिञ्च तद्द्वयं न्यासरूपेण अर्पितवती। अत्र व्रतस्थायां पार्वत्यां तयोः द्वयोरदर्शनात् लतामृगीषु दर्शनाच्चेत्युत्प्रेक्षा सङ्गच्छते।

व्याकरणम् → **नियमस्थया** - (नियम+√स्था+कः, तृ॰वि॰, एक॰व॰) नियमे तिष्ठतीति नियमस्थः (उपपद तत्पु॰ समास) तया नियमस्थया, तृ॰ तत्पु॰ समास, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तन्वीषु** - समास, बहु॰व॰। **लतासु** - समास, बहु॰व॰। **विलासचेष्टितं** - (√चे-ष्ट्+क्त) विलास एव चेष्टितं विलासचेष्टितं 'मयूरव्यंसकादयश्च' से रूपकसमास, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **हरिणाङ्गनासु** - हरिणानाम् अङ्गनाः हरिणाङ्गनाः, ष॰ तत्पु॰ समास, तासु, हरिणाङ्गनासु, बहु॰व॰ समास। **विलोलदृष्टं** - (√दृश्+क्त) विलोलञ्च तद् दृष्टं च, कर्मधा॰ समास, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **द्वये** - द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वयं तस्मिन् द्वये 'तयप्' प्रत्यय के स्थान पर 'द्वित्रिभ्यां तयस्याज्वा॰' से अयच् आदेश, समास, एक॰व॰। **द्वयम्** - पूर्ववत्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **ग्रहीतुम्** - (√ग्रह्+तुमुन्) √ग्रह उपादाने से 'तुमुन्' प्रत्यय, अव्ययपद मान्त कृदन्त होने से। **निक्षेपः** - (नि+√क्षिप्+घञ्) निक्षिप्यतेऽसौ इति निक्षेपः, नि उपसर्ग √क्षिप् धातु से 'घञ्' प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **इव** - अव्ययपद। **अर्पि-तम्** - (√ऋ+णिच्+पुक्+क्त) √ऋ गतौ+णिच् प्रत्यय पुक् आगम और क्त प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कोशः → **नियम** - नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादिपुण्यकम्। **निक्षेप** - पुमानुनिधिर्न्यासः निक्षेपः। **लता** - वल्ली तु व्रततिर्लता। **तनु** - विरलं सूक्ष्मं तनु। **लोलं** - चलं लोलं चलाचलम्। **हरिण** - मृगे कुरङ्गवातायुह-रिणाजिनयोनयः। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में 'इव' का प्रयोग सम्भावना व्यक्त करने के लिए किए जाने के कारण 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है। तप का आचरण करते समय पार्वती का शरीर निश्चल और दृष्टि स्थिर है। अतएव कवि उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते हुए कहता है कि पार्वती ने अपनी विलास की चेष्टाओं को लताओं के समीप और चञ्चल दृष्टि को हरिणियों के समीप मानो धरोहर के रूप में रख दिया है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

टिप्पणी → कालिदास ने पार्वती की युवावस्था का वर्णन करते हुए कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में भी ऐसी उत्प्रेक्षा का वर्णन किया है जहाँ पार्वती की चंचल दृष्टि को लेकर यह सन्देह मिश्रित उत्प्रेक्षा की गई है कि पार्वती ने सुन्दर कटाक्ष पात (चंचल दृष्टि से देखना) की कला हरिणियों से सीखी है या हरिणियों ने पार्वती से सीखी है -

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या।
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः॥

14

प्रसङ्ग → मुनियों के समान जीवन यापन करते हुए पार्वती स्वयं ही पौधों को किस प्रकार स्नेहपूर्वक सींच रही है -

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति॥

(सञ्जी०) अतन्द्रितेति। **सा** देवी **स्वयमेव अतन्द्रिता** संजाततन्द्रा सती। तारकादित्वादितच्प्रत्ययः। **वृक्षकान्** स्वल्पवृक्षान्। 'अल्पे' इत्यल्पार्थे कन् प्रत्ययः। [**घटस्तनप्रसवणैः**]घटाविवस्तनौ तयोः प्रस्रवणैः प्रसृतपयोभिः **व्यवर्धयत्। गुहः** कुमारः **अपि प्रथमाप्तजन्मनां** प्रथमलब्धजन्मनाम्। अग्रजातानामित्यर्थः। **येषां** वृक्षकाणां सम्बन्धि **पुत्रवात्सल्यं** सुतप्रेम **न अपाकरिष्यति।** उत्तरत्र कुमारोदयेऽपि न तेषु पुत्रवात्सल्यं निवर्तिष्यत इत्यर्थः॥

(शिशु०) अतन्द्रितेति। अतन्द्रिता निरालसा सा घटस्तनप्रस्रवणैर्घटावेव स्तनौ तयोः प्रस्रवणैः स्वयमेव वृक्षकान् व्यवर्धयत् वर्धयामास। प्रथमाप्तजन्मनां प्रथम- लब्धजन्मनां येषां वृक्षाणां कार्तिकेयोपि पुत्रवात्सल्यं पुत्रस्नेहं नापाकरिष्यति न दूरीकरिष्यति॥

अन्वयः → सा स्वयम् एव अतन्द्रिता सती वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्धयत् गुहः अपि प्रथमाप्तजन्मनां येषां पुत्रवात्सल्यं न अपाकरिष्यति।

अनुवाद → उस पार्वती ने स्वयं ही आलस्य रहित होकर छोटे- छोटे पौधों को घट रूपी स्तन की धाराओं से सींच कर बढ़ाया। कुमार कार्तिकेय भी इन पहले जन्म लेने वाले वृक्षों के प्रति पार्वती के वात्सल्यभाव को दूर नहीं कर पायेंगे।

शब्दार्थ → **सा** = उसने (पार्वती ने, गौरी), **स्वयमेव** = (आत्मनैव), **अतन्द्रिता** = (आलस्यविहीना, निरालसा, प्रमादरहिता, आलस्यरहिता) आलस्य न करते हुए, **वृक्षकान्** = (लघुवृक्षान्, बाहुद्रमान्) छोटे छोटे वृक्षों को, **घटस्तनप्रस्रवणैः** = (कलशकुचप्रसृतपयोभिः कुम्भस्तनपयोभिः, कम्भकुचस्रुतपयोभिः) बड़े घटरूपी स्तनों के जलों से, **व्यवर्धयत्** = (वर्धयामास) सींच- सींच कर संवर्धित किया, **गुहः अपि** = (कुमारः कार्तिकेयः, स्कन्दः, कुमारकार्तिकेयोऽपि) कुमार कार्तिकेय, **अपि** = कार्तिकेय भी, **प्रथमाप्तजन्मनाम्** = (पूर्वलब्धजन्मनां अग्रजातानाम्) अपने से पहले जन्म ले लेने वाले, **येषाम्** = (वृक्षकाणाम्) जिन वृक्षों (के प्रति), **पुत्रवात्सल्यम्** = (सुतप्रेम, अपत्यस्नेहं) पुत्रस्नेह को, **न** = नहीं, **अपाकरिष्यति** = (दूरीकरिष्यति, न अपनेष्यति) दूर कर सकेंगे।

भावार्थ → तपस्या के समय पार्वती बिना आलस्य किए आश्रम के पौधों को स्वयं जल से सींचा करती थी। जिए प्रकार माता अपने नवजात शिशु की देखभाल करती है उसी प्रकार पार्वती का वृक्षों के प्रति वात्सल्यपूर्ण स्नेह था। कवि कल्पना करता है कि पार्वती का वृक्षों के प्रति स्वाभाविक स्नेह सम्भवतः भावी पुत्र कुमार (कार्तिकेय) के प्रति भी नहीं हो पायेगा। कवि कालिदास का प्रकृति- प्रेम अन्य काव्यों में भी द्रष्टव्य है। यथा - रघु आश्रम के निवासियों के साथ-साथ आश्रम के वृक्षों का भी कुशल क्षेम पूछते हैं -

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषं।
कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमाच्छिदं आश्रमपादपानां॥5/65॥

पितागृह से विदाई के समय आश्रम के वृक्षों के प्रति शकुन्तला का वात्सल्य प्रेम द्रष्टव्य है -

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

भावार्थः → पार्वती तपजन्यश्रमदुखःमगणयित्वा स्वयमेव लघुवृक्षान्

घटोदकेन सिञ्चन्ती तानवर्धयत। प्रथमजातान् वृक्षान् प्रति पार्वत्याः स्नेहं पश्चात् उत्पन्नस्य पुत्रस्य स्कन्दकुमारस्य स्नेहः न दूरीकरिष्यति।

व्याकरणम् → **सा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **स्वयम्** - अव्ययपद। **एव** - अव्ययपद। **अतन्द्रिता** - (न+तन्द्रा+इतच्) तन्द्रा सञ्जाता अस्य इति तन्द्रिता 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' से इतच् प्रत्यय स्त्रीत्व में 'टाप्' न तन्द्रिता इति अतन्द्रिता (नञ् तत्पु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वृक्षकान्** - अल्पाः वृक्षाः वृक्षकाः तान् वृक्षकान् - द्वि॰वि॰, बहु॰व॰, वृक्ष+कन्, प्रत्यय 'अल्पे' सूत्र से। **घटस्तनप्रस्रवणैः** - घटौ एव स्तनौ घटस्तनौ कर्मधा॰ समास, घटस्तनयोः प्रस्रवणानि, ष॰ तत्पु॰ समास, तैः घटस्तनप्रस्रवणैः तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **व्यवर्धयत्** - वि उपसर्ग पूर्वक √वृध् धातु णिच् (प्रेरणार्थक) लङ् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **गुहः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्रथमाप्तजन्मनां** - प्रथमे आप्तं प्रथमाप्तं, तत् जन्म येषां ते प्रथमाप्तजन्मानः, बहु॰ समास, तेषां, ष॰वि॰, बहु॰व॰। **येषां** - यद् सर्वनाम, ष॰वि॰, बहु॰व॰। **पुत्रवात्सल्यं** - (वत्सल+ ष्यञ्) वत्सलस्य भावः कर्म वा वात्सल्यं, पुत्रस्य वात्सल्यम् इति पुत्रवात्सल्यम् (ष॰ तत्पु॰ समास) पुत्रेषु
वात्सल्यं पुत्रवात्सल्यं - (सप्त॰ तत्पु॰ समास) तत् पुत्रवात्सल्यं - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अपाकरिष्यति** - अप+आ उपसर्ग पूर्वक √कृ धातु लृट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **घटः** - घटः कुट निवापस्त्री। **वत्सल** - स्निग्धस्तु वत्सलः। **वृक्ष** - वृक्षो महीरुहः शाखी। **जन्म** - जनुर्जननजन्मानि। **गुहः** - सेनानी-रग्निभूर्गुहः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में 'विरोध' तथा 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है; किन्तु यह चमत्कारक नहीं है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

टिप्पणी → कालिदास का प्रकृति प्रेम विश्रुत है। उनके साहित्य में स्थान- स्थान पर इसी प्रकार के भाव ओत- प्रोत है। रघुवंश के पञ्चम सर्ग में रघु कौत्स संवाद में आश्रम निवासियों के कुशलक्षेम के साथ रघु आश्रम के पौधों का भी कुशल- क्षेम पूछते हैं -

यहाँ पर कवि पौधों को सुतनिर्विशेष बताते हैं। इसी प्रकार अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में भी अनेकत्र कालिदास का प्रकृति प्रेम पल्लवित हुआ है जैसे चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला की विदाई के समय पौधों के प्रति बन्धुत्व भाव अत्यन्त मुखरित हुआ है -

15

प्रसङ्ग → मुनियों के समान अहिंसक जीवन यापन करते हुए पार्वती वन्य - जीवन के परिवेश में रम गई थी। हिरण आदि पशु पार्वती पर विश्वास करने लगे थे -

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचने॥

(सञ्जी०) अरण्येति। [**अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः**]अरण्यबीजानां नीवारादीनामञ्जलयस्तेषां दानेन लालिता **हरिणाः च तस्यां** देव्यां **तथा** विशश्वसुः विस्रम्भं जग्मुः।'समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः। **यथा कुतूहलात्** औत्सुक्यात् **तदीयैः** हरिणसम्बन्धिभिः **नयनैः** नेत्रैः करणैः। स्वकीये **लोचने सखीनां पुरः** पुरतः। अनेन तेषां सम्बन्धसहत्वमुक्तम्। **अमिमीत**। अक्षिपरिमाणतारतम्यज्ञानाय मानं चकारित्यर्थः। केचित्तु सा पार्वती तदीयैर्नेत्रैः कुतूहलात्पुरोऽग्रे वर्तमानानां सखीनां लोचने अमिमीत व्रतस्थत्वान्नात्मन इत्याहुः।'माङ्माने' इत्यस्माद्धातोर्लङ्। इयमेव खलु विश्वासस्य पराकाष्ठा यदक्षिपीडनेऽपि न क्षुभ्यन्तीति भावः॥

(शिशु०) **अरण्येति**। तस्यां गौर्यां हरिणास्तथा विशश्वसुर्विश्वासं प्रापुः। यथा स तदीयैर्हरिणसंबन्धिभिर्नयनैर्नेत्रैः कुतूहलात्कौतुकात्पुरोऽग्रतः सखीनां लोचने अमिमीत। कानि विस्तृतानीति परिच्छेदं कृतवती व्रतस्थत्वान्नात्मना। कीदृशो हरिणाः। अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः। अरण्यबीजानि नीवारादयस्तेषां दानं तेन लालिताः पोषिताः ये ते॥

अन्वयः → अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः हरिणाश्च तस्यां तथा विशश्वसुः, यथा कुतूहलात् तदीयैः नयनैः पुरः सखीनां लोचने अमिमीत।

अनुवाद → वन में उत्पन्न होने वाले नीवार आदि बीजों को अञ्जली में भर- भर कर पाले गए हिरण उस पार्वती पर इतना विश्वास करते थे जिससे उत्सुकतावश पार्वती उन हरिणों की आँखों से अपने पास उपस्थित सखियों के नेत्रों को नापती थी।

शब्दार्थ → **अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः** = (नीवारादि वनबीजाञ्जलिदानपालिताः, बिपिनबीजाञ्जलिबिलरणपालिताः)हथेली या मुट्ठी भर जंगली धान्य दे देकर पाले गए, **हरिणाः** = (मृगाः) हरिण, **तस्याम्** = (पार्वत्यां, गौर्याम्) पार्वती पर, **तथा** = (तेन प्रकारेण)उतना, **विशश्वसुः** = (विश्वासमकुर्वन् विश्वासं जग्मुः, विश्वासं चक्रु) विश्वास करने लगे थे,**यथा** = (येन प्रकारेण) जिस कारण, (वह पार्वती) **कुतूहलात्** =

(औत्सुक्यात्, उत्सुकाया) उत्सुकता वश, **तदीयैः** = (मृगसम्बन्धिभिः), **नयनैः** = (हरिणलोचनैः, चक्षुर्भिः)हरिण की आँखों से, **सखीनाम्** = (वयस्यानां सहचारीणाम्) सखियों के, **पुरः** = (पुरतः, अग्रे) सामने, **लोचने** = (स्वकीयनयने, नयने, स्वीये इति शेषः) अपनी दोनों आँखों को, **अमिमीत** = (मानम् चकार अकरोत्, मापयामास) नापा करती थी।

भावार्थ → इस श्लोक में पार्वती की बालसुलभ चपलता एवं निश्छलता का वर्णन है। पार्वती स्वयं अपने हाथों से हिरण को प्रतिदिन घास एवं नीवार (जंगली अन्न) के बीजों को स्नेहपूर्वक खिलाती थी जिससे हिरणों को पार्वती पर अत्यन्त विश्वास हो गया था। अपने अहित की आशंका से रहित हिरणें विश्वास पूर्वक पार्वती के पास चली जाती थीं। यह विश्वास इतना था पार्वती उन हिरणों को पकड़कर उनकी आँखों से अपनी आँखों को यह जानने के लिए नापा करती थी कि किसके नेत्र बड़े हैं। इस श्लोक में हिरण का पार्वती पर दृढ़ विश्वास द्योतित हो रहा है।

भावार्थः → अञ्जलिपरिमितान् नीवारादीन् प्रतिदिनं प्रदानेन परिचिता हरिणाः पार्वत्यां विश्वासं चक्रुः। तथा मम नेत्रयोः मृगनेत्राणां कियदन्तरमिति ज्ञातुं बालसुलभौत्सुक्यात् सखीनां पुरतः हरिणनेत्रैः स्वीये नेत्रे माति स्म तथापि भयरहिताः मृगाः न विचेलुः। अत्र मृगानां पार्वतीं प्रति विश्वासस्य पराकाष्ठा वर्तते यत् नेत्रपीडिताः अपि ते मृगाः न क्षुभ्यन्ति स्म इति भावः।

व्याकरणम् → **अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः** - (√लाल्+णिच्+क्त) अरण्यस्य बीजानि अरण्यबीजानि, अरण्यबीजानाम् अञ्जलयः अरण्यबीजाञ्जलयः, अरण्यबीजाञ्जलीनां दानं अरण्यबीजाञ्जलिदानं, ष॰ तत्पु॰ समास, सर्वत्र तेन अरण्यबीजाञ्जलिदानेन लालिताः, तृ॰ तत्पु॰ समास, प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **हरिणाः** - प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **च** - अव्ययपद। **तस्यां** - तद्, स्त्री॰, सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **तथा** - अव्ययपद। **विशश्वसुः** - वि उपसर्गपूर्वक √श्वस् धातु, लिट् लकार, प्र॰पु॰, बहु॰व॰। **यथा** - अव्ययपद। **कुतूहलात्** - कुतूं चर्ममयतैलं हलति विलिखति तद्वत् अन्तःकरणम् उत्कण्ठापूर्णं करोति इति। अपूर्ववस्तुदिदृक्षाद्यतिशयः। कुतू+हल्+मूलविभुजादिपाठ से 'क' प्रत्यय होकर, पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **तदीयैः** - (तद्+छ, तृ॰वि॰, बहु॰व॰) तेषाम् इमानि तदीयानि तैः तदीयैः। 'वृद्धाच्छः' सूत्र से तद्+छ प्रत्यय, तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **नयनैः** - नीयते

दृष्टिविषयोऽनेन √नी+करणे+ ल्युट् प्रत्यय 'करणाधिकरणयोश्च' सूत्र से। तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **पुरस्** - अव्ययपद। **सखीनाम्** - ष॰वि॰, बहु॰व॰। **लोचने** - √लोचृ दर्शने धातु से ल्युट् प्रत्यय, सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **अमिमीत** - √माङ् माने धातु, लङ् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **अरण्यं** - अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्। **अञ्जलिः** - पाणिनिकुब्जः प्रसृतिस्तौ युतावञ्जलिः पुमान्। **दानं** - त्यागो वहापितं दानं विश्राणनं वितरणम्। **लोचनं** - लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी। **कुतूहलं** - कौतूहलं कौतुकश्च कुतुकञ्च कुतूहलम्। इत्यमरकोशः।

16

प्रसङ्ग → तपस्या में संलग्न पार्वती का कठोर व्रतपालन आकर्षक और अनुकरणीय बन गया और लोग उसके दर्शन हेतु आने लगे -

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते॥

(सञ्जी०) कृतेति। **कृताभिषेकां** कृतस्नानां **हुतजातवेदसं** हुताग्निकाम्। कृतहोमामित्यर्थः। त्वचा वल्कलेनोत्तरासङ्गवतीमुत्तरीयवतीं **त्वगुत्तरासङ्गवतीम्।** अधीतमस्या अस्तीती **अधीतिनीं** स्तुतिपाठादि कुर्वतीम्। 'इष्टादिभ्यश्च' इतीनिप्रत्ययः। **तां** देवीं **दिदृक्षवः** द्रष्टुमिच्छवः **ऋषयः** मुनयः **अभ्युपागमन्** समुपागताः। न चात्र कनिष्ठसेवादोष इत्याह- **धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते** न प्रमाणीक्रियते। सति धर्मज्यैष्ठ्ये वयोज्यैष्ठ्यं न प्रयोजकमित्यर्थः। तथा च मनुः (न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वा युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः) इति॥

(शिशु०) कृतेति। तां गौरीं दिदृक्षवो द्रष्टुमिच्छवो मुनयोऽभ्युपागमन् समाजग्मुः कीदृशीं तां। कृताभिषेकां। कृतः विहितमभिषेकः स्नानं यया सा। तथा हुतजातवेदसं हुतो जातवेदा अग्निर्यया तां। त्वग्वल्कलं तदुत्तरासङ्गमुत्तरीयमस्या अस्तीति तां। कथमल्पवयसं महान्तः समागता इत्यत आह। धर्मवृद्धेषु तपोगरिष्ठेषु वयो न समीक्ष्यते न विचार्यते। त्वगुत्तरासंगवतीमित्यत्र बहुव्रीहिमत्वर्थीययोः समानार्थत्वात्कथं मतुप्। उच्यते। एकीयमतमेतदिति। कर्मधारयादपि मत्वर्थीयः। यद्वा त्वया उत्तरासंगवतीति तृतीया समासः॥

अन्वयः → कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीम् अधीतिनी तां दिदृक्षवः ऋषयः अभ्युपागमन्। धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते॥

अनुवाद → स्नान करने वाली, अग्नि में होम करने वाली, वल्कल

वस्त्रों को धारण करने वाली, वेद पाठ करने वाली उस पार्वती का दर्शन करने की इच्छा से (चिरकाल से तपश्चर्या में संलग्न) ऋषिगण सभी दिशाओं से आने लगे। क्योंकि धर्मवृद्ध लोगों की अवस्था का विचार नहीं किया जाता है।

शब्दार्थ → **कृताभिषेकां** = (कृतस्नानां, विहितस्नानां, अधर्मषणं = पापों को नष्ट करने हेतु, कृतस्नानाम्) स्नान कर लेने वाली, **हुतजातवेदसं** = (कृताग्निहोमां, विहिताग्निहोमाम्) प्रज्ज्वलित अग्नि में अग्निहोत्र आदि हवन कर लेने वाली, **त्वगुत्तरासङ्गवतीम् =** (वल्कलोत्तरीयसंयुताम्, घृतवल्कलोत्तरीयाम्) वल्कल का उत्तरीय धारण करने वाली, **अधीतिनीम्** = (वेदपाठादिकुर्वाणां स्तुतिपाठादिकुर्वन्तीम्, स्तोत्रपाठादिपराम्) वेदाध्ययन करने वाली, **ताम्** = (पार्वतीम्)पार्वती को, **दिदृक्षवः =** (द्रष्टुम् इच्छतः द्रष्टुकामाः, द्रष्टुम् इच्छवः) देखने के इच्छुक, **महर्षयः** = (ऋषयः) ऋषिगण, **अभ्युपागमन्** = (समुपागताः, समागताः, प्राप्नुवन्) सब ओर से पास आने लगे, **धर्मवृद्धेषु** = (धर्मेण श्रेष्ठेषु तपो गरिष्ठेषु, तपोवृद्धेषु) धर्माचरण में श्रेष्ठ जनों की, **वयः** = (अवस्था) बाल्याधिकं अवस्था, **न** = नहीं, **समीक्ष्यते** = (निरूप्यते) देखी जाती है।

भावार्थ → पार्वती पूर्ण मनोयोग से तपस्या के अनुकूल दिनचर्या का पालन करने लगी। त्रिकाल स्थान करने वाली, नित्य सन्ध्या- वन्दनादि से शुद्ध अन्तःकरण वाली, वल्कल वस्त्र धारण करने वाली, नित्य वेदाध्ययन करने वाली उस पार्वती की ख्याति दूर- दूर तक फैल गयी जिसे देखने के लिए अनेक ऋषिगण दूर- दूर से तपोवन आने लगे। यद्यपि पार्वती की अवस्था ऋषियों की अपेक्षा बहुत कम थी तथापि ऋषियों ने पार्वती को बहुत सम्मान दिया क्योंकि धर्मवृद्धों (अत्यधिक धार्मिक) के सम्बन्ध में अवस्था नहीं देखी जाती है।'धर्मशास्त्रों' के अनुसार चार प्रकार के वृद्ध होते हैं - वैराग्यवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, धर्मवृद्ध और वयोवृद्ध। वयोवृद्ध की अपेक्षा धर्मवृद्ध को वरीयता (तृतीय क्रम) प्राप्त होने के कारण पार्वती वयोवृद्ध ऋषियों के लिए सम्माननीया हो गयी थी। इस सम्बन्ध में मनुस्मृति का यह कथन प्रासांगिक है -

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वा युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥मनुस्मृति॥

भावार्थः → तपःपूतान्तःकरणाः वयोवृद्धाः ऋषयः अघमर्षणादिस्नानशुद्धशरीराम् अग्निहोमेन पवित्रान्तःकरणां वल्कलवसनां जपस्तुतिपाठादि

कुर्वाणां भगवतीं पार्वतीं द्रष्टुकामाः सन्तः तस्याः समीपम् उपागताः। यतो हि कनिष्ठेषु किन्तु तपोवृद्धेषु वयः न परिगण्यते। मनुना चतुर्विधेषु वृद्धेषु ज्ञानवृद्धत्वस्य प्राथम्यमुक्तम्।

***व्याकरणम्* → कृताभिषेकां** - (अभि+√सिच्+घञ्) कृतः अभिषेकः यया सा कृताभिषेका (बहु॰ समास) ताम् द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **हुतजातवेदसं** - हुतः जातवेदाः यया सा ताम्, हुतजातवेदसं (बहु॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰, **त्वगुत्तरासङ्गवतीम्** - उत्तरे ऊर्ध्वभागे आसज्यते इति उत्तरासङ्गः, √षञ्ज् सङ्गे से घञ् प्रत्यय। उत्तरासङ्गः अस्य अस्तीति उत्तरासङ्गवती, मतुप् प्रत्यय, त्वचा उत्तरासङ्गवती या तां, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अधीतिनीं** - (अधीत+इनि+ङीप्) अधीतम् अस्या अस्तीति अधीतिनी ताम्, 'इष्टादिभ्यश्च' से इनि प्रत्यय, स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् 'ऋन्नेभ्यो ङीप्'। द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **दिदृक्षवः** - (√दृश्+सन्+उ) √दृशिर् प्रेक्षणे+इच्छार्थक सन् प्रत्यय करके द्रष्टुम् इच्छति दिदृक्ष बना, पुनः 'सनाशंसभिक्ष उः' से उ प्रत्यय करने पर दिदृक्षः, प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **ऋषयः** - ऋषति प्राप्नोति सर्वान् मन्त्रान् ज्ञानेन, √ऋष्+गुपधात् कित् इस सूत्र से इन् प्रत्यय होकर ऋषि शब्द बना। प्र॰वि॰, बहु॰व॰ में। **अभ्युपागमन्** - अभि और उप और उपसर्ग पूर्वक √गम्लृ गतौ धातु से लुङ् लकार, प्र॰पु॰, बहु॰व॰। **धर्मवृद्धेषु** - (√वृध्+क्त, वृद्धः तेषु) धर्मेण वृद्धाः इति धर्मवृद्धाः (तृ॰ तत्पु॰ समास) तेषु समास, बहु॰व॰। **वयः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **समीक्ष्यते** - सम् उपसर्गपूर्वक √ईक्ष् दर्शने धातु से कर्म वाच्य में यक् लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

***कोशः* → जातवेदाः** - कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात्। **उत्तरीयं** - द्वौप्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहति का तथा। संव्यानमुत्तरीयं च। **ऋषिः** - ऋषयः सत्यवचसः। **वृद्धः** - बुधवृद्धौ पण्डितेऽपि। **वयः** - खगबाल्यादिनोर्वयः। इत्यमरकोशः।

***अलङ्कार* →** प्रस्तुत पद्य के चतुर्थ चरण 'धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते' के द्वारा पूर्वोक्त तीन चरणों का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

***टिप्पणी* →** वृद्धत्व धर्मशास्त्रों में चार प्रकार का माना गया है - 1. वैराग्य वृद्धत्व, 2. ज्ञानवृद्धत्व, 3. धर्मवृद्धत्व, 4. वयोवृद्धत्व। इनमें से पूर्व तीन में अवस्था वृद्धत्व का कारण नहीं है; अतः वयोवृद्धत्व से पूर्वोक्त तीनों श्रेष्ठ हैं। महर्षि मनु ने आयु के स्थान पर विद्या वृद्ध की

ही प्रशंसा करते हुए इस श्लोक में कहा है - कोई व्यक्ति केवल शिर के बालों के पकने पर वृद्ध अथवा श्रेष्ठ नहीं माना जाता, अपितु जो युवा होने पर ज्ञान- प्राप्ति में लगा रहता है वही ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है।

17

प्रसङ्ग → इस श्लोक में पार्वती के तपस्या के प्रभाव से पवित्र हुए तपोवन का वर्णन है -

विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि।
नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम्॥

(सञ्जी०) विरोधीति। [**विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं**] विरोधिभिः सत्त्वैर्गोव्याघ्रादिभिरुज्झितपूर्वमत्सरं त्यक्तपूर्ववैरम्। हिंसारहितमित्यर्थः। **द्रुमै**ः [**अभीष्टप्रसवाचिंतातिथि**] अभीष्टप्रसवेनेष्टफलेनार्चिताः पूजिता अतिथयो यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। [**नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं**] नवानामुटजानां पर्णशालानामभ्यन्तरेषु सम्भृताः सञ्चिता अनला अग्न्यो यस्मिंस्तत्तथोक्तं **तच्च तपोवनम्**। पावयतीति **पावनं बभूव**। अहिंसातिथिसत्काराग्निपरिचर्याभिर्जगत्पावनं बभूवेव्यर्थः॥

(शिशु०) विरोधीति। तच्च तपोवनं पावनं पवित्रं बभूव। सर्वाण्यपि विशेषणानि। विरोधिसत्वैर्गोव्याघ्रादिभिरुज्झितं त्यक्तं वैरं यत्र तत् द्रुमैः कृत्वेष्टैरभीष्टैः प्रसवैः फलैः पुष्पैरर्चिता अतिशयो यत्र तत्। नवानामुटजानां पर्णगृहाणां मध्ये सम्भृतः सञ्चितोऽनलोऽग्निर्यत्रात एव पावनम्॥17॥

अन्वयः → विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथि नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तच्च तपोवनं पावनं बभूव।

अनुवाद → परस्पर स्वाभाविक वैर रखने वाले प्राणियों ने अपनी जन्मजात शत्रुता छोड़ दी थी, वृक्ष मनोवाञ्छित फल देकर अतिथियों का सत्कार किया करते थे। और नई पर्णकुटियों के भीतर सदा प्रज्ज्वलित अग्नि वाला पार्वती का वह तपोवन पवित्र हो गया था।

शब्दार्थ → **विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरं** = (सहजवैरिजन्तुत्यक्तपूर्ववैरं, हिंसारहितम्, शत्रुजीवपरित्यक्तप्रथमवैरम्) स्वाभाविक वैरी जन्तुओं के द्वारा त्यागे गए ईर्ष्या- द्वेष वाला, **द्रुमैः** = (वृक्षैः) वृक्षों के द्वारा, **अभीष्टप्रसवार्चितातिथिः** = (अभीप्सितफलपूजिताभ्यागतं, इष्टफलसम्मानितागन्तुकम्) अतिथियों का सत्कार इच्छित फल- फूलादि से प्रदान करके किया, **नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं** = (अभिनवपर्णशालान्तःप्रदीप्ताग्निः नूतनपर्णशालाऽन्तः सञ्चिताग्निः, नूतनपर्णाशालान्तः

सञ्चितपावकम्) नवीन पर्णशालाओं के अन्दर निरन्तर प्रज्वलित यज्ञ की अग्नि वाला, **तत् च** = (पार्वत्याः) वह, **तपोवनं** = (तपःकानन-म्) तपोवन, **पावनं** = (पवित्रं, शुद्धिकरम्) पवित्र, **बभूव** = (अभवत्, आसीत्) हो गया था।

भावार्थ → पार्वती की तपस्या के प्रभाव से वह तपोवन अत्यन्त शान्त और पवित्र हो गया था। सभी पशु- पक्षियों ने पारस्परिक शत्रुता का परि-त्याग कर दिया था। तपोवन में आने वाले अतिथियों का सत्कार करने के लिए वृक्ष स्वयं ही फल प्रदान (गिराते) करते थे। पर्णकुटियों में निरन्तर प्रज्ज्वलित यज्ञाग्नि के कारण वह तपोवन अत्यन्त पवित्र हो गया था।

भावार्थः → पार्वत्याः तपः प्रभावेन तत् तपोवनं शान्तं पवित्रं हिंसार-हितं च जातम्। तत्र गजव्याघ्रादिर्जन्तवः स्वकीयं जन्मजातस्वाभाविकवैरं विहाय सहवासिनो भूत्वा मित्रवत् सुखेन निवसन्ति स्म। तत्रत्याः वृक्षाः अपि इच्छानुसारं फलानि प्रदाय आगन्तुकानाम् अतिथिनां सत्कारं कुर्व-न्ति। नवीनपर्णशालासु संरक्षितयज्ञाग्निः प्रज्ज्वलन्ति स्म। अतएव पार्वत्याः आश्रामः पवित्रकारकः जातः।

व्याकरणम् → **विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं** - ($\sqrt{}$उज्झ्+क्त) विरोधः अस्ति येषां ते विरोधिनः 'इनि' प्रत्यय विरोधिनश्च ते सत्त्वाश्च - विरोधिसत्त्वाः कर्मधा॰ समास, उज्झितः पूर्वः मत्सरः यस्मिन् तत् बहु॰ समास, - विरोधिसत्त्वैः उज्झितपूर्वमत्सरं विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं तृ॰ तत्पु॰, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **द्रुमैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **अभीष्टप्रसवार्चि-तातिथि** - (अभि+$\sqrt{}$इष्+क्त; अर्चितः = $\sqrt{}$अर्च+क्त) अभीष्टश्चासौ प्रसवः अभीष्टप्रसवः, कर्मधा॰ समास, अर्चिताः अतिथयः यस्मिन् तत् अर्चितातिथि, बहु॰ समास,अभीष्टप्रसवेन अर्चितातिथि अभीष्टप्रसवा-र्चितातिथि तृ॰ तत्पु॰, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं** - (सम्भृत = सम् $\sqrt{}$भृ+क्त) नवाश्च ते उटजाश्च नवोटजाः, कर्मधा॰ समास, नवोटजानाम् अनलाः यस्मिन् तत्, बहु॰ समास, - नवोटजाभ्य-न्तरेषु सम्भृतानलं - सप्त॰ तत्पु॰ समास, तत् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपोवनं** - तपसः वनम् इति तपोवनम् (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰, **बभूव** - $\sqrt{}$भू सत्तायाम्, लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **सत्त्वं** - द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु। **मत्सरः** - मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे तद्वत्कृपणयोस्त्रिषु। **अभीष्ट** - अभीष्टेऽभीप्सितं हृद्यं दयितं वल्लभं प्रियम्। **द्रुमः** - पलाशी द्रुद्रुमागमाः। **प्रसवः** - स्यादुत्पादे

फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचने। **अतिथि** - स्युरावेशिक आगन्तुरतिथिर्ना गृहागते। प्राघुर्णिकः प्राघुणकः। **नव -** नवीनो नूतनो नवः। **उटज** - पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्। **अभ्यन्तरं** - अभ्यन्तरं त्वन्तरालम्। **अनलं** - आश्रयाशी बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः।

18

प्रसङ्ग → कठोर तप और पवित्र आचरण से पार्वती ऋषि- मुनियों में समादृत तो हो गयी किन्तु पति के रूप में शिव को पाने की इच्छा पूर्ण न होने के कारण उसने और अधिक कठोर तप करने का निश्चय किया -

यदा फलं पूर्वतपः समाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे॥

(सञ्जी०) यदेति। **सा** देवी **यदा** यस्मिन्काले **तावता** तावत्प्रमाणेन [**पूर्वतपःसमाधिनः**]पूर्वतपः समाधिना पूर्वेणानुष्ठीयमानप्रकारेण तपोनियमेन **काङ्क्षितं फलं लभ्यं** लब्धं शक्यं **नामंस्त**। अशक्यममंस्तेत्यर्थः। **तदा** तत्काले। अविलम्बेनेत्यर्थः। **स्वशरीरस्य मार्दवं** मृदुत्वं सौकुमार्यम् **अनपेक्ष्य** अविगणय्य **महत्** दुष्करं **तपश्चरितुं** साधयितुं **प्रचक्रमे** उपचक्रमे॥

(शिशु०) यदेति। सा गौरी यदा तावता तावन्मात्रेण पूर्वतपःसमाधिना कांक्षितं वाञ्छितं लभ्यं प्राप्यं नामंस्त नाज्ञासीत्। तस्य शरीरमार्दवं निजदेहसौकुमार्यमनपेक्ष्य महद्दुष्करं तपश्चरितुं कर्तुं प्रचक्रमे प्रारेभे। अमंस्तेति 'हनः सिच्' इति कित्करणेन ज्ञापकादनुनासिकलोपाभावः॥

अन्वयः → सा यदा तावता पूर्वतपः समाधिना काङ्क्षितं फलं लभ्यं न अमंस्त, तदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तपः चरितुं प्रचक्रमे।

अनुवाद → जब उस पार्वती ने अब तक की गई पुर्व की तपस्याओं के द्वारा अपने इच्छित प्रयोजन (शिव) को प्राप्त करने योग्य नहीं माना तब अपने शरीर की कोमलता की परवाह किए बिना (और भी अधिक) कठोर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया।

शब्दार्थ → **सा** = (गौरी) उस पार्वती ने, **यदा** = (यस्मिन् समये) जब, **तावता** = (तावत्प्रमाणेन) उतनी, **पूर्वतपः समाधिना** = (प्राक्तनतपोऽनुष्ठानेन, प्राङ्निर्दिष्टतपोव्रतनियमेन) पहले से प्रारम्भ किये गये तपस्या नियमों से, **काङ्क्षितम्** = (वाञ्छितं अभिलषितं, इष्टम्) अभिलषित, वाञ्छित, अभीष्ट, **फलम्** = (शिववशीकरणरूपं प्रयोजनम्, परिणामम्) फल को, **लभ्यम्** = (लब्धुं, प्राप्तुं शक्यं, प्राप्यम्) प्राप्त करने योग्य, **न**

अमंस्त = (न अमन्यत अशक्यममंस्त, न मन्यते स्म) नहीं माना, **तदा** = (तत्काले तस्मिन् समये, तस्मिन् काले) तब, **स्वशरीरमार्दवं** = (स्व-देहसौकुमार्यम् निजदेहमृदुलतां, निजवपुः कोमलताम्) अपने शरीर की सुकुमारता की, **अनपेक्ष्य** = (अविगणय्य, उपेक्ष्य) परवाह न करते हुए, ध्यान में न रखते हुए, **महत्** = (दुस्तरं, कठोरं, कठोरतमम्) दुष्कर, **तपः** = (व्रतम्)तपस्या का, **चरितुम्** = (साधयितुं विधातुं, कर्तुम्) आचरण करने के लिए, **प्रचक्रमे** = (आरेभे, समारभत, प्रक्रान्तवती) उपक्रम किया/प्रारम्भ किया।

भावार्थ → बहुत समय बीतने के बाद जब पार्वती ने अनुभव किया कि इस तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न नहीं हो रहे हैं तो उसने अपने शरीर की कोमलता की परवाह किए बिना और अधिक उग्र तप करने का निश्चय किया। भाव यह है कि उग्र तप कठोर शरीर वाले ऋषियों के द्वारा ही सम्भव है किन्तु पार्वती ने अपने दृढ़ संकल्प से कठोर तप करना शुरू कर दिया। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है।

भावार्थः → यदा सा पार्वती तादृशेन सामान्य तपसा अभिलषितं शिव-सन्तुष्टीकरणरूपं फलं प्राप्तुम् अशक्यममन्यत तदा शिरीषपुष्पादप्यधिकं स्वरीरसौकुमार्यमविगणय्य महद् दुष्करं तपो विधातुमारब्धवती।

व्याकरणम् → **तावता** - तत् प्रमाणमस्य इति तावत् तेन तावता - तद् से डावतु प्रत्यय, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **पूर्वतपः समाधिना** - (सम्+आ-+√धा+कि) तपसः समाधिः तपःसमाधिः, ष॰ तत्पुरुष समास,पूर्वश्चासौ तपः समाधिश्च कर्मधा॰ समास, पूर्वतपः समाधिः तेन, पूर्वतपः समाधिना - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **काङ्क्षितं** - (√काङ्क्ष्+क्त) काङ्क्षा सजाता अस्य तत् काङ्क्षितं - 'तारकादिभ्यः' से इतच् प्रत्यय, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **फलं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **लभ्यं** - √लभ् धातु+यत् प्रत्यय 'पोरदुपधात्' सूत्र से कर्म में प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अमंस्त** - √मन् धातु, लुङ् लकार, आत्मने॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰। **स्वशरीरमार्दवं** - स्वस्य शरीरम् इति स्वशरीरं (ष॰ तत्पु॰ समास), मृदोर्भावः मार्दवं, मृदु में 'शान्ताच्चलघुपूर्वात्' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय स्वशरीरस्य मार्दवं स्वशरीरमार्दवं (ष॰ तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अनपेक्ष्य** - (न+अप+√ईक्ष्+ल्यप्) न अपेक्ष्य इति अनपेक्ष्य (नञ् तत्पु॰ समास), नञ्+अप+√ईक्ष् धातु क्त्वा प्रत्यय और उसके स्थान पर ल्यप् होकर यह कृत्प्रत्ययान्त अव्ययपद बना। **महत्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰, **तपः** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **चरितुं** - (चर्+तुमुन्)

चर्+तुमुन् प्रत्यय - कृदन्त अव्ययपद। **प्रचक्रमे** - (प्र+√क्रम्) प्र उपसर्ग पूर्वक √क्रमु पादविक्षेपे धातु का लिट् लकार, आत्मने०, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **फलम्** - सस्ये हेतुकृते फलम्। **तपः** - तपः कृच्छ्रादि कर्म च। **तावत्** - यावत् तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे। **महत्** - विशालं पृथुलं महत्। इत्यमरकोशः।

19

प्रसङ्ग → सुकोमल पार्वती ने न केवल कठोर तप का विचार ही किया अपितु तदनुरूप कठोर तप से सभी को आश्चर्यचकित भी कर दिया -

क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।
ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या स ससारमेव च॥

(सञ्जी०) क्लममिति। **या** देवी **कन्दुकलीलया** कन्दुकक्रीडय **अपि क्लमं ययौ** ग्लानिं प्राप। **तया** देव्या **मुनीनां चरितं** तीव्रं तपो **व्यगाह्यत** प्रविष्टम्। अत्रोत्प्रेक्षते - **ध्रुवम्** अस्याः **वपुः [काञ्चनपद्मनिर्मितं]**काञ्चनपद्मेन सुवर्णकमलेन निर्मितं घटितम्। अतएव **प्रकृत्या** पद्मस्वभावेन **मृदु च** सुकुमारमपि काञ्चनस्वभावेन **ससारं स** कठिनमेव। तथा च तदुपादानकत्वाद्देव्या वपुषः सुकुमारस्यापि तीव्रतपःक्षमत्वमित्युत् प्रेक्षार्थः॥

(शिशु०) क्लममिति। या गौरी कन्दुकलीलयापि कन्दुकोल्लासनेनापि क्लमं परिश्रमं ययौ प्राप। तया मुनीनामपि चरितं व्यगाह्यताचरितं। तत्रोत्प्रेक्षते
ध्रुवमस्याः वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं सुवर्णकमलैः सृष्टं। यतः प्रकृत्या स्वभावेन मृदु कोमलं सुसारमेव च दृढम्॥

अन्वयः → या कन्दुकलीलया अपि क्लमं ययौ, तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत ध्रुवम् अस्याः वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितम्, अतएव प्रकृत्या मृदु च ससारम् एव च।

अनुवाद → जो पार्वती कन्दुक क्रीडा से भी थक जाती थी उसके द्वारा मुनियों की कठोर तपस्या रूपी आचरण को अपना लिया गया। निश्चय ही उस पार्वती का शरीर स्वर्ण कमल से निर्मित था अतएव उसका शरीर कमल सदृश कोमल तथा स्वर्ण सदृश कठोर था।

शब्दार्थ → **या** = (पार्वती) जो पार्वती, **कन्दुकलीलया** = (कन्दुकक्रीडया, कन्दुकाख्यक्रीडनकक्रीडया) गेंद खेलने से, **अपि** = भी, **क्लमम्** = (ग्लानिं, श्रमं, खेदम्) थकान को, **ययौ** = (प्राप, जगाम) प्राप्त

करती थी, अनुभव करती थी, **तया** = (पार्वत्या) उसके द्वारा, **मुनीनाम्** = (ऋषीणां, महर्षीणाम्) श्रेष्ठ ऋषियों के, **चरितम्** = (तीव्रतपोरूप-चरित्रं, चरित्रम्) आचरण को, अत्यन्त उग्र तपश्चर्या को, **व्यगाह्यत** = (आचरितम्, प्रविष्टम्) ग्रहण कर लिया, प्रारम्भ कर दिया। **ध्रुवम्** = (नि-श्चयेन, निश्चितम्) निश्चय रूप से, **अस्याः** = (पार्वत्याः) उसका, **वपुः** = (शरीरम्) शरीर, **काञ्चनपद्मनिर्मितंम्**(आसीत्) = (स्वर्णपद्मरचितम्, स्वर्णकमलसृष्टं, सुवर्णस्वभावेन) स्वर्ण कमल से बना हुई था, **अत एव** = इसलिए, **प्रकृत्या** = (स्वभावेन) स्वभाव से ही, **मृदु** = (कोमल, सुकु-मारम्, कोमलम्) कोमल, **च** = (अपि)और, **सुवर्णस्वभावेन, ससारम्** = (कठोरम् एव च) कठोर, **एव** = भी (आसीत् = था)।

भावार्थ → जो सुकोमल शरीर वाली पार्वती गेन्द खेलने मात्र से ही थक जाती थी वही अब शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए ऋषियों के समान कठोर तप करने लगी। कवि उत्प्रेक्षा अलङ्कार के माध्यम से पार्वती के शरीर को स्वर्णकमल निर्मित बता रहा है। कहने का आशय है कि पार्वती का शरीर यद्यपि देखने में कमल के समान कोमल था तथापि वह अन्दर से स्वर्ण के समान कठोर था। इसीलिए वह कठोर तप करने में समर्थ थी।

भावार्थः → या पार्वती कन्दुकक्रीडयापि खिन्ना भवति स्म सा कठो-रकायवद्भिः महर्षिभिरपि दुःसाध्यं तपः आरब्धवती। एतेन ज्ञायते यत् तस्याः शरीरं काञ्चनकमलैः निर्मितमासीत्। अतएव पद्मप्रकृत्या सुकुमार-मपि तस्याः शरीरं काञ्चनस्वभावेन कठिनं जातमिति भावः।

व्याकरणम् → **कन्दुकलीलया** - कन्दुकस्य लीला इति कन्दुकलीला (ष॰वि॰, तत्पुरुष) तया, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **क्लमं** - √क्लमु ग्लानौ+घञ् प्रत्यय, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **ययौ** - √या प्रापणे धातु, लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **तया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **मुनीनां** - ष॰वि॰, बहु॰व॰। **चरितं** - √चर्+क्त प्रत्यय, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **व्यगाह्यत** - वि उपसर्गपूर्वक √गाह् विलोडने धातु, कर्मवाच्य॰ में लङ् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **ध्रुवम्** - √ध्रु स्थैर्ये बाहुलकात् अर्थ में 'क' प्रत्यय होकर ध्रुव बना, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अस्याः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **वपुः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **काञ्चनपद्मनिर्मितं** - काञ्चनं च तत् पद्मं च काञ्चनपद्म, कर्मधा॰ समास, काञ्चनपद्मेन निर्मितं - तृ॰ तत्पु॰ समास, काञ्चनपद्मनिर्मितं प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्रकृत्या** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **मृदु** - प्र॰वि॰, एक॰व॰।

ससारं - सह इति ससारम्/सारेण सहितं ससारं (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰।

***कोशः →* कन्दुकः** - गेन्दुकः कन्दुकः। **क्लमम्** - क्लमथुः क्लमे। **मुनिः** - तपस्वी तापसः पारिकाङ्क्षी वाचंयमी मुनिः। **ध्रुवम्** - ध्रुवो भभेदे क्लीबन्तु निश्चिते शाश्वते त्रिषु। **काञ्चनम्** - चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने। **पद्म** - वा पुंसि पद्मं नलिनम्। **मृदु -** कोमलं मृदुलं मृदु। **प्रकृति** - संसिद्धिः प्रकृतिः त्विमे। स्वरूपञ्च स्वभावश्च निसर्गश्च। **सारम्** - सारो बले स्थिरांशे च। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में कवि ने पार्वती के शरीर को स्वर्णपद्म कहा है जो पद्म की कोमलता के साथ - साथ स्वर्ण की कठोरता से भी युक्त है। अतएव कोमलाङ्गी पार्वती दुष्कर तप आचरण में समर्थ हुई। यहाँ पार्वती के शरीर में स्वर्णपद्म की सम्भावना व्यक्त करने के लिए 'ध्रुवम्' पद का प्रयोग हुआ है। अतएव यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

20

प्रसङ्ग → अब विभिन्न ऋतुओं में किए जाने वाले पार्वती के कठोर तप के प्रकारों के अन्तर्गत ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया जा रहा है -

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षतः॥

(सञ्जी॰) शुचाविति। **शुचौ** ग्रीष्मे **शुचिस्मिता** विशदमन्दहासा **सुमध्यमा** पार्वती **ज्वलतां** दीप्तिमतां **चतुर्णां हविर्भुजाम** अग्नीनां मध्यगता सती। नेत्रे प्रतिहन्तीति तां **नेत्रप्रतिघातिनीं** प्रभां सावित्रं तेजो **विजित्य।** न विद्यतेऽन्यत्र दृष्टिर्यस्याः सा **अनन्यदृष्टिः** सती **सवितारं** सूर्यम् **ऐक्षत** ददर्श। (ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः) इति स्मरणात् पञ्चाग्निमध्ये तपश्चचारेत्यर्थः। तत्र सवितैव पञ्चमोऽग्निः - [अग्निः सविता सवितैवाग्निः] इति श्रौतलिङ्गात्॥

(शिशु॰) शुचाविति। सा गौरी नेत्रप्रतिघातिनीं दृशोः प्रतिहतिकारिणीं प्रभां दीप्तिं विजित्यानन्यदृष्टिस्तद्वत्नेत्रा सती सवितारं सूर्यमैक्षताद्राक्षीत्। पञ्चतपोव्रतं चकारेत्यर्थः। कीदृशी सा? शुचावप्याषाढे मासि ज्वलतां चतुर्णां हविर्भुजामग्नीनां मध्यगता मध्यस्थिता। पुनः कीदृशी? शुचिस्मिता निर्मलेषद्धासा। तथा सुमध्यमा शोभनं मध्यमं यस्याः सा॥

अन्वयः → शुचौ शुचिस्मिता सुमध्यमा ज्वलतां चतुर्णां हविर्भुजां

मध्यगता (सती) नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभां विजित्य अनन्यदृष्टिः (सती) सवितारम् ऐक्षतः।

अनुवाद → ग्रीष्म ऋतु में पवित्र हास्य वाली तथा सुन्दर कटिप्रदेश वाली पार्वती प्रज्ज्वलित चार अग्नियों के बीच स्थित होकर नेत्रों को अपने तेज से नष्ट कर देने वाले सूर्य के तेज को भी पराजित करके निर्निमेष दृष्टि से सूर्य को देखती थी।

शब्दार्थ → **शुचौ** = (ग्रीष्मर्तौ, ग्रीष्मसमये) ग्रीष्म ऋतु में, **शुचिस्मिता** = (पवित्रमन्दहासा, शुभ्रमन्दहासा) पवित्र हँसी वाली, मन्द मन्द मुस्कुराने वाली, **सुमध्यमा** = (शोभनकटिभागा, शोभमन्दहासा) सुन्दर कटि भाग वाली, पतली कमर वाली (पार्वती) **ज्वलताम्** = (दीप्तिमतां, प्रदीप्तानाम्) जलती हुई, **चतुर्णाम्** = (चतुः संख्याकानाम्, चतुस्सङ्ख्याकानाम्) चार, **हविर्भुजाम्** = (अग्नीनाम्, वह्नीनाम्) अग्नियों के, **मध्यगता** = (मध्यस्थिती) बीच में स्थित होकर, **नेत्रप्रतिघातिनीम्** = (नेत्रज्योतिनाशीनीं दृष्टिप्रसारावरोधिनीम्, दृष्टिव्यापारप्रतिरोधिनीम्) आँखों को पीड़ा पहुँचाने वाली, आँखों को चुंधिया देने वाली, **प्रभाम्** = (सूर्यस्यं तेजं, सूर्यकान्तिं, दीप्तिम्) कान्ति को, **विजित्य** = (पराजित्य, तिरस्कृत्य, अभिभूय) जीतकर, **अनन्यदृष्टिः** = (एकाग्रदृष्टिः भूत्वा, एकाग्रचिता) एकाग्रदृष्टि से, एकटक नजर से, **सवितारम्** = (दिनकरम् सूर्यं, भानुं, रविम्) सूर्य को, **ऐक्षत** = (अवलोकयामास) देखा करती थी।

भावार्थ → ऋतु के अनुसार शरीर को कष्ट देकर तप करने का विधान प्रसिद्ध है। इसी परम्परागत विधान का पालन करती हुई पार्वती ने चारों दिशाओं में प्रज्ज्वलित अग्नियों के बीच में स्थित होकर आकाश में प्रचण्ड सूर्य को देखती हुई पञ्चाग्नि तप करने लगी। यद्यपि सूर्य को अपलक देखने से नेत्रज्योति समाप्त हो सकती है किन्तु पार्वती ने उस असह्य सूर्य के तेज को भी सह लिया।

भावार्थः → विशदमन्दहासा सा पार्वती ग्रीष्मर्तौ पुरतः पृष्ठे पार्श्वयोश्च स्थापितानां ज्वलतां चतुर्णाम् अग्नीनां मध्ये स्थिता सती नेत्रप्रतिघातकारिणीं सवितुः प्रभां विजित्य किमपि न अवलोकयन्ती सती केवलं सूर्यमेव पश्यन्ती तपश्चकार। इत्यम्भूता सा पार्वती कृच्छ्रपञ्चागग्निसेवनमपि कर्तुमारब्धवती।

व्याकरणम् → **शुचौ** - शुचि शब्द का समास, एक॰व॰। **शुचिस्मिता** - शुचि स्मितं यस्याः सा शुचिस्मिता (बहु॰ समास) प्र॰वि॰,

एक०व०। **सुमध्यमा** - शोभनः मध्यमभागः/शोभनं मध्यमं यस्याः सा (बहु० समास), प्र०वि०, एक०व०। **ज्वलतां** - (√ज्वल्+शतृ, ष०वि०, बहु०व० ज्वलताम्) √ज्वल दीप्तौ धातु से शतृ प्रत्ययान्त ज्वलत् शब्द बना, ष०वि०, बहु०व०। **चतुर्णाम्** - ष०वि०, बहु०व०। **हविर्भुजां** - हवींषि भुञ्जते इति हविर्भुजः, तेषां हविर्भुजाम्, ष०वि०, बहु०व०। **मध्यगता** - मध्ये गता मध्यगता, सप्त० तत्पु० समास, प्र०वि०, एक०व०। **नेत्रप्रतिघातिनीं** - (प्रति+√हन्+णिनि+ङीप् द्वि०वि०, एक०व०) नेत्रे प्रतिहन्ति तच्छीला नेत्रप्रतिघातिनी, ताम् नेत्रप्रतिघातिनीम् - द्वि०वि०, एक०व०। **प्रभां** - द्वि०वि०, एक०व०। **विजित्य** - (वि+√जि+ल्यप्) वि उपसर्ग जि धातु क्त्वा के स्थान पर ल्यप्, तुकागम अव्ययपद। **अनन्यदृष्टिः** - न विद्यते अन्यत्र दृष्टिः यस्याः सा अनन्यदृष्टि; (बहु० समास) ; प्र०वि०, एक०व०। **सवितारम्** - सवितृ शब्द का द्वि०वि०, एक०व०। **ऐक्षत** - √ईक्ष् दर्शने धातु, लङ् लकार, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **शुचिः** - ज्येष्ठे शुक्रः शुचिस्त्वयम्। शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्येत पाण्डुराः। **स्मित** - स्यादाच्छुरितकं हासः सोत्प्रासः मनाक् स्मितम्। **मध्य** - मध्योऽस्त्री द्वौ परौ द्वयोः। मध्यमं चावलग्नं च। **प्रभा** - स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः। **दृष्टिः** - दृग्दृष्टी चाश्रुनेत्राम्बु। **सविता** - भानुर्हंससहस्रांशुस्तपनः सविता रविः। इत्यमरकोशः।

टिप्पणी → प्रस्तुत श्लोक में पार्वती की तपश्चर्या के अन्तर्गत अत्यन्त कठोर पञ्चाग्नितप का वर्णन किया गया है। इसमें साधक चारों ओर अग्नि प्रज्ज्वलित कर बीच में बैठकर सूर्य की ओर निरन्तर देखता है। वेद में सूर्य को भी अग्नि कहा गया है - ''अग्निः सविता सवितैवाग्निः।'' अतः चार अग्नियों के अतिरिक्त पञ्चम अग्नि सूर्य ही है।

21

प्रसङ्ग → प्रस्तुत पद्य में पार्वती की तपस्या के अन्तर्गत कठोर पञ्चाग्नि तप का वर्णन है। चारों ओर प्रज्ज्वलित अग्नि के बीच बैठकर पार्वती सूर्य को देख रही है जिससे पार्वती के शरीर में हुए परिवर्तन का वर्णन किया जा रहा है -

तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।
अपाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः शनैः शनैः श्यामिकया कृतं पदम्॥

(सञ्जी०) तथेति। **सवितुः** सूर्यस्य **गभस्तिभिः** किरणैस्तथा पूर्वोक्तप्रकारेण **अतितप्तं** संतप्तं **इदं तदीयं मुखं कमलश्रियं** कमलस्य शोभां

दधौ प्राप। यथा रवितापात्कमलं न म्लायति प्रत्युत विकसति तथा तदीयं मुखमासीदिति भावः किंत्वस्य मुखस्य **दीर्घयोः अपाङ्गयोः केवलं** नेत्रान्तयोरेव **शनैःशनैः** मन्दमन्दं **श्यामिकया** कालिम्ना **पदं** स्थानं **कृतम्**। तयोः सौकुमार्यादित्यर्थः॥

(शिशु०) तथेति। तथा तेन प्रकारेण सवितुः सूर्यस्य गभस्तिभिः किरणैस्तप्तमपि तदीयं मुखं गौरीवक्त्रं कमलश्रियं पद्मशोभां प्राप। यथा रवितापात्पद्मं विकसति। तथा तदपीत्यर्थः। अस्य दीर्घयोरपाङ्गयोदृगन्तयोः शनैः शनैः श्यामिकया कालिम्ना पदं स्थानं कृतम्॥

अन्वयः → सवितुः गभस्तिभिः तथा अतितप्तं तदीयं मुखं कमलश्रियं दधौ अस्य दीर्घयोः अपाङ्गयोः केवलं शनैः शनैः श्यामिकया पदं कृतम्।

अनुवाद → सूर्य की किरणों से इस प्रकार अत्यन्त तप्त कर दिए जाने पर उसके मुख ने कमल के सदृश शोभा को धारण कर लिया। (इतना कठोर तप करने के बाद भी) केवल उनकी आँखों के दीर्घ प्रान्तों (किनारों) में धीरे- धीरे कालिमा ने स्थान ग्रहण कर लिया।

शब्दार्थ :- **सवितुः** = (सूर्यस्य), **गभस्तिभिः** = (अंशुभिः), **तथा** = (तेन प्रकारेण), **अभितप्तम्** = (सन्तप्तम्), **तदीयम्** = (पार्वतीसम्बन्धि), **मुखम्** = (आननम्), **कमलश्रियम्** = (पद्मलक्ष्मीम्), **दधौ** = (लेभे), **अस्य** = (मुखस्य), **दीर्घयोः** = (आयतयोः), **अपाङ्गयोः** = (नेत्रान्तभागयोः), **केवलम्** = (एव), **शनैः शनै** = (मन्दं मन्दम्), **श्यामिकया** = (कालिम्ना), **पदम्** = (अवस्थानम्), **कृतम्** = (अकारि)

भावार्थ → यद्यपि सूर्य या अग्नि के प्रभाव से थोड़ी ही देर में मुख पर लालिमा छा जाती है तथा अधिक देर होने पर मुख पर मलिनता छाने (मुरझाने) लगती है। किन्तु पार्वती का मुख कमल की तरह सूर्य की किरणों के प्रभाव से और अधिक खिल (लाल हो) गया। हाँ, पार्वती के नेत्रों के प्रान्तभाग (किनारा) अवश्य कुछ काले हो गये जो पार्वती के कठोर तप एवं अग्नि के प्रभाव को द्योतित कर रहे हैं। नेत्रों के प्रान्तभाग की कालिमा में भी कवि ने सौन्दर्य ही देखा।

भावार्थः → सूर्यकिरणैः अत्यन्तं सन्तप्तं पार्वत्या मुखं कमलस्य शोभां प्राप्तम्। न तु म्लानं जातम् परन्तु स्वाभाविकसौकुमार्यात् पार्वत्याः नेत्रप्रान्तयोः केवलं कालिमा बभूव।

व्याकरणम् → **सवितुः** - सविता शब्द का ष० वि०, ए०व०। **गभस्तिभिः** - गभस्ति शब्द का तृ० वि०, बहु०व०। **तथा** - अव्ययपद। **अति-**

तप्तं - (अति + √तप + क्तः) अत्यन्तं तप्तं इति अतितप्तम् (सुप्सुपा समास); प्र॰ वि॰, ए॰ व॰। **तदीयं** - प्र॰ वि॰, ए॰व॰ तद् + छ (ईय)। **मुखं** - प्र॰ वि॰, ए॰व॰। **कमलश्रियं** - कमलस्य श्रीः कमलश्रीः (षष्ठी तत्पुरुष)ताम् द्वि॰ वि॰, ए॰व॰। **दधौ** - √धा धातु लिट् लकार, परस्मैपद 'आत औणलः' सूत्र से णल् प्रत्यय के स्थान पर औ आदेश, द्वित्वादि कार्य होकर प्र॰ पु॰, ए॰व॰ में। **अस्य** - ष॰ वि॰, ए॰व॰। **दीर्घयोः** - सप्त॰ वि॰, द्वि॰व॰। **अपाङ्गयोः** - सप्त॰ वि॰, द्वि॰व॰। **केवलं** - प्र॰ वि॰, ए॰व॰। **शनैः शनैः** - अव्ययपद, **श्यामिकया** - (श्याम+ कन् + यप्) तृ॰ वि॰, ए॰व॰। **पदं** - द्वि॰ वि॰, ए॰व॰। **कृतम्** - √कृ + क्त प्रत्यय, प्र॰ वि॰, ए॰व॰।

कोशः → **गभस्ति** - गभस्तिघृणिपृश्नयः। **कमलं** - सहस्रपत्रं कमलम्। **अपाङ्ग** - अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ। **केवलं** - निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गं त्वेककृत्स्नयोः। **दीर्घं** - सुदूरं दीर्घमायतम्। **पदम्** - पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु। इत्यमरकोशः।

22

प्रसङ्ग → कवि इस पद्य में वर्णन कर रहा है कि पार्वति निराहार रहते हुए किस प्रकार से अपना जीवन निर्वाह कर रही है -

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः॥

(सञ्जी॰) अयाचितेति। **अयाचितोपस्थितम्** अप्रार्थितोपनतं **केवलम्** **अम्बु** उदकं **रसात्मकस्य** अमृतमयस्य **[उडुपतेः]** उडूनां नक्षत्राणां पतिश्चन्द्रस्तस्य **रश्मयः** च **तस्याः** पार्वत्याः **पारणाविधिः** अभ्यवहारकर्म **बभूव**। तावन्मात्रसाधनकोऽभूदित्यर्थः। साध्यसाधनयोर भेदेन व्यपदेशः साधनान्तरव्यावृत्त्यर्थः। **किल** इति प्रसिद्धौ। **[वृक्षवृत्तिव्यत्तिरिक्तसाधनः]** वृक्षाणां या वृत्तिर्जीवनोपायस्तद्व्यतिरिक्तं साधनमुपायो यस्य स तथोक्तः पारणाविधिः **न बभूव**। वृक्षोऽप्ययाचितोपस्थितेन मेघोदकेनेन्दुकिरणैश्च जीवतीति प्रसिद्धम् अम्बिकापि तावन्मात्रमेवालम्बतेत्यर्थः॥

(शिशु॰) अयाचितेति। तस्या देव्याः। किलेत्यागमे पारणाविधिः शरीरयात्रा वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनो वृक्षवृत्तेर्व्यतिरिक्तमधिकं साधनमुपकरणं यस्येति तादृशो न बभूव। कथमित्याह। ततोऽयाचितं प्राप्तमम्बु जलं पारणा। केवलं रसात्मकस्य पीयूषमस्योडुपतेश्चन्द्रमसो रश्मयश्च वृक्षाणां जीवनोपायोऽम्बुचन्द्ररश्मय इत्यतो वृक्षतुल्या तस्या वृत्तिरभूदित्यर्थः॥

अन्वयः → अयाचितोपस्थितं केवलम् अम्बु रसात्मकस्य उडुपतेः रश्मयश्च, तस्या पारणाविधिः बभूव किल। वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः (पारणाविधिः) न बभूव।

अनुवाद → बिना माँगे हुए प्राप्त (वर्षा का) केवल जल और अमृतमय चन्द्रमा की रश्मियाँ ही उसकी पारणा (व्रत समाप्ति के उपरान्त का भोजन) बनीं। वृक्षों के भोजन के साधन (जल और सूर्य चन्द्रमा की किरणों) से भिन्न साधन वाला भोजन पार्वती के लिए नहीं बना।

शब्दार्थ → **अयाचितोपस्थितम् =** (अप्रार्थितप्राप्तम्, अप्रार्थितोपनतम्, अप्रार्थिताधिगतम्) बिना माँगे ही प्राप्त हुआ, **केवलम् =** (तन्मात्रम्, न त्वन्यद्) केवल, **अम्बु** = (जलम्) पानी, **च =** और, **रसात्मकस्य** = (सुधामयस्य अमृतस्य, जलमयस्य) अमृतमय, **उडुपतेः** = (तारापतेः चन्द्रमसः) नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा की, **रश्मयः** = (किरणाः, अंशवः, मयूखाः) किरणें, **किल** = (निश्चयेन, इति प्रसिद्धम्) निश्चित रूप से, **तस्याः** = (पार्वत्याः) उस पार्वती का, **पारणाविधिः** = (व्रतान्तभोजनसाधनं, भक्षणकर्म) व्रत की समाप्ति के बाद का भोजन, **बभूव** = (अभवत्, आसीत्) हुआ, **वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः** = (द्रमु, तरुजीवनोपायातिरिक्तसाधनः) वृक्षों के भोजन से भिन्न साधन वाला, **पारणाविधिः =** (व्रतान्तभोजनम्), व्रत समाप्ति के बाद का भोजन, **न बभूव** = (नासीत्) न हुआ

भावार्थ → ग्रीष्म काल तक पार्वती वृक्षों के समान बिना माँगे जल और अमृत की वर्षा करने वाले चन्द्रकिरणों का ही सेवन करती रही। अर्थात् प्रतिदिन जल और चन्द्रकिरणें ही पार्वती के लिए व्रत का पारणा (व्रत की समाप्ति के उपरान्त भोजन) बनी। आशय है कि वृक्षों के भोजन के साधन से भिन्न पार्वती के पारण (व्रतान्त भोजन) का अन्य कोई दूसरा साधन नहीं था।

भावार्थः → अयाचितोपस्थितं केवलं मेघजलम् अमृतमयस्य चन्द्रमसः किरणाश्च पार्वत्याः भोजनं जातम्। तदतिरिक्तं कन्दमूलफलादिकं तस्या भोजनं न बभूवेति भावः। यथा वृक्षाः अप्रार्थितोपनतेन मेघोदकेन चन्द्रकिरणैश्च जीवन्ति तथैव पार्वत्यपि वृक्षवत् स्वकीयं जीवननिर्वाहं करोति स्मेति तात्पर्यम्।

व्याकरणम् → **अयाचितोपस्थितं** - (न+√याच्+क्त; उपस्थितः = उप+√स्था+क्त) न याचितम् अयाचितम्, अयाचितञ्च तत् उपस्थितञ्च

अयाचितोपस्थितम्, कर्मधा०। समास, प्र०वि०, एक०व०। **अम्बु** - प्र०वि०, एक०व०।**केवलं** - प्र०वि०, एक०व०।**रसात्मकस्य** - रसः आत्मा यस्य सः रसात्मकः (बहु० समास) ष०वि०, एक०व०। **उडुपतेः** - उडूनां पतिः इति उडुपतिः (ष० तत्पु० समास) तस्य उडुपतेः, ष०वि०, एक०व०। **रश्मयः** - रश्मि शब्द प्र०वि०, बहु०व०। **च** - अव्ययपद। **तस्याः** - ष०वि०, एक०व०। **पारणाविधिः** - पारणायाः विधिः (ष० तत्पु० समास), प्र०वि०, एक०व०। **बभूव** - √भू धातु लिट् लकार, परस्मै० प्र०पु०, एक०व०। **किल** - अव्ययपद। **वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः - (**√वृत्+क्तिन्) वृक्षाणां वृत्तिः वृक्षवृत्तिः, ष० तत्पु० समास, विशेषेण अतिरिक्तं व्यतिरिक्तं सुप्सुपासमास, वृक्षवृत्तेः व्यतिरिक्तं वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तं, तत् साधनं यस्य - बहु० समास, प्र०वि०, एक०व०। **न** - अव्ययपद।

कोशः → **अम्बु** - नीरक्षीराम्बु शम्बरम्। **उडु** - नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाप्युडु वास्त्रियाम्। **किल** - वार्ता सम्भाव्ययोः किल। **विधि** - विधिर्विधाने दैवेऽपि। **वृत्तिः** - आजीवो जीविका वार्ता वृत्तिर्वनजीवने। इत्यमरकोशः।।

23

प्रसङ्ग → इस पद्य में कवि वर्णन करता है कि पञ्चाग्नि तप और कठोर व्रतपालन से अत्यन्त गर्म पार्वती का शरीर वर्षा की प्रथम बूंदों के गिरने से किस प्रकार सुशोभित हो रहा है -

निकामतप्ता विविधेन वह्निना नभश्चरेणेन्धनसंभृतेन सा।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम्॥

(सञ्जी०) निकामेति। **विविधेन**। पञ्चविधेनेत्यर्थः। **नभश्चरेण** खेचरेण। आदित्यरूपेणेत्यर्थः। **इन्धनसंभृतेन** काष्ठसमिद्धेन **वह्निना निकामम्** अत्यन्तं **तप्ता सा** अम्बिका **तपात्यये** ग्रीष्मान्ते। प्रावृषीत्यर्थः। **नवैः वारिभिः अक्षिता** सिक्ता सती **भुवा** पञ्चाग्नितप्तया **सह ऊर्ध्वगम्** ऊर्ध्वप्रसृतम् **उष्माणं बाष्पम् अमुञ्चत्॥**। 'ग्रीष्मोष्मवाष्पमुष्माणम्' इति यादवः।।

(शिशु०) निकामेति। तपात्यये ग्रीष्मापगमे नवैर्वारिभिरुक्षिता सिक्ता सा गौरी भुवा सह ऊर्ध्वगमूष्माणममुञ्चत्तत्याज।भूमिरपि ग्रीष्मोत्तप्ता मेघजलैः सिक्ता बाष्पं मुञ्चति। कीदृशी। नभश्चरेण सौरेण इन्धनसम्भृतेन च काष्ठजनितेन द्विविधेन वह्निना निकामतप्ताः॥

अन्वयः → विविधेन नभश्चरेण इन्धनसंभृतेन वह्निना सा निकामतप्ता

तपात्यये नवैः वारिभिः उक्षिता (सती) भुवा सह ऊर्ध्वगम् ऊष्माणम् अमुञ्चत्।

अनुवाद → अनेक प्रकार की सूर्य एवं काष्ठादि इन्धन की अग्नि से अत्यन्त सन्तप्त होकर पार्वती ने ग्रीष्म ऋतु के उपरान्त प्रथम वृष्टि जल से भींग जाने पर पृथ्वी के साथ ही उपर उठने वाली वाष्प छोड़ी।

शब्दार्थ → **विविधेन** = (अनेकप्रकारेण पञ्चविधेनेत्यर्थः, नानाप्रकारेण) अनेक प्रकार की, **नभश्चरेण** = (खेचरेण आकाशचारिसूर्येण, गगनवर्तिना, सूर्यरूपेण) आकाश में विचरने वाले सूर्य से, **इन्धनसम्भृतेन** = (काष्ठसमिद्धेन, काष्ठप्रदीप्तेन) काष्ठादि से जलने वाली, **वह्निना** = (अग्निना) अग्नि के द्वारा, **सा** = वह (पार्वती), **निकामतप्ता** = (अतिसंतप्ता, अत्यन्तं तप्ता) अत्यन्त तपकर, **तपात्यये** = (ग्रीष्मान्ते, ग्रीष्मावसाने, वर्षारम्भे) ग्रीष्मऋतु की समाप्ति पर (वर्षा के समय में), **नवैः** = (नवीनैः, नूतनैः) नवीन, **वारिभिः** = (जलैः, मेघोदकैः, सलिलैः) वर्षा जलों से, **उक्षिता** = (सिक्ता) भीगी हुई, **भुवा** = (पृथिव्या) पृथिवी के, **सह** = (सार्धं) साथ, **ऊर्ध्वगम्** = (उर्ध्वगामि) ऊपर उठने वाली, **ऊष्माणं** =
(वाष्पम्) भाप को, **अमुञ्चत्** = (तत्याज्, अत्यजत्) छोड़ने लगी।

भावार्थ → ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि सेवन से पार्वती का शरीर अत्यन्त सन्तप्त हो गया था। जब वर्षा ऋतु में भूमि पर वर्षा की प्रथम बूँदें पड़ी तब भूमि गर्म भाप छोड़ने लगी। उसी तरह पार्वती का सन्तप्त शरीर भी वर्षाजल की प्रथम बूँदों से भीगकर भाप छोड़ने लगा।

भावार्थः → आकाशस्थितेन सूर्याग्निना काष्ठप्रज्वलितेन भूतलाग्निना च इत्थं पञ्चाग्निना भृशं सन्तप्ता भूयः ग्रीष्मावसाने वर्षर्तौ वर्षासम्भृतैः नवजलैः सिक्ता सति सा पार्वती ग्रीष्मे सन्तप्ता वर्षाणाम् वर्षर्तौ जलसिक्ता उदकसिक्ता महीव ऊर्ध्वगं बाष्पममुञ्चत्।

व्याकरणम् → **विविधेन** - , विविधाः विधाः यस्य सः विविधः (बहु॰ समास) तेन, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **नभश्चरेण** - (नभस्+√चर्+ट = नभश्चरः तेन) नभसि चरतीति नभश्चरः (सप्त॰ तत्पु॰ समास/उपपद तत्पु॰ समास) तेन, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **इन्धनसम्भृतेन** - (सम्+√भृ+क्त = सम्भृतः तेन) इन्धनैः सम्भृतः तृ॰ तत्पु॰, **तेन** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **वह्निना** - वह्नि शब्द का तृ॰वि॰, एक॰व॰। **निकामतप्ता** - निकामं तप्ता निकामतप्ता, सुप्सुपा समास। प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰।

तपात्यये - तपस्य अत्ययः तपात्ययः (ष॰ तत्पु॰ समास), तस्मिन् - सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **नवैः** - नव शब्द का तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **वारिभिः** - वारि शब्द का तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **उक्षिता** - (√उक्ष्+क्त+टाप्) √उक्ष् धातु क्त प्रत्यय इटागम स्त्रीत्व में टाप्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **भुवा** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **सह** - अव्ययपद। **ऊर्ध्वगम्** - ऊर्ध्वं गच्छतीति ऊर्ध्वगः तम्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **ऊष्माणम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अमुञ्चत्** - (मुञ्च्, लङ् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰) √मुञ्च् धातु लङ् लकार, परस्मै॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **निकाम** - कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्। **विधा** - विधा विधौ प्रकारे च। **वह्नि** - अग्निर्वैश्वानरो वह्निः। **नभः** - नभोन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम्। **इन्धन** - काष्ठं दार्विन्धनं त्वेधः। **ऊष्मा** - उष्ण ऊष्मागमस्तपः। **वारि** - वारि सलिलं कमलं जलम्। **नव** - नवीनो नूतनो नवः। **सह** - साकं सत्रा समं सह। **भू** - भूर्भूमिरचलानन्ता। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में तप से सन्तप्त पार्वती और गर्मी से सन्तप्त भूमि पर वर्षा की बूदों के पड़ने पर एक साथ वाष्प (भाप) छोड़ने का वर्णन प्राप्त होने के कारण सहोक्ति अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

24

प्रसङ्ग → वर्षा ऋतु की बूदों का पार्वती के शरीर पर गिरने का अत्यन्त सुन्दर वर्णन कवि इस श्लोक में कर रहे है -

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः॥

(सञ्जी॰) स्थिता इति॥ [प्रथमोढ़बिन्दवः] उदकस्य बिन्दव उदबिन्दवः। 'मन्थौदन' इत्यादिनोदकशब्दस्योदादेशः। प्रथम. उदबिन्दवः। प्रथमविशेषणाद्विन्दूनां विरलत्वं बहुवचनान्नातिविरलत्वं च गम्यते। तथा च चिरत्वनभ्यन्तरगमनयोर्निर्वाहः। **तस्याः** पार्वत्याः **पक्ष्मसु** नेत्रलोमसु **क्षणं स्थिताः** गताः। स्थिता इत्यनेन पक्ष्मणां सान्द्रत्वं क्षणमिति स्नैग्ध्यं च गम्यते। अनन्तरं **[ताडिताधराः]** ताडिता व्यथितोऽधर ओष्ठो यैस्ते तथोक्ताः। एतेनाधरस्य मार्दवं गम्यते। ततः **[पयोशरोत्सेधनिपातचूर्णिताः]** पयोधरयोः स्तनयोरुत्सेध उपरिभागे निपातेन पतनेन चूर्णिता जर्जरिताः। कुचकाठिन्यादिति भावः। तदनु **वलीषु** उदररेखासु **स्खलिताः।** निम्नोन्नत्वादिति भावः। इत्थं **चिरेण** न तु शीघ्रम्। प्रतिबन्धबाहुल्यादिति भावः। **नाभिं प्रपेदिरे** प्रविष्टा

न तु निर्जग्मुः। एतेन नाभेर्गाम्भीर्यं गम्यते। अत्र प्रतिपदमर्थवत्त्वात्परिकरालङ्कारः॥

(शिशु०) स्थिता इति। प्रथमोदबिन्दवः पूर्वप्रवृत्ता जलबिन्दवः क्रमेण तस्या नाभिं प्रपेदिरे प्राप्ताः। चिरप्राप्ती हेतुमाह। कीदृशाः? पक्ष्मसु अक्षिलोमपङ्क्तिषु क्षणं स्थिता सान्द्रत्वात्। ततस्ताडिताधरास्ताडितोऽधरो यैस्ते। ततः पयोधरोत्सेध- निपातचूर्णिताः स्तनयोरुत्सेध उच्छ्रायस्तत्र निपातेन चूर्णिताः। ततो वलीषु उदरलेखासु स्खलिताः। "मन्थौदन" इत्यादिनोदाहरणम्॥

अन्वयः → प्रथमोदबिन्दवः तस्याः पक्ष्मसु क्षणं स्थिताः ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः वलीषु स्खलिताः चिरेण नाभिं प्रपेदिरे।

अनुवाद → वर्षा की प्रथम जलबिन्दुएँ उसकी पलकों पर क्षणभर ठहर कर, अधरों को प्रताड़ित करते हुए, स्तनों के उपरि भाग पर गिर कर चूर- चूर होती हुई, पेट की त्रिवलियों में फिसलती हुई, बहुत समय के उपरान्त नाभिप्रदेश तक पहुँच सकी।

शब्दार्थ → **प्रथमोदबिन्दवः** = (पूर्वजलपृषताः प्रथमसलिलबिन्दवः) वर्षा के जल की प्रथम बूँदें, **तस्याः** = (पार्वत्याः) पार्वती के, **पक्ष्मसु** = (नेत्रलोमसु नेत्ररोमराजिषु, अक्षिरोमसु) पलकों पर, **क्षणं** = (क्षणमात्रं किञ्चित्कालं, क्षणसमयम्) क्षण भर, **स्थिताः** = (स्थितिं प्राप्ताः, अवस्थिताः) ठहरी/रूकी हुई, **ताडिताधराः** = (पीडिताधरोष्ठाः, व्यथिताधरोष्ठाः) अधर (निचला होठ) को प्रताडित करते हुए, **पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः** = (कुचपरिभागपतनजर्जरिताः, स्तनोन्नतभागपरिपतनरिताः, स्तनोपरिभागनिपतनजर्जरिताः) कसावट भरे (कठोर) स्तनों की ऊँचाई पर गिर कर चूर- चूर होती हुई, **वलीषु** = (उदरत्रिरेखासु) पेट की रेखाओं/त्रिवलियों में, **स्खलिताः** = (पतिताः, स्खलनं प्राप्ताः) फिसलती हुई, **चिरेण** = (बहुकालेन, चिरकालेन) बहुत समय के बाद, **नाभिं** = (तुन्दिं, नाभिप्रदेशम्) नाभि तक, **प्रपेदिरे** = (प्रविष्टाः, प्राप्ताः) पहुँच पाती थीं।

भावार्थ → इस पद्य में कालिदास ने वर्षा जल के वर्णन के बहाने पार्वती के सौन्दर्य का काव्यात्मक वर्णन किया है। वर्षा की प्रथम बिन्दु पार्वती के ऊपर गिरती हई थोड़ी देर घनी पलकों पर रूकी, परन्तु अत्यधिक चिकनी होने के कारण शीघ्र ही वहाँ से गिरकर कोमल अधरों को व्यथित करती हुई कठोर वक्षस्थल पर गिरकर बिखर गई। पुनः वे जल बूँदें उदर की गहरी त्रिवलियों से फिसलती हुई काफी देर के बाद नाभि

छिद्र में पहुँची। नाभि में पहुँचने के बाद जल की बूँदें वही रह गई जिससे नाभि की गहराई ध्वनित हो रही है।

भावार्थः → वर्षारम्भे आकाशात्पतिताः प्रथमजलबिन्दवः पार्वत्याः नेत्रपक्ष्मसु क्षणमात्रम् अवस्थिताः तदनन्तरं मृदुलम् अधरोष्ठं ताडयन्तः स्तनयोः अग्रभागे पतिताः सन्तः कुचकाठिन्यात् खण्डशो जाता भवति। ततः उदरे त्रिवलीषु रेखाषु निम्नोन्नतत्वात् स्खलिताः प्रतिबन्धकबाहुल्यात् इत्थं गम्भीरां नाभिं प्रविष्टा न तु बहिः निर्जग्मुरिति भावः।

व्याकरणम् → **प्रथमोदबिन्दवः** - उदकस्य बिन्दवः इति उदबिन्दवः (ष॰ तत्पु॰ समास), प्रथमे च ते उदबिन्दवश्च प्रथमोदबिन्दवः (कर्मधा॰ समास) प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **तस्याः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पक्ष्मसु** - सप्त॰, बहु॰व॰। **क्षणं** - √क्षणु हिंसायाम्+अच् द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **स्थिताः** - √स्था+क्त - प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **ताडिताधराः** - ताडितः अधरः यैः ते, बहु॰ समास,प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता**(उत्+√-सिध्+घञ्, निपात = नि+पत्+घञ्, चूर्णिताः = √चूर्ण+क्त) धरतस्तौ धरौ √धृञ् धारणे पचाद्यच् प्रत्यय। पयसां धरौ = पयोधरौ, ष॰ तत्पु॰ समास, तयोः उत्सेधः पयोधरोत्सेधः (ष॰त॰), तस्मिन् निपातः (सप्त॰ तत्पु॰ समास), तेन चूर्णिताः (तृ॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **वलीषु** - सप्त॰, बहुवचन। **स्खलिताः** - प्र॰वि॰, बहुवचन √स्खल+क्त। **चिरेण** - अव्ययपद। **नाभिं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **प्रपेदिरे** - प्र उपसर्गपूर्वक √पद्, लिट् लकार, आत्मने॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **बिन्दु** - पृषन्ति बिन्दुपृषताः इत्यमरकोशः। **पक्ष्म** - पक्ष्माक्षिलोम्नि किञ्जल्के तन्त्वाद्यंशेऽप्यणीयसी। **क्षणं** - निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः। **वली** - करोपहारयोरस्त्री वलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रियाम्। **नाभिं** - नाभिद्वयोस्तुन्दकूपी तुन्दिस्तुन्दीकरः पुमान् इति त्रिकाण्डशेष। **उत्सेधः** - उत्सेधश्चोच्छ्रयः सः।

अलङ्कार → जल की बूदों का पार्वती की पलकों से नाभि तक की यात्रा मे प्रयुक्त साभिप्राय विशेषण पदों के प्रयोग के कारण परिकर अलङ्कार है। जैसे नेत्र के पलकों में क्षण-भर तक जल की बूँदों के रूकने के कारण उसका घना और स्निग्ध (चिकना) होना सूचित हो रहा है। इसी प्रकार अधर पर जलबिन्दु के चोट करने से अधरों की कोमलता द्योतित हो रही है। पुनः बूँदों के स्तनों पर गिरकर छिन्न-भिन्न हो जाने से स्तनों की कठोरता प्रकट हो रही है। क्रमशः उन बूँदों के पेट की त्रिवली

में फँस जाने से उदर की विषमता (ऊँची-नीची) तथा नाभि प्रदेश में विलम्ब से पहुँचने के कारण नाभि प्रदेश की गहराई का पता चलता है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

25

प्रसङ्ग → वर्षा ऋतु में शिला पर स्थित पार्वती के कठोर तप का वर्णन किया जा रहा है -

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपःसाक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः॥

(सञ्जी०) शिलाशयामिति। **निरन्तरासु** नीरन्ध्रास्वन्तरे मध्ये वातो यासां तादृश्यो या वृष्टयस्तासु **अन्तरवातवृष्टिषु**। न निकेते गृहे वसतीति **अनिकेतवासिनीम्**। अनावृतदेशवासिनीमित्यर्थः। शिलायां शेते इति शिलाशयां शिलातलशायिनीम्। "अधिकरणे शेतेः" इत्यच्प्रत्ययः। **तां** पार्वतीं **[महातपःसाक्ष्ये]** साक्षात्द्रष्टा साक्षी। साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्" इतीनिप्रत्ययः। तस्य कर्म साक्ष्यं महातपसः साक्ष्ये **स्थिताः क्षपाः तडिन्मयैः** विद्रूपैः **उन्मिषितैः** अवलोकनै **व्यलोक यन् इव**। इवेति चक्षुषा विलोकनमेवोत्प्रेक्षते। साक्ष्यं तु (आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥) इति प्रमाणसिद्धत्वात्तत्रोत्प्रेक्ष्यमित्यनुसन्धेयम्॥

(शिशु०) शिलेति। क्षपा रात्रय उन्मिषितैस्तडिन्मयविलोकितैस्तां गौरी व्यलोकयन् ददृशुः। कीदृशीं तां। शिलाशयां शिलायां शेते या सा ताम्। तथा निरन्तरासु अविच्छिन्नासु अन्तरवातवृष्टिषु वातान्वितवृष्टिषु। सतीष्वपि अनिकेतवासिनीं उत्प्रेक्षते। महत्तपसो दुष्करस्य तपसः साक्ष्ये स्थिता इव अन्तरवातवृष्टिष्विति अन्तरमध्यस्थिता वाता यत्र ताश्च वृष्ट्यश्चेति कर्मधारयः॥

अन्वयः → निरन्तरासु अन्तरवातवृष्टिषु अनिकेतवासिनीं शिलाशयां तां महातपः साक्ष्ये स्थिताः क्षपाः तडिन्मयैः उन्मिषितैः व्यलोकयन् इव।

अनुवाद → अनवरत आँधी युक्त घनघोर वर्षा में, बिना घर के रहने वाली, शिलापट्ट पर सोने वाली उस पार्वती की महान् तपस्या के साक्षी (गवाह) के रूप में रात्रियाँ मानों विद्युत रूपी नेत्रों से देख रही थी।

शब्दार्थ → **निरन्तरासु** = (नीरन्ध्रासु, अविच्छिन्नासु अनवरतं वा, निरवकाशासु) लगातार, **अन्तरवातवृष्टिषु** = (मध्यवायुवर्षेषु, वायुगर्भितवर्षासु) आँधी के साथ होने वाली घनघोर वर्षा में, **अनिकेतवासिनीं**

= (अगृहवासिनीं, अनावृतदेशवासिनीं, अनाच्छन्नदेशवासिनीम्) बिना घर के रहने वाली है, (वन में खुले स्थान पर रहने वाली), **शिलाशयां =** (प्रस्तरशायिनीम्, शिलातलशायि, शिलाशायिनीम्) शिलातल पर शयन वाली, **तां** = (पार्वतीम्)उस पार्वती को, **महातपः साक्ष्ये** = (दुष्कर-तपः साक्षित्वे कठोरतपश्चरणसाक्षित्वे) कठोर तपस्या की साक्षी सदृश, **स्थिताः** = (विद्यमानाः वर्तमानाः आसन्) रहती थीं। **क्षपाः** = (निशाः रात्र्यः) रात्रियाँ, **तडिन्मयैः** = (विद्युद्रूपैः) चमकती विद्युतरूपी, **उन्मिषितैः** = (अवलोकनैः, विलोकनैः, नेत्रपक्ष्मविकासैः) निर्निमेष दृष्टियों के द्वारा, **व्यलोकयन् इव =** (अवलोकयन्, ददृशुरिव) मानों देख सी रहीं थी।

भावार्थ → वर्षा ऋतु में भी पार्वती की तपस्या अनवरत चलती रही। आँधी और मुसलाधार वर्षा में भी खुले आकाश के नीचे शिलातल पर ही स्थित पार्वती तपस्यारत रहती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि रात्रियाँ भी उसके तप की साक्षी थी जो बिजली रूपी आँखों से पार्वती को बार-बार देख रही थी।

भावार्थः → अविच्छिन्धारासु अनवरतप्रचलद्वायुवर्षासु अनावृतप्र-देशस्थितां शिलातलशयानां पार्वतीं तादृशदुश्चरतपः साक्षित्वे वर्तमाना निशा विद्युद् रूपैः नयनैः साक्षिवत् पश्यति स्म इति भावः। तथा चोक्तं शास्त्रे साक्ष्यम् - 'आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृतम्॥' इति॥

व्याकरणम् → **निरन्तरासु** - निर्गतम् अन्तरम् याभ्यः ताः निरन्तराः (बहु॰ समास), तासु निरन्तरासु, समास, बहु॰व॰। **अन्तरवातवृष्टिषु** - अन्तरे वातः यासां ताः अन्तरवाताः (बहु॰ समास), अन्तरवाताश्च ताः वृष्टयश्च, तासु (कर्मधा॰ समास), सप्त॰वि॰, बहु॰व॰। **अनिकेतवासिनी** - ($\sqrt{}$वस्+णिनि+ङीप्) न निकेतवासिनी (नञ्तत्पुरुष) तां - द्वितीयां एक॰व॰। **शिलाशयां** - शिलायां शेते इति (उपपद तत्पु॰ समास) / शिलायां शेते सा शिलाशया (सप्त॰ तत्पु॰ समास) ताम् द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **महातपः साक्ष्ये** - (साक्षिन्+ष्यञ् = साक्ष्यः तस्मिन् साक्ष्ये) महत् च तत् तपः इति महातपः (कर्मधा॰ समास) सप्त एक॰व॰, महातपसः साक्ष्यं, तस्मिन् (ष॰ तत्पु॰ समास)। **क्षपाः** - प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **तडिन्मयैः** - (तडित्+मयट् = तडिन्मयः, तृ॰वि॰, बहु॰व॰) तडितः एव तडिन्मयानि, तैः तडिन्मयैः स्वार्थ में मयट् प्रत्यय, तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **उन्मिषितैः** - उत्

√मिष्+क्त, तृ०वि०, बहु०व०। **व्यलोकयन्** - वि+√लोक्+णिच्+लङ् लकार, परस्मै०, प्र०पु०, बहु०व०।

कोशः → **अन्तर** - अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीय विना बहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च॥ इत्यमरकोशः। **वात** - नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः। **निकेत** - वेश्मसद्मनिकेतनम्। **शिला** - पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत्। **तडित्** - तडित्सौदामिनी विद्युत्। **क्षपा** - निशानिशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा। इहहहहहहत्यमरकोशः।

अलङ्कार → यहाँ 'व्यलोकयन् इव' (मानो देख रही हो) का प्रयोग उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। यद्यपि अपनी टीका में मल्लिनाथ ने साक्ष्य विषयक महाभारत के एक श्लोक का उल्लेख करते हुए यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार में सन्देह व्यक्त किया है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

26

प्रसङ्ग → कवि वर्षा ऋतु के अनन्तर हेमन्त ऋतु में पार्वती की तपस्या का वर्णन कर रहे हैं -

निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती॥

(सञ्जी०) निनायेति। सा पार्वती उत्किरन्ति क्षिपन्तीत्युत्किराः। ''इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'' इत्यनेन कः। अत्यन्तं हिमानामुत्किरा अनिला यासु ताः **सहस्यरात्रीः** पौषरात्रीः। 'पौषे तैषसहस्यौ द्वौ' इत्यमरः। उदके वास उदवासः। ''पेषंवासवाहनधिषु च'' इत्युदादेशः। **[उद्वासतत्परा]** उदवासे तत्परा आसक्ता तथा **[परस्पराक्रन्दिनि]** परस्परमाक्रन्दिन्यन्योन्यमाक्रोशिनि पुरः अग्रे वियुक्ते विरहिणि। वियोगं प्राप्त इति यावत्। चक्रवाकी च चक्रवाकश्च चक्रवाकौ तयोः **चकवाकयोः मिथुने** द्वन्द्वे **कृपावती** सती **निनाय**। दुःखिषु कृपालुत्वं महतां स्वभाव इति चक्रवाकमिथुने कृपा न तु कामितयेति वाच्यानवकाशः। (अप्सु वासस्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयेत्तपः) इति मनुः॥

(शिशु०) निनायेति। उदवासतत्परा जलनिवासपरायणा सा गौरी सहस्य रात्रीः पौषस्य निशा निनायातिवाहितवती। कीदृशीः? अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः अत्यन्ततुषारोधिवासितवातसंयुक्ताः। कीदृशीःगौरी। पुरोऽग्रतो वियुक्ते परस्पराक्रन्दिनि परस्परमन्योन्यमार्तवशब्दान् कुर्वाणे चक्रवाकयोर्मिथुने द्वये कृपावती सदया। स्वयं वियोगे व्यथानुभवन्न। उदवासेति ''पेषं

वासवाहनधिषु च'' इत्युदादेशः॥

अन्वयः → सा अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीः उदवासतत्परा परस्पराक्रन्दिनि पुरः वियुक्ते चक्रवाकयोः मिथुने कृपावती सती निनाय।

अनुवाद → वह अत्यधिक हिमयुक्त हवाओं वाली पौष मास की रात्रियों को (हेमन्त ऋतु में) जल में खड़े रहकर करते हुए तथा अपने सामने ही परस्पर बिछुड़कर पुनः मिलने के लिए क्रन्दन करते हुए चकवा- चकवी के जोड़े पर दयावती होती हुई रातें बिताया करती थीं।

शब्दार्थ → **सा** = (पार्वती) वह पार्वती, **अत्यन्तहिमोत्किराऽनिलाः** = (अत्यधिकक्षेपिवाताः, अत्यधिकग्रालेय प्रक्षेपिवायवः, प्रभूततुहिनोत्क्षेपिपवनाः) अत्यधिक हिमकणों को बिखेरने वाली वायु से युक्त, **सहस्यरात्रीः** = (पौषनिशाः) पौष मास की रात्रियों को, **उदवासतत्पराः** = (जलनिवाससंलग्ना, जलनिवासासक्ता, अम्बुवासव्रता) जल में रहकर, **पुरः** = (पुरतः अग्रे, समक्षम्) सामने ही, **वियुक्ते** = (वियोगयुक्ते, विरहिणि) बिछड़े हुए, **परस्पराक्रन्दिनि** = (परस्पराक्रोशिनि, अन्योन्याक्रोशिनि) एक दूसरे के लिए क्रन्दन करते हुए, **चक्रवाकयोः** = (चक्रवाकनामपक्षिणोः, चक्रवाकीचक्रवाकयोः) चकवा और चकवी के, **युगले** = (मिथुने, द्वन्दे) जोड़े पर, **कृपावती सती** = (दयावती, अनुकम्पावती सती) दयासम्पन्न होती हुई, **निनाय** = (व्यतीताय, यापयामास, गमयामास) व्यतीत करती थी।

भावार्थ → वह पार्वती हेमन्त ऋतु की रात्रि में जल के मध्य स्थित होकर बर्फीली हवाओं का सामना करते हुए अनवरत तपस्या में संलग्न थी। पार्वती सांयकाल में अपने समक्ष बिछुड़े हुए चकवा- चकवी को परस्पर मिलने के लिए चिल्लाते हुए देखकर रातभर दया का अनुभव करती थी। अर्थात् पार्वती को अपने कष्ट की तनिक भी चिन्ता न थी।

भावार्थः → सा पार्वती वर्षाकालिकं तपः समापयित्वा सम्प्रति हेमन्तर्तौ अतीव दुष्करं तपः आरब्धवती। अस्यां ऋतौ सा पार्वती निशायां हिमकर्णयुक्तपवन मध्ये जले निमग्ना भूत्वा तपः आचरन्ती तथा परस्परं मेलितुं आक्रन्दिनि चक्रवाकद्वन्द्वे कृपावती भूत्वा रात्रिं व्यापयति स्म।

व्याकरणम् → **अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः** उत्किरन्तीति उत्किराः (उद्+√कृ विक्षेपे+कः प्रत्यय), हिमानाम् उत्किराः हिमोत्किराः, अत्यन्तं हिमोत्किराः अत्यन्तहिमोत्किराः अनिलाः यासुः ताः (बहु॰ समास) द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **सहस्यरात्रीः** - सहस्यस्य रात्रयः सहस्यरात्रयः (ष॰

तत्पु॰ समास) ताः सहस्यरात्रीः द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **उदवासतत्परा** - उदके वासः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) उदवासः उदवासे, तत्परा (सप्त॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **परस्पराक्रन्दिनि - (**आ+√क्रन्द्+णिनि, तस्मिन् आक्रन्दिनि) परस्परम् आक्रन्दतीति, परस्पराक्रन्दि तस्मिन् सप्त॰-वि॰, एक॰व॰। **। पुरः (स्) -** अव्ययपद, **वियुक्ते** - वि उपसर्गपूर्वक √युज्+क्त+सप्त, एक॰व॰। **चक्रवाकयोः** - चक्रवाकी च चक्रवाकश्च इति चक्रवाकौ (द्वन्द्व॰ समास) तयोः ष॰वि॰, द्वि॰वि॰। **मिथुने** - सप्त॰, एक॰व॰। **कृपावती** - (कृपा+मतुप्+ङीप्) कृपा अस्ति अस्या इति, मतुप् प्रत्यय स्त्रीत्व में ङीप् प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सती** - अस्तीति सती स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् = प्र॰वि॰, एक॰व॰। **निनाय** - √णीञ् प्रापणे+लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **हिम** - तुषारः शीतलः शीतो हिमः सप्तान्यलिङ्गकाः। **अनिलः** - पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगा। **सहस्य** - पौषे तैषसहस्यौ द्वौ। **रात्रिः -** निशा निशीथिनी रात्रिः। **तत्पर** - तत्परे प्रसितासक्तौ। **चक्रवाक** - कोकश्चक्रश्चक्रवाकौ रथाङ्गाह्वयनामकः। **पुरः** - पुरोऽधिकमुपर्यग्राणि। **मिथुनं** - स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वम्। **कृपा** - कृपा दयाऽनुकम्पा स्यात्। इत्यमरकोशः।

टिप्पणी → मनु महाराज ने तप के लिए हेमन्त ऋतु में जल में निवास का विधान किया है-

अप्सु वासस्तु हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयन् तपः॥

27

प्रसङ्ग → कठोर तप के उपरान्त भी पार्वती की मुखकान्ति तनिक भी मलिन न हुई अपितु कमल के सदृश ही शोभायमान रही -

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्॥

(सञ्जी॰) मुखेनेति। **सा** पार्वती निशि रात्रौ **[पद्मसुगन्दिनि]** पद्मवत्सुगन्धिना सुरभिणा।''गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः'' इत्यनेनेकारः। **[प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना]** प्रवेपमानः कम्पमानोऽधर ओष्ठ एव पत्रं दलं तेन शोभत इति तथोक्तेन मुखेन तुषारवृष्टया तुहिनवर्षेण क्षता नाशिताः पद्मसम्पदो यासां तासाम् **अपां सरोजसन्धानं** पद्मसंघटनम् **अकरोद् इव**। इत्युत्प्रेक्षालंकारः। पद्मान्तरं तुहिनेनोपहन्यते तन्मुखपद्मं तु न तथेति व्यतिरेकालंकारो व्यज्यत इत्युभयोः संकरः॥

(शिशु०) मुखेनेति। सा गौरी निशि रात्रौ पद्मसुगन्धिना पद्मवत्सुगन्धिना प्रवेपमानः कम्पमानोऽधर एव पत्रं दलं तेन शोभत इति तादृशेन मुखेन तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदां तुषारेण हिमवृष्ट्या क्षता नष्टा पद्मसम्पद्यासामपां सरोजसन्धानमिव कमलसृष्टिमिवाकरोद्व्यधत्त अत्र शरद्वसन्तयोः शीतोष्णसाम्याच्छिशिरस्य हिमान्तर्गतत्वात्तपश्चर्यावर्णनम्॥

अन्वयः → सा निशि पद्मसुगन्धिना प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना मुखेन तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदाम् अपां सरोजसन्धानम् अकरोत् इव।

अनुवाद → रात्रि में उस पार्वती ने कमल के समान सुगन्धित तथा काँपते हुए अपने अधर रूपी पत्र से सुशोभित मुख के द्वारा हिमपात से नष्टशोभा वाले कमल रूपी सम्पत्ति से युक्त जलराशि (सरोवर) को मानो कमलों का सन्धान (आभास) करा रही थी।

शब्दार्थ → **सा** = वह पार्वती, **निशि** = (रात्रौ, रजन्याम्) रात्रि में, **पद्मसुगन्धिना** = (कमलसुरभिणा, पङ्कजसुरभिणा) कमल के समान सुगन्धित, **प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना** = (प्रकम्पमानाधरोष्ठदलशोभिना, कम्पमानोष्ठदलरमणीयेन) काँपते हुए अधर रूपी पत्तों से सुशोभित**,** **मुखेन** = (वदनेन, आननेन) मुख के द्वारा, **तुषारवृष्टिक्षतसम्पदाम्** = (तुहिनवर्षानाशितसरोजसम्पत्तीनाम् हिमपातनाशितकमलसम्पत्तीनाम्, हिमपातनष्टपङ्कजसमृद्धीनाम्) हिमपात होने से (पाला गिरने से) नष्ट कमल रूपी सम्पत्ति वाले, **अपाम्** = (अम्भसाम्, जलानाम्) जलराशि को, **सरोजसन्धानम् इव** = (पद्मसङ्घट्टनम् इव, कमलसम्बन्धम्) मानो कमलों से युक्त, **अकरोत्** = (व्यधत्त, व्यदधात्) करती थी।

भावार्थ → यहाँ कवि उत्प्रेक्षा अलङ्कार के द्वारा पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है। शीत ऋतु की रात्रि में आकण्ठ जल में डुबे हुए पार्वती का केवल मुख ही दिखाई देता था। उसकी श्वास से कमल की सुगन्ध निकल रही थी तथा अत्यधिक शीत के कारण उसके पंखुड़ी के समान कोमल अधर काँपते रहते थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो हेमन्त ऋतु में सरोवर के कमलों की शोभा नष्ट हो जाने पर भी पार्वती के मुखकमल से सरोवर की शोभा बनी हुई है।

भावार्थः → जलाधिवासपरायणत्वात् जले मुखमात्रदृश्या सा पार्वती हेमन्तनिशायां पद्मगन्धिना शैत्यात् कम्पमानाधरोष्ठदलसुन्दरेण मुखेन हिमध्वस्तकमलसम्पत्तीनामुदकानां सततं कमलसम्बन्धमिवाकरोत्। सा पार्वती पद्मिनी नायिका अस्ति। अतः तस्याः मुखं पद्मवत् सुगन्धिता

आसीत्। अतः तपकाले जले निमग्नायाः पार्वत्याः मुखं पद्मवत् शोभते स्म। रात्रौ जले स्थितायाः पार्वत्याः अधरः शैत्याधिक्यकारणेन कम्पते स्म। एतादृशी सरोवरस्य शोभा पार्वत्याः कारणेन जाता।

व्याकरणम् → **निशि** - सप्त॰, एक॰व॰। **पद्मसुगन्धिना** - शोभनः गन्धः यस्य तत् सुगन्धि, पद्मवत् सुगन्धि पद्मसुगन्धि (उपमानपूर्व कर्मधा॰ समास), तेन पद्मसुगन्धिना - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना** - (प्र+√वेप्+शानच् ; शोभिना = √शुभ्+णिनि तृ॰वि॰, एक॰व॰) प्रवेपमानश्चासौ अधरश्च (कर्मधा॰ समास) प्रवेपमानाधर एव पत्रम्, तेन शोभते - प्रवेपमानाधरपत्रशोभि, तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **मुखेन** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदाम्** - तुषारस्य वृष्टिः तुषारवृष्टिः (ष॰ तत्पु॰ समास) तुषारवृष्ट्या क्षताः पद्मसम्पदः (पद्मानि एव सम्पदः यासां ताः (बहु॰ समास) तासाम्, पद्मानां सम्पदः, पद्मान्येव सम्पदो वा)। यासां ताः (बहु॰ समास), तासाम् तुषार...दाम्, ष॰वि॰, बहु॰व॰। **अपाम्** - ष॰वि॰, बहु॰व॰। **सरोजसन्धानम्** - सरसि जातम् इति सरोजम् (उपपद तत्पु॰ समास), सरोजानां सन्धानम् इति सरोजसन्धानम् (ष॰ तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अकरोत्** - √डुकृञ् करणे+लङ् लकार, प्र॰पु॰ एक॰व॰। **इव** - अव्ययपद।

कोशः → **मुख** - वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्। **पत्रं** - पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्। **तुषार** - तुषारः शीतलः शीतो हिमः। **वृष्टिः** - वृष्टिर्वर्षः। **आपः** - आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि। **अधर** - औष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससि।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में हिमपात से नष्ट कमलों के न रहने पर सरोवर में आकण्ठ तपस्या में संलग्न पार्वती का मुखकमल ही कमल की शोभा का आभास करा रहा है; अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

पुनः हिमपात से कमल (उपमान) का नष्ट होना और पार्वती का मुखकमल (उपमेय) नष्ट न होने के कारण यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है; क्योंकि यहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय की अधिक विशेषता बताई गई है। साथ ही 'अधरपत्र' एवं 'मुखपद्म' में एकदेशी नामक रूपक अलङ्कार भी है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

28

प्रसङ्ग → पार्वती की तपस्या चरम पर पहुँच गई। अब वह पत्तों को भी खाना छोड़ चुकी है जिसका वर्णन कवि कर रहे हैं -

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेऽति च तां पुराविदः॥

(सञ्जी०) स्वयमिति। **[स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता]** स्वयं विशीर्णानि स्वतश्च्युतानि द्रुमपर्णान्येव वृत्तिर्जीवनं यस्य तस्य भावस्तत्ता **तपसः परा काष्ठा** परमुत्कर्षो हि। 'काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि' इत्यमरः। **तया** देव्या **पुनः तत्** पर्णवर्तनम् **अपि अपाकीर्णम** अपाकृतम्। अतः पर्णापाकरणाद्धेतोः। **[प्रियंवदां]** प्रियं वदतीति प्रियंवदा। ''प्रियवशे वदः खच्'' इति खच्प्रत्ययः। "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'' इति मुमागमः। **तां** पार्वतीं **पुराविदः** पुराणज्ञास्तपः करणसमयेऽविद्यमानं पर्णभक्षणं यस्याः सा **अपर्णेति वदन्ति च**। नामान्तरसमुच्चयार्थश्चकारः। अत्र 'अपर्णाम्' इत्यपपाठ इतिशब्दाभिहिते द्वितीयानुपपत्तेः। यथाह वामनः - 'निपातेनाप्यमभिहिते कर्मणि न कर्मविभक्तिः परिगणनस्य प्रायिकत्वात्' इति। स्वयं प्रियंवदाः परेषामपि प्रियवादभाजनानि भवन्तीति भावः॥

(शिशु०) स्वयमिति। स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता स्वयमेव विशीर्णयति तं द्रुमपर्णं वृक्षपत्रमेव वृत्तिर्यस्यास्तद्भावस्तत्ता सा हि तपसः पराकाष्ठा कोटिः। तया गौर्यां शीर्णं पर्णमपाकृतं त्यक्तं। अतो हेतोः पुराविदः पौराणिकाः प्रियंवदा प्रियवादिनी तां अपर्णामिति अनुक्तं पर्णं ययेत्यपर्णा सा तामिति वदन्ति। अत्रेतिशब्दे कर्मणः विहितत्वादपर्णामिति चिन्त्यम्॥

अन्वयः → स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता तपसः पराकाष्ठा हि। तया पुनः तत् अपि अपाकीर्णम् अतः प्रियंवदां तां पुराविदः अपर्णा इति च वदन्ति।

अनुवाद → स्वयं ही टूट कर गिरे हुए वृक्षों के पत्तों को खाकर जीवन धारण करना तप की पराकाष्ठा है। किन्तु उस पार्वती ने उन पत्तों का भी परित्याग कर दिया (खाना छोड़ दिया) अतः पुराणों के ज्ञाता लोग उस प्रियंवदा (प्रिय बोलने वाली) को अपर्णा के नाम से पुकारते हैं।

शब्दार्थ → **स्वयं** = अपने आप, **विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता** = (स्वयमेवपतिततरुपल्लववर्तनत्वं स्वतश्च्युतवृक्षपत्रवर्त्तनत्वं, स्वयंपतिवृक्षपत्रजीवनम्) पेड़ों से अपने आप झड़ कर गिरे हुए वृक्षों के पत्तों को खाकर जीवन निर्वाह करना, **तपसः** = (व्रतस्य, तपश्चरणस्य, तपोव्रतस्य) तपस्या की, **पराकाष्ठा हि** = (परं उत्कर्षः हि, चरमोत्कर्षः कथ्यते, चरमावस्था) निश्चय ही चरमोत्कर्ष है, **तया** = (पार्वत्या) पार्वती के द्वारा, **पुनः** = (भूयः) तो फिर, **तत् अपि** = (पर्णवर्त्तनमपि, पल्लवभक्षणमपि) उसे भी, **अपाकीर्णम्** = (दूरीकृतम्, परित्यक्तम्) त्याग दिया

गया, **अतः** = (अस्मात् कारणात्) इसीलिए, **प्रियवंदाम्** = (प्रियभाषिणीं) प्रिय बोलने वाली, **ताम्** = (पार्वतीं) उस पार्वती को, **पुराविदः** = (पुराणज्ञातारः) पुराणों के ज्ञाता, **अपर्णा इति च** = (अपर्णेति नाम्ना) अर्पणा इस नाम भी, **वदन्ति** = (कथयन्ति, ब्रुवन्ति) कहते हैं।

भावार्थ → वृक्ष से गिरे पत्तों को खाकर तप करना 'सर्वोत्कृष्ट तप' कहा जाता है किन्तु पार्वती ने उन पत्तों को भी खाना छोड़ दिया। इसलिए वह 'अपर्णा' नाम से प्रसिद्ध हुई। यहाँ पार्वती के तप का चरमोत्कर्ष वर्णित है।

भावार्थः → वृक्षेभ्यः स्वयं विशीर्णं पर्णं भुक्त्वा जीवननिर्वाहः तपस्यायाः चरमा सीमास्ति, किन्तु पार्वत्या तद् भक्षणमपि त्यक्तम्। अतः सा अपर्णा इति उच्यते।

व्याकरणम् → **स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता** - (वि+√शृ+क्त, वृति = √वृत+क्तिन्) स्वयं विशीर्णम् तत् स्वयंविशीर्णम् (सुप्सुपा समास) तानि स्वयंविशीर्णानि, द्रुमस्य पर्णानि द्रुमपर्णानि (ष॰ तत्पु॰ समास), स्वयं विशीर्णानि द्रुमपर्णान्येव वृत्तिः यस्य तत् (बहु॰ समास) तस्य भावः स्वयं वृत्तिता। प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपसः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पराकाष्ठा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **हि** - अव्ययपद। **तया** - तद् सर्वनाम, स्त्री॰, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **पुनः** - अव्ययपद। **तत्** - सर्वनाम नपुंसक लिङ्ग, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अपि** - अव्ययपद। **अपाकीर्णं** - (अप+आ √कृ+क्त) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अतः** - अव्ययपद। **प्रियंवदाम्** - प्रियं वदति इति प्रियंवदा ताम्, प्रिय उपपद √वद् व्यक्तायां वाचि+खच्+टाप् एवं मुम् आगम होकर - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **पुराविदः** - पुरा विदन्तीति √विद्+क प्रत्यय, पुराणं विदन्ति इति पुराविदः (उपपद तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अपर्णा इति** - अविद्यमानं पर्णं/पर्णभक्षणं यस्याः सा अपर्णा(बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। इति अव्ययपद। **च** - अव्ययपद। वदन्ति - √वद् व्यक्तायां वाचि - परस्मै॰ लट्लकार, प्र॰ पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **द्रुम** - पलाशी द्रुद्रुमागमाः। **वृत्ति** - वृत्तिर्वर्तनजीवने। **परा** - दूरानात्मोत्तमाः पराः। **काष्ठा** - काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि। **हि** - हि हेतावववधारणे। **अपर्णा** - अपर्णा पार्वती दुर्गा। इत्यमरकोशः।

29

प्रसङ्ग → अत्यन्त कष्टप्रद व्रत पालन करते हुए पार्वती ने बड़े - बड़े तपस्वियों को भी बहुत पीछे छोड़ दिया है -

मृणालिकापेलवमेवादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा॥

(सञ्जी०) मृणालिकेति। **मृणालिकापेलवं** पद्मिनीकन्दकोमलं **स्वं** स्वकीयम **अङ्गं** शरीरम् **एवम् आदिभिः** एवमुक्तप्रकारतयाग्निमध्यवासव्रतमादिर्येषां तैः **व्रतैः** रहश्च निशा चाहर्निशम्। समाहारे द्वन्द्वेकवद्भावः। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। **ग्लपयन्ती** कर्शयन्ती **सा** पार्वती **कठिनैः**। क्लेशसहैरित्यर्थः। **शरीरैः उपार्जितं** सम्पादितं **तपस्विनाम्** ऋषीणां **तपः दूरम्** अत्यन्तम् **अधश्चकार**। अतिशय इत्यर्थः। तपस्विभिरप्येवं तपः कर्तुं न शक्यत इति तात्पर्यार्थः॥

(शिशु०) मृणालिकेति। सा गौरी कठिनैः शरीरैरुपार्जितमपि तपस्विनां तपो दूरमधश्चकारेत्यर्थस्य कृतवती। किं कुर्वती? एवमादिभिस्तपोग्न्यादिभिर्व्रतैर्मृणालिकापेलवं कोमलं स्वमङ्गं देहमहर्निशं ग्लपयन्ती कृशं कुर्वाणा।

अन्वयः → मृणालिकापेलवं स्वम् अङ्गम् एवमादिभिः व्रतैः अहर्निशं ग्लपयन्ती सा कठिनैः शरीरैः उपार्जितं तपस्विनां तपः दूरम् अधश्चकार।

अनुवाद → कमल के समान अत्यन्त कोमल अपने अङ्गों को इस प्रकार पञ्चाग्नि, जलवास, निराहार आदि व्रतों से गलाती हुई उस पार्वती ने कठोर शरीरों द्वारा उपार्जित तपस्वियों के तप को तुच्छ कर दिया।

शब्दार्थ → **मृणालिकापेलवम्** = (कमलिनीकन्दकोमलं) कमलिनी के सदृश कोमल, **स्वम्** = (स्वकीयं) अपने, **अङ्गम्** = (शरीरं देहं,गात्रं, वपुः) अङ्ग/शरीर को, **एवम्** = (अनेन प्रकारेण पूर्वोक्तप्रकारेण, उक्तप्रकारैः) इस प्रकार के, **आदिभिः** = (अग्निजलवासादिभिः) इस प्रकार के अनेक कठिन व्रत एवं तपादि द्वारा, **व्रतैः** = (नियमैः, तपोभिः) व्रतपालनों के द्वारा, **अहर्निशम्** = (अहोरात्रं) रातदिन, **ग्लपयन्ती** = (कर्शयन्ती, शोषयन्ती) कृश करती हुई, थकाती हुई, **सा** = (पार्वती) पार्वती ने, **कठिनैः शरीरैः** = (कर्कशैः देहैः, क्लेशसहैः गात्रैः, कठोरैः) कठोर शरीरों के द्वारा, **उपार्जितं** = (सम्पादितं, सञ्चितम्) सम्पादित की गई, **तपस्विनाम्** = (तापसानाम् मुनीनां) तपस्वियों के, **तपः** = (नियमविशेषं, व्रतविशेषं, नियमव्रतम्) तप को, **दूरम्** = (अत्यधिकम्, अत्यन्तं) बहुत अधिक, दूर से ही , **अधः चकार** = (तिरश्चकार, तिरस्कृतं कृतवती, अतिचक्राम) तुच्छ कर दिया, नीचा दिखा दिया।

भावार्थ → पार्वती ने अपने कमल के सदृश कोमल शरीर का

उपवास, अग्निवास, जलवास इत्यादि व्रत के अनेक कठोर नियमों के द्वारा अत्यन्त कृशकाय बना दिया। अपनी तपस्या से पार्वती ने कठोर तप करने वाले ऋषियों- मुनियों को भी पीछे छोड़ दिया। भाव यह है कि दीर्घकाल तक व्रत आदि का पालन करते करते ऋषियों का शरीर कठोर हो जाता है अतः उनके लिए कठोर तप उतना आश्चर्यजनक नहीं है जितना कोमलाङ्गी पार्वती के लिए कठोर तप करना।

भावार्थः → कमलनकन्दसदृशं स्वकीयं शरीरं जलानलवासोपवासादिभिः नियमैः अहोरात्रं ग्लापयन्ती सा पर्वती आतपादिसहैः शरीरैः क्रियमाणं महर्षिणामपि तपः अत्यन्तं तिरश्चकार इति भावः।

व्याकरणम् → **मृणालिकापेलवं -** (मृणाल+कन्+टाप्) मृणालिका इव पेलवम् इति मृणालिकापेलवम् (उपमान कर्मधा॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **स्वम् अङ्गम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **एवमादिभिः** - एवम् आदिर्येषां ते (बहु॰ समास) एवमादयः तैः एवमादिभिः तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **व्रतैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **अहर्निशं** - अहश्च निशा च इति अहर्निशं (समाहार द्वन्द्व॰ समास) अव्ययपद। **ग्लपयन्ती** - √ग्लौ धातु+पुक् आगम+णिच्+शतृ+ङीप् प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कठिनैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **शरीरैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **उपार्जितं** - उप उपसर्ग पूर्वक √अर्ज+इट्+क्त, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **तपस्विनाम्** - (तपस्+विनि) तपः अस्ति येषां इति तपस्वी तेषां, ष॰वि॰, बहु॰व॰। **तपः** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **दूरम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अधः** - अव्ययपद। **चकार** - √कृ+परस्मै॰, लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **मृणाल** - मृणालं बिसमब्जादिकदम्बे षण्डमस्त्रियाम्। **पेलव** - मृदु चातीक्ष्णपेलवौ। **व्रत** - नियमो व्रतमस्त्री। **स्वम्** - आत्मीये स्वोऽस्त्रियां धने। **अङ्ग** - अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽघनः। **कठिन** - कर्कशं कठिनं क्रूरम्। इत्यमरकोशः।

30

प्रसङ्ग → पार्वती की कठोर तपस्या से प्रसन्न भगवान् शिव ब्रह्मचारी के वेश में पार्वती की परीक्षा लेने हेतु उपस्थित होते हैं -

अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा॥

(सञ्जी०) अथेति। **अथ** अनन्तरमजिनं **[अजिनाषाडधरः]** कृष्णमृगत्वक्। आषाढः प्रयोजनमस्येत्याषाढः पालाशदण्डः।'पालाशो दण्ड आषाढः'

इत्यमरः। ''विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः'' इत्यण्प्रत्ययः। तयोर्धरस्तथोक्तः **प्रगल्भवाक्** प्रौढवचनो **ब्रह्ममयेन** वैदिकेन **तेजसा**। ब्रह्मवर्जसेनेत्यर्थः। **ज्वलन्निव** स्थितः। इवशब्दो निर्धारणार्थः। **कश्चिद्** निर्दिष्टो **जटिलः** जटावान्। ब्रह्मचारीति शेषः। पिच्छादित्वादिलच्प्रत्ययः। **शरीरबद्धः** बद्धशरीरः। शरीरवानित्यर्थः। ''वाहिताग्न्यादिषु'' पाठात्साधुः। **प्रथमाश्रमो यथा** ब्रह्मचर्याश्रम इव। यथाशब्द इवार्थे। **तपोवनम्**। देव्या इति शेषः। **विवेश** प्रविष्टवान्॥

(शिशु०) अथेति। अथानन्तरं कश्चिदनिर्दिष्टो जटिलो ब्राह्मणो देव्यास्तपोवनमाश्रमं विवेश प्रविष्टवान्। कीदृशोऽजिनाषाढधरः? अजिनं मृगचर्म आषाढः पालाशो दण्डस्तयोर्धरः। पचाद्यच्। प्रगल्भवाक् प्रौढवचनः। पुनः कीदृशः? ब्रह्ममयेन तेजसा ब्राह्मणः ज्वलन्निव देदीप्यमान इव। तत्रोत्प्रेक्षते। शरीरबद्धो विग्रहवान् प्रथमाश्रम इव ब्रह्मचर्याश्रम इव। 'पालाशो दण्ड आषाढः' इत्यभिधानचिन्तामणिः॥

अन्वयः → अथ अजिनाषाढधरः प्रगल्भवाक् ब्रह्ममयेन तेजसा ज्वलन् इव कश्चित् जटिलः शरीरबद्धः प्रथमाश्रमः यथा तपोवनं विवेश।

अनुवाद → इसके बाद कृष्णमृगचर्म एवं पलाशदण्ड को धारण करने वाला, गम्भीर वाणी बोलने वाला, ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता हुआ कोई जटाधारी व्यक्ति ने तपोवन में प्रवेश किया मानो ब्रह्मचर्याश्रय ही शरीर धारण करके उपस्थित हो गया हो।

शब्दार्थ → **अथ** = (अनन्तरम्) इसके बाद, **अजिनाऽऽषाढधरः** = मृगचर्मपलाशदण्डधारी:, कृष्णमृगचर्मदण्डधारी) काले हिरण की चर्म तथा पलाश के दण्ड को धारण करने वाला, **प्रगल्भवाक्** = (प्रौढवचनः, वार्तालापकुशलः) प्रत्युत्पन्नमति अथवा वार्तालाप में कुशल, **ब्रह्ममयेन** = (वेदज्ञानादिसंवृतेन, वेदभ्यासजनितेन) वेदज्ञान से युक्त होने के कारण, **तेजसा** = (ब्रह्मवर्चसा) तेज से, **ज्वलन् इन** = (प्रकाशमान इव, दैदीप्यमान इव) मानो प्रकाशित होता हुआ, **कश्चित्** = (कोऽपि) कोई, **जटिलः =** (जटावान्, जटाधारी ब्रह्मचारी) जटाधारी, **शरीरबद्धः** = (शरीरवान्, देहवान्) शरीर धारण किये हुए, **प्रथमाश्रमः** = (ब्रह्मचर्याश्रमः) ब्रह्मचर्याश्रम, **यथा =** (इव) के समान, **तपोवनं** = (तपःस्थलं, तपस्थलीं, गौर्याश्रमम्) तपस्थान में, **विवेश** = (प्राप, प्रविष्टवान्) प्रविष्ट हुआ।

भावार्थ → जब पार्वती की कठोर तपस्या चल रही थी तभी अक-

स्मात् कृष्णमृगचर्म और दण्ड धारण किए हुए किसी ब्रह्मचारी ने तपोवन में प्रवेश किया। वाक्पटु, जटाधारी तथा सतत वेदादि शास्त्रों के अध्ययन में संलग्न रहने वाले उस ब्रह्मचारी को देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों साक्षात् ब्रह्मचर्याश्रम ही शरीरधारण करके उपस्थित हो गया हो।

भावार्थः → अथ तादृश उग्रतपोऽनन्तरं कृष्णमृगचर्मपलाशदण्डधारी वाक्पटुः ब्रह्मवर्चसा देदीप्यमानः जटाधारी कश्चिद् ब्रह्मचारी समागतः। सः एवं प्रतीयते यत् साक्षात् ब्रह्मचर्याश्रम इव शरीरं धृत्वा समागतः इति।

व्याकरणम् → **अथ** - अव्ययपद। **अजिनाषाढधरः** - धरतीति धरः ,√धृञ् धारणे+अच्, अजिनश्चाषाढश्च (द्वन्द्वसमास), अजिनाषाढयोः धरः, ष॰ तत्पु॰ समास, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्रगल्भवाक्** - प्रगल्भा वाक् यस्य (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ब्रह्ममयेन** - ब्रह्म+मयट्, तेन, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तेजसा** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **ज्वलन् इव** - √ज्वल्+-शतृ प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कश्चित्** - अव्ययपद। **जटिलः** - (जटा-+इलच्) जटाः सन्ति यस्य सः जटिलः, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **शरीरबद्धः** - बद्धं शरीरं येन/यस्य सः (बहव्रीहि समास) शरीरेण बद्धो वा - (तृ॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **यथा** - अव्ययपद। **श्रमः** - प्रथमश्चासौ आश्रमः (कर्मधा॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपोवनम्** - तपसः वनम् (ष॰ तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विवेश** - विश् प्रवेशने,लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **अजिनं** - अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री। **आषाढः** - पलाशो दण्ड आषाढः। **प्रगल्भ** - प्रगल्भः प्रतिभान्विते। **ब्रह्म** - वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः। **तेजस्** - तेजः प्रभावे दीप्तौ च। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → ब्रह्मचारी का आश्रम में उपस्थित होना मानो 'साक्षात् ब्रह्मचर्य आश्रम ही शरीरधारी के रूप में उपस्थित हो गया है' इस प्रकार की कविकल्पित सम्भावना व्यक्त करने के कारण यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। 'यथा' शब्द उत्प्रेक्षा का वाचक है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

31

प्रसङ्ग → पार्वती तपोवन में पधारे ब्रह्मचारी का आतिथ्य सत्कार करती है -

तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः॥

(सञ्जी०) तमिति। **अतिथिषु** साध्व्यातिथेयी। ''पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढ-

ञ् इत्यनेन ढञ् प्रत्ययः।'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीप्। **पार्वती तं** ब्रह्मचारिणं **बहुमानपूर्वया** बहुमानः पूर्वो यस्यास्तया।गौरवपूर्वयेत्यर्थः। **सपर्यया** अर्चया। 'सपर्यार्चार्हणाः समाः' इत्यमरः। **प्रत्युदियाय** प्रत्युज्जगाम। कथं समानेऽपि तस्यास्तादृशी प्रतिपत्तिरत आह- **साम्ये** सति **अपि निविष्टचेतसां** स्थिरचित्तानां **वपुर्विशेषेषु** व्यक्तिविशेषेष्वतिशयितं गौरवं यासु ता अतिगौरवा अतिगौरवसहिताः **क्रियाः** चेष्टा **भवन्ति।** प्रवर्तन्त इत्यर्थः। साधवो न साम्याभिनिवेशिन इति भावः॥

(शिशु०) तमिति। आतिथेयी अतिथौ साध्वी 'पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्' पार्वती बहुमानपूर्वया बहुगौरवपुरस्सरया सपर्यया पूजया कृत्वा तं ब्रह्मचारिणं प्रत्युदियाय प्रत्युत्थिता। ननु सापि स्वयं तत्तुल्या। कथं तस्मै प्रत्युज्जगामेत्याह। निविष्टचेतसां निविष्टं प्रशान्तं चेतो येषां ते तेषां साम्येपि तुल्येपि वपुर्विशेषेषु स्वरूपातिशयेषु क्रियाः श्रेष्ठाः अधिगौरवा भवन्ति। अधिकगौरवसहिता भवन्तीत्यर्थः॥

अन्वयः → आतिथेयी पार्वती तं बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय। साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेषु अतिगौरवाः क्रियाः भवन्ति।

अनुवाद → आतिथ्य सत्कार करने वाली पार्वती ने उस (ब्रह्मचारी) की अत्यधिक आदर पूर्वक सत्कार सामग्री के साथ आगवानी की। समानता होने पर भी स्थिर चित्त वाले व्यक्तियों का विशिष्ट व्यक्तियों में अत्यधिक गौरव पूर्ण क्रिया (व्यवहार) होते हैं।

शब्दार्थ → **आतिथेयी पार्वती** = (अतिथिसपर्यापरायणा, गौरी, अतिथिसत्कारिणी) अतिथि सत्कार में कुशल पार्वती, **तं** = (ब्रह्मचारिणं) उस ब्रह्मचारी की ओर, **बहुमानपूर्वया** = (श्रद्धापुरस्सरया, अतिसम्मानपूर्वया, अत्यादरसंयुतेन) अत्यधिक आदर के साथ, **सपर्यया** = (अर्चया, पूजया) सत्कार सामग्री के साथ, **प्रत्युदियाय** = (प्रत्युज्जगाम) आगवानी की। **साम्ये अपि** = (तुल्ये अपि, समत्वेऽपि) (सर्वत्र) एक समान स्थिति में रहने वाले भी, **निविष्टचेतसां** = (स्थिरचित्तानां, स्थिरबुद्धीनाम्) दृढ़ चित्त वालों को भी, **वपुर्विशेषेषु** = (व्यक्तिविशेषेषु, विशिष्टव्यक्तिषु, शरीरविशेषेषु) व्यक्ति विशेष के प्रति, **अतिगौरवाः** = (अतिगौरवयुक्ता, अत्यन्तसम्मानयुक्ताः) अत्यन्त सम्मानपूर्ण, **क्रियाः** = (चेष्टाः) कार्य, **भवन्ति** = (जायन्ते, प्रवर्तन्ते) होते हैं।

भावार्थ → आतिथ्य सत्कार में कुशल पार्वती ने स्वयं उस ब्रह्मचारी का विविध सामग्रियों से आदरपूर्वक सत्कार किया। क्योंकि सहृदयता

का भाव रखने वाले उदारमना व्यक्तियों के लिए तपस्वी एवं ब्रह्मतेज से युक्त व्यक्ति के प्रति विशेष आदर का भाव होता है।

भावार्थः → अतिथिसत्कारपरायणा पार्वती अतिश्रद्धया अर्चनया तं ब्रह्मचारिणं सत्कृतवती यतोहि उदारचेतसां व्यक्तिविशेषेषु अतिगौरवोपेताः सत्कारविधयः भवन्ति। यथाहि गीतायां भगवता कृष्णेन तेजस्विषु भगवद्बुद्ध्युपपादिता -

'यद्यद्विभुतिमत्सत्त्वं श्रीमदुर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥' इति।

व्याकरणम् → **आतिथेयी** - अतिथिषु साध्वी, अतिथि+ढञ् प्रत्यय, पुनः एय् आदेश, स्त्रीत्व में ङीप् प्र॰वि॰, एक॰व॰। **बहुमानपूर्वया** - बहुश्चासौ मानः इति बहुमानः (कर्मधा॰ समास) सः पूर्वो यस्याः सा बहुमानपूर्वा (बहु॰ समास) तया - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **सपर्यया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **प्रत्युदियाय** - प्रति+उत् उपसर्ग पूर्वक √इण् गतौ धातु+लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **साम्ये** - (सम्+ष्यञ्) समस्य भावः साम्यं, तस्मिन् साम्ये, सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **निविष्टचेतसाम्** - (नि+√विश्+क्त) निविष्टं चेतः येषां ते (बहु॰ समास) तेषां ष॰वि॰, बहु॰व॰। **वपुर्विशेषेषु** - वपुषां विशेषाः वपुर्विशेषाः (ष॰ तत्पु॰ समास) तेषु सप्त॰वि॰, बहु॰व॰। **अतिगौरवाः** - (गुरु+अण्) गुरो भावः गौरवम्, अत्यन्तं गौरवं यासां ताः अतिगौरवाः (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **क्रियाः** - प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **भवन्ति** - √भू+शप्+तिप् लट् लकार, प्र॰पु॰, बहु॰व॰।

कोशः → **आतिथेयी** - क्रमादातिथ्यातिथेये अतिथ्येऽर्थेऽत्र साधुनि। **सपर्या** - पूजा नमस्यापचितिः सपर्याचार्हिणाः समाः। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्ध में तपस्विनी पार्वती के द्वारा अपने समान अवस्था वाले ब्रह्मचारी के आतिथ्य- सत्कार का समर्थन उत्तरार्ध के पद्यांश से किया गया है। यहाँ "सज्जन समान अवस्था वालों से मिलने पर भी परस्पर अत्यन्त आदर- सम्मान व्यक्त करते है" इस सामान्य कथन से पूर्वार्ध का विशेष कथन (पार्वती के द्वारा ब्रह्मचारी का आदर - सत्कार) का समर्थन किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

32

प्रसङ्ग → यथोचित सत्कार के उपरान्त ब्रह्मचारी पार्वती से कुशल प्रश्न पूछते हुए वार्ता का आरम्भ करते हैं -

विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।
उमां च पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः॥

(सञ्जी०) विधीति। **सः** ब्रह्मचारी **विधिना प्रयुक्ताम्** अनुष्ठितां **सत्क्रियां** पूजां **परिगृह्य** स्वीकृत्य **क्षणं परिश्रमं** विश्रामं **च विनीय नाम**। नामेत्यपरमार्थे। अथ **उमाम् ऋजुनैव** विलासरहितेनैव चक्षुषा **पश्यन् अनुज्झितक्रमः** अत्यक्तोचितपरिपाटीकः सन् वक्तुं **प्रचक्रमे** प्रारेभे॥

(शिशु०) विधीते। विधिप्रयुक्तां यथोक्तप्रकारेण कृतां सत्क्रियां पूजां प्रतिगृह्य स्वीकृत्य क्षणं परिश्रमं च विनीय स्फोटयित्वा ऋजुनैव रागारहितेन चक्षुषोमां पश्यन्न उज्झितोऽत्यक्तः क्रमः परिपाटी येन स विप्रो वक्तुं प्रचक्रमे प्रारेभेनामेति प्रसिद्धौ॥

अन्वयः → सः विधिप्रयुक्तां सत्क्रियां परिगृह्य क्षणं परिश्रमं च विनीय नाम, अथ उमाम् ऋजुना एव चक्षुषा पश्यन् अनुज्झितक्रमः सन् वक्तुं प्रचक्रमे।

अनुवाद → उस ब्रह्मचारी ने विधिपूर्वक किए गए सत्कार को ग्रहण करके और क्षणभर थकावट को दूर करके उमा को सरल दृष्टि से ही देखते हुए शिष्टाचार पूर्वक बोलना आरम्भ किया।

शब्दार्थ → **सः** = (ब्रह्मचारी, वर्णी) उस ब्रह्मचारी ने, **विधिप्रयुक्तां** = (विधिनाऽनुष्ठितां सत्क्रियां शास्त्रोक्तरीतिविहितां, शास्त्रोक्तविधिविहिताम्) विधिपूर्वक किये गए, **सत्क्रियां** = (सपर्यां, सत्कारं) आदर सत्कार को, **परिगृह्य =** (स्वीकृत्य, अङ्गीकृत्य) ग्रहण करके, **क्षणं** = (किञ्चित् कालं क्षणमात्रम्) थोड़ी देर, **परिश्रमं च** = (मार्गसञ्चलनजनितमायासम्, यात्राजनितक्लेशं, खेदं च) यात्रा के थकान को, **विनीय** = (दूरीकृत्य, अपनीय) दूर करके, **नाम** = झूठा ही (थकान को दूर करने का अभिनय करके), **अथ उमां** = (तदनन्तरं पार्वतीं, गौरीम्) पार्वती को, **ऋजुना** = (सरलेन, विलासरहितेन) सरल सीधी, **एव** = ही, **चक्षुषा** = (नेत्रेण) दृष्टि से, **पश्यन् =** (अवलोकयन्, विलोकयन्) देखते हुए, **अनुज्झितक्रमः सन्** = (अत्यक्तवचनक्रमः, कुशलप्रश्नारम्भेण तपश्चरणहेतुप्रश्नान्तं क्रमम् अपरित्यजन्) क्रम को बिना तोड़े उचित प्रकार से, **वक्तुं =** (भाषितुं, कथितुम्) कहना, **प्रचक्रमे** = (प्रारेभे, आरब्धवान्) प्रारम्भ किया।

भावार्थ → पार्वती के आतिथ्य- सत्कार को स्वीकार करने के उपरान्त थोड़ी देर विश्राम करके ब्रह्मचारी ने अपनी थकावट को दूर

किया। तदुपरान्त उसने सरल दृष्टि से पार्वती को देखा और मर्यादा पूर्वक वार्तालाप करना प्रारम्भ किया।

भावार्थः → स ब्रह्मचारी विधिपूर्वकं सपर्यां सत्कारं वा स्वीकृत्य क्षणमात्रम् यात्राजन्यश्रमं दूरीकृत्य निर्मलाभ्यां नेत्राभ्यां पार्वतीमुखमवलोकयन् क्रमशः वक्तुमारब्धवानिति भावः।

व्याकरणम् → **विधिप्रयुक्तां** - (प्र+√युज्+क्त+टाप्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰) विधिना प्रयुक्ता इति (तृ॰ तत्पु॰ समास) ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **सत्क्रियां** - 'आदरानादरयोः सदसती' के अनुसार सती चासौ क्रिया (कर्मधा॰ समास) **तां**- द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **परिगृह्य** - परिगृह्य का कर्म, परि उपसर्ग पूर्वक √ग्रह उपादाने+क्त्वा और उसके स्थान पर ल्यप्, अव्ययपद। **क्षणं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **परिश्रमं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विनीय** - वि उपसर्ग पूर्वक √णीञ् प्रापणे धातु+क्त्वा पुनः ल्यप् आदेश, अव्ययपद। **नाम** - अव्ययपद। **अथ** - अव्ययपद। **उमाम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **ऋजुना** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **चक्षुषा** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **पश्यन्** - √दृश् धातु पश्य आदेश+शतृ प्रत्यय - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अनुज्झितक्रमः** - न उज्झितः अनुज्झितः, सः क्रमः येन सः (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सन्** - √अस् धातु+शतृ प्रत्यय प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वक्तुं** - √वच् परिभाषणे+तुमुन् - अव्ययपद। **प्रचक्रमे** - प्र उपसर्ग √क्रमु पादविक्षेपे+लिट्लकार, 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' सूत्र से आत्मने॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **विधि** - विधिर्विधाने दैवेऽपि। **सत्** - सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत्। **क्रिया** - आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणम्। उपायः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रियाः। **ऋजु** - ऋजावजिह्मप्रगुणौ। **चक्षु** - लोचनं चक्षुरक्षिणी। इत्यमरकोशः।

33

प्रसङ्गः → ब्रह्मचारी तप के साधनों की सुलभता से सम्बन्धित प्रश्न पूछते हैं -

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्॥

(सञ्जी॰) अपीति। अत्रापिशब्दः प्रश्ने। क्रियार्थं होमादिकर्मानुष्ठानार्थम् समिधश्च कुशाश्च **समित्कुशम्**। "जातिरप्राणिनाम्" इति द्वन्द्वैकवद्भावः। **सुलभम् अपि** सुलभं कश्चित्। **जलानि ते** तव **स्नानविधिक्षमाणि** स्ना-

नक्रियायोग्यानि **अपि** कश्चित्। किञ्च **स्वशक्तया** निजसामर्थ्यानुसारेण **तपसि प्रवर्तसे अपि**। देहमपीडयित्वा तपश्चरसि कश्चिदित्यर्थः। युक्तं च नामैतत्। **खलु** यस्मात् **शरीरम् आद्यं धर्मसाधनम्**। धर्मस्तु कायेन वाचा बुद्ध्या धनादिना च बहुभिः साध्यते तेषु च वपुरेव मुख्यं साधनं सति देहे धर्मार्थकाममोक्षलक्षणाश्चतुर्वर्गाः साध्यन्ते। अतएव 'सततमात्मानमेव गोपयीत' इति श्रुतिः॥

(शिशु०) अयिक्रियार्थमिति। अयीति परिप्रश्ने। भो पार्वति! क्रियार्थं होमादिकर्मार्थे समित्कुशं समिधश्च समित्कुशं। "जातिरप्राणिनाम्" इत्येकवद्भावः। जलान्यपि ते तव स्नानविधौ योग्यानि। अयि स्वशक्तया स्वसामर्थ्येन तपसि प्रवर्तसे। देहमपीडयित्वा क्वचित्तपः कुरुषे इत्यर्थः। खलु यत् आद्यं प्रथमं धर्मसाधनं धर्मार्जनोपायः शरीरम्॥

अन्वयः → क्रियार्थं समित्कुशं सुलभम् अपि? जलानि ते स्नानविधिक्षमाणि अपि? स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे अपि? खलु शरीरम् आद्यं धर्मसाधनम् अस्ति।

अनुवाद → यज्ञ आदि कार्यों के लिए समिधा और कुशाएँ सुलभता से प्राप्त हो जाते हैं? स्नान आदि दैनिक कार्यों के योग्य जल हैं न? अपने सामर्थ्य के अनुसार ही तपस्या में प्रवृत्त होती हो? क्योंकि शरीर ही धर्म का पहला साधन है।

शब्दार्थ → **क्रियार्थं** = (होमयज्ञादिकर्मानुष्ठानार्थं, होमाद्यनुष्ठानाय) हवन यज्ञादि कार्यों के लिए, **समित्कुशं** = (इन्धनदर्भम्, काष्ठेन्धनं, काष्ठदर्भम्) समिधाएं और कुशा, **सुलभम्** = (सुखेन लब्धुं शक्यं सुप्राप्यं, सुखलभ्यं) सुगमता से प्राप्त होने वाले, **अपि** = (कच्चित्) तो हैं न? (प्रश्न पूछने के अर्थ में) **जलानि** = (वारीणि, अम्बूनि, सलिलानि) जलराशि, **ते** = (तव) तुम्हारे, **स्नानविधिक्षमाणि** = (मज्जनकर्मयोग्यानि, अवगाहनक्रियायोग्यानि) स्नानादि क्रियाओं के योग्य, **अपि** = (कच्चित्) तो हैं? **स्वशक्त्या** = (स्वसामर्थ्यानुसारेण, स्वशरीरबलानुसारेण) अपने सामर्थ्य के अनुकूल ही, **तपसि** = (तपः क्रियायां तपश्चरणे, तपोनियमेषु) तपस्या में, **प्रवर्तसे** = (संलग्ना, प्रवृत्ता भवसि) प्रवृत्त होती हो, **अपि** = (किम्, कच्चित्) क्या? **खलु** = (निश्चयरूपेण, यतः) निश्चित रूप से, **शरीरम्** = (वपुः, देहं, कायं) शरीर, **आद्यम्** = (प्रथमं) सर्वप्रथम, प्रमुख, **धर्मसाधनम्** = (धर्मकार्याणां कारकम् सुकृतोपकरणम्, पुण्योपकरणम्) धर्म सम्बन्धी कार्यों का साधन है।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पार्वती से कुशल- क्षेम पूछते हुए तपस्या से सम्बन्धित सामग्रियों की उपलब्धता के बारे में जानने के लिए प्रश्न कर रहा है। हवन के लिए समिधा, शुद्ध जल इत्यादि सरलता से उपलब्ध हैं कि नहीं? क्या आप शरीर के सामर्थ्य के अनुसार ही तप कर रही हैं? क्योंकि सभी प्रकार के तप शरीर से ही सम्भव हैं। अतः ब्रह्मचारी पार्वती को उपदेश देता है कि शरीर को स्वस्थ रखते हुए सामर्थ्य के अनुसार ही तप करना चाहिए। क्योंकि शरीर ही तप करने का प्रधान साधन है।

भावार्थः → हे देवि! अस्मिन् तपोवने अनुष्ठानयोग्यानि काष्ठदर्भादीनि सुलभानि वर्तन्ते किम्? आश्रमे स्नानादियोग्यानं स्वच्छं जलं वर्तते किम्? भवती स्वकीयं शरीरम् अपीडयन् स्वशक्त्यनुसारं तपः करोषि किम्? यतोहि धर्मसाधनेषु प्रधानं धर्मसाधनं शरीरम् एव अस्ति।

व्याकरणम् → **क्रियार्थम्** - क्रियाभ्यः इदं अथवा क्रिया अर्थः प्रयोजनं यस्य तत् (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **समित्कुशं** - समधिश्च कुशाश्च समित्कुशम् (द्वन्द्वसमास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सुलभम्** - सु+√लभ्+खल्, प्र॰वि॰, एक॰व॰, सुखेन लभ्यम्। **जलानि** - प्र॰वि॰, बहु॰व॰। स्नानविधिक्षमाणि - स्नानस्य विधिः तत्र क्षमाणि तानि (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **ते** - ष॰वि॰, एक॰व॰, अथवा च॰वि॰, एक॰व॰, पाणिनीय सूत्र 'तेमयावेकवचनस्य' से युष्मद् एवं अस्मद् शब्द रूप के चतर्थी एवं ष॰वि॰, के एक॰व॰ के स्थान पर क्रमशः 'ते' एवं 'मे' आदेश हो जाते हैं। **स्वशक्त्या** - स्वस्य शक्तिः इति स्वशक्तिः (ष॰ तत्पु॰ समास) /स्वा चासौ शक्तिश्च (कर्मधा॰ समास) तया तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तपसि** - सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **प्रवर्तसे** - प्र उपसर्ग √वृतु वर्त्तने धातु+लट् लकार, आत्मनेपद, म॰पु॰, एक॰व॰। **खलु** - अव्ययपद। **शरीरम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **आद्यम्** - (आदि+यत्) आदौ भवं, आदि-+यत्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **धर्मसाधनम्** - (√साध्+ल्युट्) धर्मस्य साधनम् (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कोशः → **समित्** - इध्ममेधः समित्स्त्रियाम्। **कुश** - अस्त्री कुशं कुशो दर्भः पवित्रम्। **जल** - सलिलं कमलं जलम्। **क्षमम्** - क्षमं शक्ते हिते त्रिषु। **अपि** - गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि। **शक्ति** - कासू-सामर्थ्ययोः शक्तिः। **खलु** - निषेधवाक्यालङ्कारजिज्ञासानुनये खलु।

34

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी तपोवन के वृक्ष- वनस्पतियों की

कुशलता के बारे में पूछ रहे हैं -

अपि त्वदावर्जितवारिसम्भृतं प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम्।
चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते तुलां यदारोहति दन्तवाससा॥

(सञ्जी०) अपीति। [**त्वदावर्जितवारिसंभृतं**] त्वयावर्जितेन सिक्तेन वारिणा सम्भृतं जनितम् **आसां वीरुधां** लतानां **प्रवालं** पल्लवम् **अनुबन्धि अपि** नुस्यूतं किम्। **यत्** प्रवालं चिरोज्झितश्चिरकालत्यक्तो लाक्षारागो येन तत्तथापि पाटलम्। स्वभावरक्तमित्यर्थः। तेन **चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते** तव **दन्तवाससा** अधरेण। 'ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी' इत्यमरः। **तुलां** साम्यम् **आरोहति।** गच्छतीत्यर्थः। अत्र तुलाशब्दस्य सादृश्यवाचित्वात्तद्योगेऽपि ''तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्'' इति न तृतीयाप्रतिषेधस्तत्र सूत्रे सदृशवाचिन एव ग्रहणादिति॥

(शिशु०) अयीति। अयि पार्वती! आसां पुरोवर्तिनीनां वीरुधां लतानां प्रवालं किसलयं त्वदावर्जितवारिसम्भवं त्वद्दत्ततोयोपचितमनुबन्धि संपन्नं यत्प्रवालं ते दन्तवाससाऽधरेण तुलां साम्यमारोहति प्राप्नोति। कीदृशेन? चिरोज्झितालक्तकपाटलेन चिरमुज्झितस्त्यक्तोऽलक्तको लाक्षारसो येन स चासौ पाटलश्च तेन।।

अन्वयः → त्वदावर्जितवारिसम्भृतम् आसां वीरुधां प्रवालम् अनुबन्धि अपि? यत् चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते दन्तवाससा तुलाम् आरोहति।

हिन्दी अर्थ → तुम्हारे द्वारा लाए गए जल से सींचे जाने पर इन लताओं में नव पल्लव प्रस्फुटित हो रहे हैं न? जो पत्ते बहुत दिनों से लाक्षारस लगाना त्याग देने पर भी स्वाभिवक रक्तवर्ण वाले तुम्हारे अधरोष्ठ से समानता को प्राप्त कर रहे हैं।

शब्दार्थ → **त्वदावर्जितवारिसम्भृतम्** = (त्वत्सिक्तजलोत्पन्नम् भवतीनीतजलसिक्तं, त्वदाहृतसलिलोत्पन्नम्) तुम्हारे द्वारा सींचे गये जल से, **आसाम्** = (पुरोवर्तिनीनाम् एतासाम्, पुरतोऽवलोक्यमानानाम्) इन, **वीरुधाम्** = (लतानाम्) लताओं में, **प्रवालम्** = (पल्लवं, किसलयम्) नये पत्ते, **अनुबन्धि** = (अनुस्यूतं, अविच्छेदोद्गमम्) निकल रहे हैं, **अपि** = (कच्चित्, किमु) क्या? **यत्** = (प्रवालम्, पल्लवं) जो पल्लव, **चिरोज्झितालक्तकपाटलेन** = (चिरकालत्यक्तलाक्षारसरक्तेन, चिरपरित्यक्तलाक्षारागसमरक्तश्वेतेन) चिरकाल से लाक्षारस न लगाने पर भी गुलाबी, **ते** = (तव) तुम्हारे, **दन्तवाससा** = (अधरोष्ठेन, ओष्ठेन) ओठों से, **तुलाम्** = (सादृश्यं) समानता, **आरोहति** = (प्राप्नोति, अधिगच्छति)

प्राप्त कर रहा है।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पार्वती से पूछ रहा है कि तुम्हारे द्वारा सिञ्चित एवं परिवर्धित लताओं और वृक्षों में नूतन पल्लव निकल रहे हैं? ब्रह्मचारी यहाँ नवपल्लव की लालिमा और कोमलता की तुलना पार्वती के होठों से करता है।

भावार्थः → अयि पार्वति! अस्मिन् आश्रमे त्वया पालिताः इमाः लताः निरन्तरं पल्लविताः भवन्ति किम्? यत् किसलयं बहुकालं परित्यक्तलाक्षाद्रवसदृशरक्तवर्णेन तवाधरोष्ठेन समतां बिभर्ति। अत्र पार्वत्याः अधरोष्ठयोः स्वाभाविकसौन्दर्यं व्यज्यते।

व्याकरणम् → **त्वदावर्जितवारिसम्भृतम्** - (आ+√वर्ज्+क्त; सम्भृतम् = सम्+√भृ+क्त) त्वया आवर्जितं (तृ० तत्पु० समास), त्वदावर्जितञ्च तत् वारि च त्वादावार्जितवारि (कर्मधा० समास) तेन सम्भृतं (तृ० तत्पु० समास) प्र०वि०, एक०व०। **आसाम्** - ष०वि०, बहु०व०। **वीरुधाम्** - ष०वि०, बहु०व०। **प्रवालम्** - प्र०वि०, एक०व०। **अनुबन्धि** - अनु+बन्ध+णिनि - प्र०वि०, एक०व०। **यत्** - प्र०वि०, एक०व०। **चिरोज्झितालक्तकपाटलेन** - (√उज्झ्+क्त) चिरं उज्झितः चिरोज्झितः सुप्सुपासमास,चिरोज्झितः अलक्तः येन तत् (बहु० समास) तच्च पाटलञ्च (कर्मधा० समास) तेन - ततीया एक०व०। **दन्तवाससा** - दन्तानां वस्ते आच्छादयति इति दन्तवासः (ष० तत्पु० समास) तेन तृ०वि०, एक०व०। **तुलाम्** - द्वि०वि०, एक०व०। **आरोहति** - (आ+√रुह्+लट् लकार, प्र०पु०, एक०व०) आ उपसर्ग √रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च+शप्+तिप्, लट् लकार, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **वारि** - आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि। **वीरुधां** - लता प्रतानिनी वीरुद्गुल्मिन्युलप इत्यपि। **अलक्तं** - लाक्षा राक्षा जतु क्लीबे यावोऽलक्तो द्रुमादयः। **पाटल** - श्वेतरक्तस्तु पाटलः। इत्यमरकोशः। **प्रवाल** - प्रवालोऽस्त्री किसलयं वीणादण्डे च विद्रुमे॥ इति मेदिनीकोशः॥

35

प्रसङ्गः → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी तपोवन में विचरण करने वाले हिरणों का कुशल- क्षेम पूछ रहे हैं -

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः करस्थदर्भप्रणयापहारिषु।
य उत्पलाक्षि प्रचलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते॥

(सञ्जी०) अपीति। [**करस्थदर्भप्रणयापहारिषु**] करस्थान्दर्भान्प्रणयेन स्नेहेनापहरन्तीति ते तथोक्तेषु। सापराधेष्विति भावः। 'करस्थदर्भप्रणयापरा-

धिषु' इति पाठे दर्भाणां प्रणयेन प्रार्थनयापराधिषु। **हरिणेषु** विषये **ते मनः प्रसन्नम् अपि** न क्षुभितं किम्? सापराधेष्वपि न कोपितव्यं तपस्विभिरिति भावः। हे **उत्पलाक्षि! ये** हरिणाः **प्रचलैः** चञ्चलैः **विलोचनैः** नेत्रैः **तवाक्षिसादृश्यं प्रयुञ्जते इव** अभिनयन्तीव। प्रसन्नत्वान्मृगनेत्राणि त्वन्नयनैनाभ्यां साम्यमुपयान्तीति भावः।'उत्पलक्षेपचलैः' इति पाठान्तरे उत्पलकम्पचलैः। भावानयने द्रव्यानयनमिति न्यायेन क्षिप्यमाणोत्पलचलैरित्यर्थः॥

(शिशु०) अयीति। अयि! हरिणेषु ते मनः प्रसन्नमनाविलं। कीदृशेषु करस्थेषु दर्भेषु कुशेषु यः प्रणयः प्रार्थना तेनापराधिषु ये हरिणाः। उत्पलाक्षेपचलैरुत्पलानामाक्षेपः प्रेरणं तद्वच्चलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसापत्न्यमिव स्पर्धामिव प्रयुञ्जते कुर्वन्तीव।

अन्वयः → करस्थदर्भप्रणयापहारिषु हरिणेषु ते मनः प्रसन्नम् अपि? हे उत्पलाक्षि! ये प्रचलैः विलोचनैः तव अक्षिसादृश्यं प्रयुञ्जते इव।

अनुवाद → हे कमलनयनी! जो अपनी चञ्चल आँखों से तुम्हारी आँखों की समता करने वाले है तथा तुम्हारे हाथ में लिए गए कुशों को प्रेमपूर्वक छीन लेते हैं उन हरिणों पर आपका मन प्रसन्न तो है न?

शब्दार्थ → **करस्थदर्भप्रणयापहारिषु** = (हस्तस्थिकुशस्नेहाऽपहरणकर्तृषु हस्तस्थितकुशप्रेमग्रहीतृषु, सस्नेहकरस्थितकुशापहरणशीलेषु) हाथ में लिये हुए कुशों को प्रेमपूर्वक छीन लेने वाले, **हरिणेषु** = (मृगेषु) हरिणों पर, **ते** = (तव) तुम्हारा, **मनः** = (चित्तं हृदयं) मन, **प्रसन्नम् अपि** = (न क्षुमितं किम्, सस्नेहं कच्चित्) प्रसन्न तो है? **उत्पलाक्षि** = (कमलनयने कुवलयाक्षि, हे कमललोचने,) हे कमलनयनी! **ये** = (मृगाः) जो हरिण, **प्रचलैः** = (चञ्चलैः) चञ्चल, **विलोचनैः** = (नयनैः, नेत्रैः) नेत्रों के द्वारा, **तव** = (त्वदीयम्) तुम्हारे, **अक्षिसादृश्यं** = (नेत्रतुल्यत्वं नेत्रसाम्यम्) नेत्रों की परिचालनादि क्रियाओं से समानता का, **इव** = मानों, **प्रयुञ्जते** = (अभिनयन्ति, अभिनयन्तीव) अभिनय/अनुकरण सा करती हैं।

भावार्थ → पार्वती के सुन्दर नेत्रों की तुलना हिरण की आँखों से करते हुए ब्रह्मचारी पार्वती से पूछता है कि इस तपोवन में अत्यन्त विश्वस्त होकर विचरण करने वाले ये हिरण जब तुम्हारे हाथों से कुशा को छीनकर खा जाते हैं तब तुम्हें इन हिरणों पर क्रोध तो नहीं आता है।

भावार्थः → हे कमलनयने! एते मृगाः प्रेम्णा तवा करस्थान् दर्भान् गृह्णन्ति। तान् मृगान् प्रति भवत्याः मनः प्रसन्नमस्ति किम्? यतोहि एते

हरिणाः चञ्चलैः स्वकीयैः नयनैः तव नेत्रयोः सादृश्यम् अभिनयन्ति।

व्याकरणम् → **करस्थदर्भप्रणयापहारिषु** - (कर+√स्था+क; **प्रणयः** = प्र+√णी अच्; **अपहारिषु** = अप+√हृ+णिनि समास, बहु०व०) करे तिष्ठन्तीति करस्थाः करस्थाश्च ते दर्भाश्च (कर्मधा० समास), तान् प्रणयेन अपहरन्तीति करस्थदर्भप्रणयापहारिणः, **तेषु** - सप्त०वि०, बहु०व०। **हरिणेषु** - सप्त०वि०, बहु०व०। **ते** - ष०वि०, एक०व०। **मनः** - प्र०वि०, एक०व०। **प्रसन्नम्** - (प्र+√सद्+क्त) प्र०वि०, एक०व०। **उत्पलाक्षि** - उत्पले इव अक्षिणी यस्याः सा (बहु० समास,तत्सम्बुद्धौ हे उत्पलाक्षि! सम्बो० एक०व०। **ये** - प्र०वि०, बहु०व०। **प्रचलैः** - तृ०वि०, बहु०व०। **विलोचनैः** - तृ०वि०, बहु०व०। **तव** - ष०वि०, एक०व० (युष्मद्)। **अक्षिसादृश्यं** - (सदृश+ष्यञ्) अक्ष्णोः सादृश्यम् (ष० तत्पु० समास), द्वि०वि०, एक०व०। **प्रयुञ्जते** - प्र उपसर्ग पूर्वक √युज्+लट् लकार, प्र०पु०, एक०व०। **इव** - अव्ययपद।

कोशः → **प्रसन्न** - प्रसन्नोऽच्छदः। **हरिण** - मृगे कुरङ्गवातायुहरिणाजिनयोनयः। **उत्पल** - अरविन्दं महोत्पलम्। **चल** - चलं लोलं चलाचलम्। **प्रणय** - प्रणयास्त्वमी। विस्रम्भ याच्या प्रेमाणः।

अलंकार → उत्प्रेक्षा

36

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी पार्वती के आचरण की प्रशंसा करते हुए मनोगत इच्छा को जानने के लिए प्रेमपूर्वक वचन कहता है -

यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां गतम्॥

(सञ्जी०) यदिति। **हे पार्वति!** **रूपं** सौम्याकृतिः **पापवृत्तये** पापाचरणाय न भवती। **इति यदुच्यते**। लोकैरिति शेषः। **तद्वचः** न व्यभिचरति न स्खलतीति **अव्यभिचारि** सत्यम्। 'यत्राकृतिस्तत्र गुणाः' 'न सुरूपाः पापसमाचारा भवन्ति' इत्यादयो लोकवादा न विसंवादमासादयन्तीत्यर्थः। किमिति ज्ञायते - **तथाहि**। हे **उदारदर्शने** आयताक्षि। सुरूपे इत्यर्थः। अथवोन्नतज्ञाने। विवेकवतीत्यर्थः। **ते** तव **शीलं** सद्वृत्तम्। 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः। **तपस्विनाम् अपि** उपदिश्यते अनेनेत्युपदेशः प्रवर्तकः प्रमाणं तत्ताम् **उपदेशतां गतं** प्राप्तम्। मुनयोऽपि त्वां वीक्ष्य स्ववृत्तौ प्रवर्तन्ते इति भावः॥

(शिशु०) यदुच्यतेति। भो गौरि! यदिदं वच उच्यते। रूपं पापवृत्तये न

पापव्यापाराय न। तद्वचोऽव्यभिचारि सत्यम्। तथा चोक्तं। यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्तीति। तथाहि। हे उदारदर्शने! उदारे विस्तृते दर्शने नयने यस्यास्तत्संबुद्धौ। ते शीलं वृत्तं तपस्विनामपि मुनीनामपि उपदेशतां गतं प्राप्त। मुनयोऽपि त्वां वीक्ष्य सद्वृत्तौ प्रवर्तन्ते इत्यर्थः॥

अन्वयः → पार्वति! 'रूपं पापवृत्तये न' इति यत् उच्यते, तत् वचः अव्यभिचारि। तथाहि हे उदारदर्शने! ते शीलं तपस्विनाम् अपि उपदेशतां गतम्।

अनुवाद → हे पार्वती! 'सौन्दर्य पाप- आचरण के लिए नहीं होता है' यह जो कहा जाता है, वह वचन सत्य है। क्योंकि हे सुन्दर दिखने वाली! तुम्हारा शील (सद्व्यवहार) तपस्वयों के लिए भी उपदेश देने योग्य हो गया है।

शब्दार्थ → **पार्वति** = (हे गौरि) हे पार्वति, **रूपं** = (वर्णसौन्दर्यम्) सौम्याकृतिः, सौन्दर्यं, **पापवृतये =** (पापाचरणाय, किल्बिषाचरणाय) पाप के आचरण के लिए, **न =** नहीं होता, **इति** = (एवम्, एतादृक्) यह, **यद्** = (वचः कथनम्) जो, **उच्यते** = (कथ्यते) कहा जाता है, **तद् वचः** = (तत्कथनम्, तद्वचनम्) वह कथन, **अव्यभिचारि** = (सत्यमेव अस्ति, मृषा न) सत्य है, **तथाहि** = (यतः)क्योंकि, **उदारदर्शने =** (सौम्यदर्शने, हे विशाललोचने) हे सुन्दर/उदात्त रूप वाली, **ते** = (तव) आपका, **शीलं =** (सद्वृत्तम्, सदाचरणम्, स्वभावः) सदाचरण, **तपस्विनाम्** = (तापसानां, मुनीनाम्) तपस्वियों के लिए भी, **ही** = (अपि) भी, **उपदेशतां** = (प्रवर्तकप्रमाणतां, उपदेशप्रदतां, उपदेशरूपत्वम्) उपदेश देने वाला, **गतम्** = (प्राप्तम्) हो गया।

भावार्थ → ब्रह्मचारी शास्त्रीय कथन को उद्धृत करते हुए कहता है कि 'रूप पापाचरण के लिए नहीं होता है' यह सत्य ही है। क्योंकि सुन्दर दिखने वाली हे पावती तुम्हारा मन भी सुन्दर और निष्कपट है। तुम्हारा सदाचरण बड़े- बड़े ऋषियों और मुनियों को भी धर्मपालन विषयक उपदेश देने वाला है।

भावार्थः → हे पार्वती! 'सौन्दर्यं पापाचाराणाय न भवति' इति सामुद्रिकसारदर्शिभिः शरीराकृति विशेषज्ञैः दैवज्ञैः विद्वद्भिर्यदुच्यते तत्सत्यमेवास्ति 'रूपं शीलानुसारि' इति वचनानुसारं भवत्याः शीलं तापसानामपि उपादिश्यते एवं कर्तव्यमित्येवम् अनुकरणीयतां गतमिति भावः।

व्याकरणम् → **पार्वति!** - सम्बो॰ प्र॰वि॰, एक॰व॰। **रूपं** - प्र॰वि॰,

एक॰व॰। **पापवृत्तये** - पापस्य वृत्तिः (ष॰ तत्पु॰ समास) तस्यै - च॰वि॰, एक॰व॰। **इति** - अव्ययपद। **यत्** - सर्वनाम प्र॰वि॰, एक॰व॰। **उच्यते** - (√ब्रू लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰) √वच् परिभाषणे+यक्+लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **तत्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वचः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अव्यभिचारि** - न व्यभिचारि इति (नञ् तत्पु॰ समास) अव्यभिचारि, ताच्छील्य भाव में णिनि प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तथाहि** - अव्ययपद। **उदारदर्शने** - (√दृश्+ल्युट्) उदारं दर्शनं यस्याः सा (बहु॰ समास), सम्बो॰ एक॰व॰। **शीलं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपस्विनाम्** - (तपस्+विनि ष॰वि॰, बहु॰व॰) ष॰वि॰, बहु॰व॰। **ते** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **उपदेशतां** - (उप+√दिश+घञ्+तल, द्वि॰वि॰, एक॰व॰) उपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेशः (करण में घञ्), उपदेशस्य भावः उपदेशता, **ताम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰।

कोशः → **वचः** - भाषितं वचनं वचः। **पाप** - पापं किल्विषकल्मषम्। **शीलं** - शीलं स्वभावे सद्वृत्ते। **उदार** - उदारो दातृमहतोः। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → इस पद्य में सामान्य कथन "सौन्दर्य पाप करने के लिए नहीं होता है" का विशेष कथन "क्योंकि हे रूपवती पार्वती! तुम्हारा शील तो तपस्वियों को भी उपदेश देने में समर्थ हो गया है" से समर्थन किया गया है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

37

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी पार्वती के पवित्र आचरण और कुल की पवित्रता का वर्णन कर रहा है -

विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिस्तथा न गाङ्गैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः॥

(सञ्जी॰) विकीर्णेति। **एष महीधरः** हिमवान्। [**विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः**]सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः।"दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इति समासः। विकीर्णैः पर्यस्तैः सप्तर्षीणां सम्बन्धिभिर्बलिभिः पुष्पोपहारैः प्रहसन्ति ये तथोक्तैः **दिवः** अन्तरिक्षात् **च्युतैः गाङ्गैः सलिलैः तथा न पावितः**। **अनाविलैः** अकलुषैः **त्वदीयैः चरितैः यथा सान्वयः** सपुत्रपौत्रः **पावितः** पवित्रीकृतः॥

(शिशु॰) विकीर्णेति। भो पार्वति! यथाऽनाविलैर्निर्मलैस्त्वदीयैस्तव संबन्धिभिश्चरितैः सान्वयः सपुत्रपौत्र एष महीधरो हिमाचलः पावितः पवित्रीकृतः। तथा दिवः स्वर्गाच्च्युतैः पतिगैर्गाङ्गैः सलिलैर्न। किंभूतैः सलिलैः। विकीर्णो विक्षिप्तः सप्तर्षिभिर्यो बलिः पूजा तेन प्रहासिभिः सस्मितैः॥

अन्वयः → एष महीधरः विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः दिवः च्युतैः गाङ्गैः सलिलैः तथा न पावितः, अनाविलैः त्वदीयैः चरितैः यथा सान्वयः पावितः।

अनुवाद → यह पर्वत (हिमालय) सप्तर्षियों के द्वारा (पूजा के लिए) अर्पित फुलों से तथा स्वर्ग से गिरे हुए गङ्गाजल से भी उतना पवित्र नहीं हुआ है जितना तुम्हारे निष्कलङ्क चरित्र से सपरिवार पवित्र हो गया है।

शब्दार्थ → **एषः** = यह, **महीधरः** = (हिमालयपर्वतः)हिमालय पर्वत, **विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः =** (सप्तर्षिप्रदत्तपुष्पोपहारस-हासैः, प्रक्षिप्तसप्तर्षिकुसुमोपहारहासैः)सप्तर्षियों के द्वारा पूजा में इधर उधर बिखेरे गये पूजा के पुष्प रूपी हासों के द्वारा, **दिवः** = (स्वर्गात् आकाशात्) स्वर्ग से, **च्युतैः =** (पतितैः) गिरे हुए, **गाङ्गैः** = (गङ्गायाः, सुरापगासम्बन्धिभिः) गङ्गा के, **सलिलैः** = (जलैः, अम्बुभिः) जलों से, **तथा =** (तेन प्रकारेण)उतना, **न पावितः =** (पवित्रीकृतः, न पवित्रीभूतः) पवित्र नहीं हुआ, **यथा =** (येन प्रकारेण)जितना, **त्वदीयैः** = (त्वत्सम्ब-न्धिभिः भवदीयैः, तव)तुम्हारे, **अनाविलैः** = (पवित्रैः दुराचारलेशरहि-तैः, शुचिभिः, निष्पापैः) निष्कलङ्क, मालिन्य/कालुष्य/पाप रहित, **एषः** = पुरोवर्ती, **चरितैः** = (आचरणैः, चरित्रैः)आचरणों से, **सान्वयः =** (सकुलः, पुत्रपौत्रादिवंशपम्परासहितः) सम्पूर्ण कुल सहित, **पावितः** = (पवित्रीकृतः इति शेषः)पवित्र कर दिया गया।

भावार्थ → सप्तर्षियों (मरीच, अङ्गीरस, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ) द्वारा प्रतिदिन अर्पित किए जाने वाले पुष्पों से हिमालय पवित्र होता है। सर्वप्रथम हिमालय पर भी आकाश से गङ्गा अवतरित हुई थी जिससे यह हिमालय पवित्र हो गया है। यहाँ हिमालय की पवित्रता का वर्णन करता हुआ ब्रह्मचारी पुनः कहता है कि हे पार्वती! सप्तर्षियों द्वारा अर्पित पुष्प और गङ्गाजल से भी यह हिमालय उतना पवित्र नहीं हुआ है जितना तुम्हारे तप से। तुमने तो अपने तप से हिमालय को सम्पूर्ण वंश के साथ और अधिक पवित्र कर दिया है।

भावार्थः → एषः हिमालयः सप्तर्षिपूजापुष्पाधिकस्वच्छैः अपि गङ्गा-जलैः तथा न पूतो जातः, यथा कल्मषरहितैः त्वदीयैः चरित्रैः कुलसहितः पवित्रः जातः।

व्याकरणम् → **एष** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **महीधरः** - मह्याः धरः (ष॰ तत्पु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः**

- (वि+√कृ+क्त) सप्त च ते ऋषयश्च (द्विगुसमास) सप्तर्षीणां बलयः (ष॰ तत्पु॰ समास) 'विकीर्णाश्च' सप्तर्षिबलयश्च (कर्मधा॰ समास), विकीर्णसप्तर्षिबलिभिः प्रहस्तीति तानि विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासीनि, तैः - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **दिवः** - पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **च्युतैः** - (√च्यु+-क्त) तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **गाङ्गैः** - (गङ्गा+अण्,) तृ॰वि॰, बहु॰व॰, गङ्गायाः इमानि गाङ्गानि, तैः 'इदम्' के अर्थ → में अण्। **सलिलैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **तथा** - अव्ययपद। **पावितः** - णिजन्त √पूङ् पवने+इट्+क्त, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अनाविलैः** - न आविलानि अनाविलानि। (नञ्तत्पुरुष), तैः, तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **चरितैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **यथा** - अव्ययपद। **सान्वयः** - अन्वयेन सह वर्तते इति (सहपूर्वबहु॰ समास) तृ॰वि॰, बहु॰व॰, **त्वदीयैः** = युष्मद्+छ, तृ॰वि॰, बहु॰व॰।

कोशः → **बलि** - करोपहारयोरस्त्री बलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रियाम्। **च्युत** - स्रस्तं ध्वस्तं भ्रष्टं स्कन्नं पन्नं च्युतं गलितम्। **दिव** - द्यौ दिवौ द्वे स्त्रियामभ्रम्। **आविल** - कलुषोऽनच्छ आविलः। **अन्वयः** - सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → इस पद्य में पार्वती का पवित्र आचरण 'उपमेय' और स्वर्ग से च्युत गंगाजल 'उपमान' है। यहाँ उपमेय (पार्वती का पवित्र आचरण) को उपमान (गंगाजल) की अपेक्षा अधिक पवित्र बताया गया है। अतः यहाँ 'व्यतिरेक' अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

38

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी त्रिवर्ग में धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर रहा है -

अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते॥

(सञ्जी॰) अनेनेति। हे **भाविनि** प्रशस्ताभिप्राये! **अनेन** कारणेन **धर्मः सविशेषं** सातिशयम् **अद्य मे**। [**त्रिवर्गसारः**] त्रयाणां धर्मकामार्थानां वर्गस्त्रिवर्गः। "त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समीक्षकैः" इत्यमरः। तत्र सारः श्रेष्ठः **प्रतिभाति**। **यत्** यस्मात्कारणात् [**मनोनिर्विषयार्थकामया**] मनसो निर्विषयावर्थकामौ यस्यास्तया **त्वया एकः** धर्म **एव प्रतिगृह्य** स्वीकृत्य **सेव्यते**। यत्त्वयार्थकामौ विहाय धर्म एवावलम्बितः। अतः सर्वेषां नः स श्रेयानिति प्रतिपद्य इत्यर्थः॥

(शिशु॰) अनेनेति। भो भामिनि। प्रशस्ताभिप्राये अनेन चरित्रेणाद्य प्राक्

श्रुतोपि त्रिवर्गसारस्त्रिवर्गस्य धर्मार्थकामलक्षणस्य मध्ये सारः श्रेष्ठो मे मम स धर्मः सविशेषं विशिष्टं यथा स्यात्तथा प्रतिभाति। यत् यतो मनो निर्विषयार्थकामया मनसि निर्विषयौ निराश्रयावर्थकामौ यस्यास्तया। त्वया एक एव धर्मः प्रतिगृह्य स्वीकृत्य सेव्यते। एतद्गजनिमीलकयैव तस्यां धर्मोत्कर्षं सूचितवान्॥

अन्वयः → हे भाविनि! अनेन धर्मः सविशेषम् अद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति यत् मनोर्निविषयार्थकामया त्वया एकः धर्म एव प्रतिगृह्य सेव्यते।

अनुवाद → हे सद्भाववती! इस कारण धर्म विशेष रूप से आज मुझे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) में श्रेष्ठ प्रतीत हो रहा है। क्योंकि तुम मन को अर्थ और काम से हटाकर एकमात्र धर्म का ही पालन कर रही हो।

शब्दार्थ → **भाविनि** = (हे उदारशीले, प्रशस्ताभिप्राये!, हे उदारहृदये) हे उत्कृष्ट आचरण वाली!, **अनेन** = (एतेन कारणेन) इस कारण से, **धर्मः** = (पुण्यं) धर्म, **सविशेषम्** = (सातिशयम्)विशेष रूप से, **अद्य** = (अस्मिन्नह्नि, अस्मिन् दिने) आज, **मे** = (मम)मुझे, **त्रिवर्गसारः** = (अर्थकामा श्रेष्ठः, वर्गत्रये श्रेष्ठः)धर्म, अर्थ और काम - इन तीन पुरुषार्थों में श्रेष्ठ, **प्रतिभाति** = (प्रतीयते, प्रतिस्फुरति) जान पड़ता है, **यत्** = (यतः, यस्मात् कारणात्) क्योंकि जो, **मनोनिर्विषयार्थकामया** = (अर्थकामपराङ्मुखचित्तया, अर्थकामविमुखचित्तया) अर्थ और काम से मन को रहित कर देने वाली, **त्वया** = (भवत्या) तुम्हारे द्वारा, **एकः** = (केवलम्, एकाकी) एकमात्र, **धर्मः एव** = (सुकृतमेव) धर्म ही, **प्रतिगृह्य** = (स्वीकृत्य, अङ्गीकृत्य) स्वीकार करके, **सेव्यते** = (भज्यते, अनुष्ठीयते, उपास्यते) पालन किया जा रहा है।

भावार्थ → अनेक प्रकार से पार्वती के सदाचरण, पवित्र अनुष्ठान और तप की प्रशंसा करते हुए ब्रह्मचारी कहता है कि हे पार्वती! मनुष्यों के द्वारा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) ही सेवनीय है, तथापि मुझे ऐसा लगता है कि इस त्रिवर्ग में धर्म ही विशिष्ट एवं श्रेष्ठ है। क्योंकि अल्पवयस्का होने पर भी तुम अर्थ और काम से रहित होकर सिर्फ धर्म का पालन कर रही हो।

भावार्थः → हे उत्तमाभिप्रायवति! यस्मात् कारणात्त्वया मनसा अर्थकामौ परित्यज्य जनकगृहसुलभान् यौवनोचितान् कामान् अर्थाञ्चानादृत्य केवलं धर्मम् एव सेव्यते। अतएव अनुभवामि यत् धर्मार्थकामानां त्रयानां मध्ये धर्मस्यैव प्रधानता अस्ति।

व्याकरणम् → **भाविनि** - प्रशस्तः भावः यस्याः सा भाविनी, भाव+इनि+ङीप् सम्बो० का एक०व०। **अनेन** - तृ०वि०, एक०व०, **अद्य** - अव्ययपद, **धर्मः** - प्र०वि०, एक०व०। **सविशेषम्** - (क्रिया- विशेषण, प्र०वि०, एक०व०) विशेषेण सह इति सविशेषम् (तृ० तत्पु० समास)। **मे** - ष०वि०, एक०व०। **त्रिवर्गसारः** - त्रयाणां वर्गः (ष० तत्पु० समास) त्रिवर्गः, त्रिवर्गे सारः (सप्त० तत्पु० समास) प्र०वि०, एक०व०। **प्रतिभाति** - प्रति उपसर्ग √भा धातु+लट् लकार, प्र०पु०, एक०व०। **यत्** - प्र०वि०, एक०व०। **मनोनिर्विषयार्थकामया** - अर्थश्च कामश्च - अर्थकामौ (द्वन्द्व), मनसः निर्विषयौ मनोनिर्विषयौ अर्थकामौ यस्याः सा (बहु० समास), तया - तृ०वि०, एक०व०। **त्वया** - तृ०वि०, एक०व०। **एकः** - प्र०वि०, एक०व०। **धर्म** - प्र०वि०, एक०व०। **एव** - अव्ययपद। **प्रतिगृह्य** - प्रति उपसर्ग पूर्वक √ग्रह उपादाने+क्त्वा एवं उसका ल्यप् होकर - अव्ययपद। **सेव्यते** - √सेव् कर्मणि, लट् लकार, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **धर्म** - धर्माः पुण्ययमन्यायविचाराचारसोमपाः। स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः। **अद्य** - अद्याह्नयथ पूर्वेऽह्नोत्यादौ पूर्वोत्तरा परात्। **त्रिवर्ग** - त्रिवर्गो धर्मकामार्थौ। **सारः** - सारो बले स्थिरांशे च न्याय्ये क्लीबं वरे त्रिषु। इत्यमरकोशः।

39

प्रसङ्ग → प्रस्तुत पद्य में ब्रह्मचारी पार्वती की तपस्या का प्रयोजन जानने का उपक्रम कर रहा है -

प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि।
यतः सतां संगतगात्रि संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते॥

(सञ्जी०) प्रयुक्तेति। **आत्मना** त्वया प्रयुक्तः कृतः सत्कारविशेषः पूजातिशयो यस्य तं [**प्रयुक्तसत्कारविशेषं**] **मां परम्** अन्यं **संप्रतिपत्तुम्** वगन्तुं **न अर्हसि** हे सन्नतनगात्रि सन्नताङ्गि! अङ्गगात्रकण्ठेभ्यः इति वक्तव्यान्ङीप्। **यतः** कारणान्मनस ईषिभिः **मनीषिभिः** विद्वद्भिः शकन्ध्वादित्वात्साधुः। **सतां सङ्गतं** सख्यं सप्तभिः पदैरापद्यत इति **साप्तपदीनं** सप्तपदोच्चारणसाध्यम् **उच्यते**। तच्चावयोस्त्वत्कृतसत्कारप्रयोगादेव सिद्धमित्यर्थः। ''साप्तपदीनं सख्यम्'' इति निपातनात्साधु॥

(शिशु०) प्रयुक्तेति। इदानीं तन्मनोरथं जिज्ञासुः पृच्छति - भो सन्नतगात्रि! मां परमुदासीनं सम्प्रतिपत्तुं ज्ञातुं नार्हसि। कीदृशम्? आत्मना स्वयमेव प्रयुक्तसत्कारविशेषः प्रयुक्तः कृतः सत्कारविशेषः पूजातिशयो यस्य तम्।

यतः सतां साधूनां मनीषिभिर्बुधैः साप्तपदीनं संगतमुच्यते। सप्तभिः पदैरवाप्यत इति वाक्यं "साप्तपदीनं सख्यम्" इति मित्रविषये निपातनम्। येन सह सप्तपदानि वचनान्युच्चारितानि स सखेत्यर्थः। तदावयोर्वाग्द्राघीयं जातमित्यर्थः॥

अन्वयः → हे शोभनगात्रि! त्वम् विशेषरूपेण मम सत्कारं कृतवती। भवत्याः सकाशे चिरकालं वार्तालापं कृतवान् अतएव आवयोः मध्ये मैत्रीसम्बन्धः स्थापितः। यतोहि मनीषिभिः सतां संगतं साप्तपदीनम् उच्यते।

अनुवाद → स्वयं ही तुम्हारे द्वारा किए गए विशिष्ट सत्कार वाला मुझको तुम पराया नहीं समझ सकते हो। हे सुन्दर अङ्गों वाली! विद्वज्जन कहते हैं कि सात पद (कदम) साथ चलने से अथवा सात पद (शब्द) परस्पर बोल लेने से ही सज्जनों में मित्रता स्थापित हो जाती है।

शब्दार्थ → **आत्मना** = (स्वेन, स्वयमेव प्रकरणानुरोधात् त्वया) स्वयं तुम्हारे द्वारा ही, **प्रयुक्तसत्कारम्** = (विहितस्वागतातिशयं, कृतपूजातिशयं, कृतादरातिशयम्) विशेष सत्कार किए गए, **मां** = (ब्रह्मचारिणम्) मुझे, **परम्** = (अनात्मीयं, अन्यम्) पराया, दूसरा, **सम्प्रतिपत्तुम्** = (ज्ञातुं) समझने के लिए, **न अर्हसि** = (न समर्था असि, न योग्यासि) तुम समर्थ नहीं हो (मुझे तुम पराया नहीं मान सकती हो), **सन्नतगात्रि** = (हे शोभनाङ्गि, हे सुन्दराङ्गि) हे उन्नत/सुन्दर अङ्गों वाली पार्वती!, **यतः** = (यस्मात् कारणात्)क्योंकि, **मनीषिभिः** = (विद्वद्भिः)विद्वानों के द्वारा, **सतां** = (सज्जनानां) सज्जनों की, **सङ्गतम्** = (मैत्रीं, सख्यं) मित्रता, **साप्तपदीनम्** = (सप्तपदसाध्यम्, सप्तपदोच्चरणसाध्यं, सप्तपदोक्तिसाध्यम्) सात पद (कदम) एकसाथ चलने अथवा सात पद (शब्द) परस्पर बोलने भर से, **उच्यते** = (कथ्यते) कही जाती है।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पार्वती को विश्वास दिलाना चाहता है कि मैं अब आपके लिए अपरिचित नहीं रह गया हूँ। आपके द्वारा पर्याप्त सत्कार किए जाने के कारण अब मैं तुम्हारा मित्र बन गया हूँ। क्योंकि हे पार्वती! विद्वानों का कथन है कि यदि सज्जन सात पद (पग) साथ चलें अथवा सात पद (शब्द) वार्तालाप कर लें तो उन दोनों में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

भावार्थः → हे शोभनशरीरे! सज्जनानां सख्यं सङ्गमात्रादेवोपजायते, तच्च त्वत्कृतसत्कारविशेषात् जातमेव। अतोऽहं तव सत्कारविशेषात् त्वदीयः एव जातोऽस्मि मामनात्मीयं माऽवगच्छेति भावः।

व्याकरणम् → **आत्मना** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **प्रयुक्तसत्कारविशेषं** - (प्र+√युज्+क्त) सत्कारस्य विशेषः, प्रयुक्तः सत्कारविशेषः यस्य यस्मै वा (बहु॰ समास) सः, तम्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **मां** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **परं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **सम्प्रतिपत्तुं** - सम् प्रति उपसर्ग पूर्वक √पद्+तुमुन्, अव्ययपद। **अर्हसि** - √अर्ह+लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **सन्नतगात्रि** - सम्यक् नतं सन्नतं (गति समास), सन्नतं गात्रं यस्याः सा सन्नतगात्री (बहु॰ समास), सम्बो॰ एक॰व॰। **यतः** - अव्ययपद। **मनीषिभिः** - (मनीषा+इनि, तृ॰वि॰, बहु॰व॰) मनसः ईषिणः इति मनीषिणः (ष॰ तत्पु॰ समास) तैः। **सताम्** - ष॰वि॰, बहु॰व॰। **संगतम्** - सम्+√गम्+क्त, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **साप्तपदीनम्** - सप्तभिः पदैरवाप्यते इति, 'साप्तपदीनं सख्यम्' इस पाणिनीय सूत्र से निपातन द्वारा साधुत्व है - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **उच्यते** - (वच्+यक्) लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **पर** - दूरानात्मोत्तमाः पराः। **मनीषी** - धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः। **साप्तपदीनं** - सख्यं साप्तपदीनं स्यात्।

अलङ्कार → "तुम मुझे पराया मत समझो" ब्रह्मचारी के इस विशेष कथन का 'सज्जनों' की मैत्री सात पदों (शब्दों) के वार्तालाप से हो जाती है। इस सामान्य कथन द्वारा समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

40

प्रसङ्ग → प्रस्तुत पद्य में वाक्चतुर ब्रह्मचारी वार्तालाप के कुशल विन्यास में स्वयं को गौरी का मित्र बताते हुए अपनी जिज्ञासा की पूर्ति हेतु पार्वती से प्रश्न कर रहा है -

अतोऽत्र किञ्चिद्भवतीं बहुक्षमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि॥

(सञ्जी॰) अत इति। हे **तपोधने**। **अतः** सख्याद्धेतोरत्र प्रस्तावे **बहुक्षमां** बहूक्तिसहाम्। यद्वा क्षमावतीम्। **भवतीं** त्वां **द्विजातिभावाद्** ब्राह्मणत्वाद् **उपपन्नचापलः** सुलभधाष्टर्यः **अयं जनः**। स्वयमित्यर्थः। किञ्चित्प्रष्टुं मनो यस्य स **किञ्चित्प्रष्टुमनाः** प्रष्टुकामः। "तुम्काममनसोरपि" इति मकारलोपः। रहसि भावं **रहस्यं** गोप्यं **न चेत्प्रतिवक्तुमर्हसि**॥

(शिशु॰) अत इति। हे तपोधने! 'तप एव धनं यस्यास्तत्सम्बुद्धौ। अद्यातः सखिभावबहुक्षमां भवतीं किञ्चिदयं मल्लक्षणो जनः प्रष्टुमनाः प्रष्टुं मनो यस्य तादृशः। कीदृशोऽयं? द्विजातिभावात् ब्राह्मण्यादुपपन्नं प्राप्तं चापलं

धाष्टर्यं येन सः। चेद्यदि रहस्यं गोप्यं प्रतिगोप्तुं नार्हसि। यदि रहस्यं वक्षि तदा पृच्छामीत्यर्थः। चापलेति युवादिपाठादण्॥

अन्वयः → हे तपोधने! अतः अत्र बहुक्षमां भवतीं द्विजातिभावात् उपपन्नचापलः अयं जनः त्वां किञ्चित् प्रष्टुमनाः अस्ति। यदि रहस्यं न चेत् प्रतिवक्तुम् अर्हसि।

अनुवाद → हे तपस्विनी! इसलिए (मित्रता हो जाने के कारण) इस विषय में अतीव क्षमाशील आपसे यहाँ ब्राह्मणगत स्वाभाविक चञ्जलता उत्पन्न होने के कारण यह व्यक्ति कुछ पूछने का इच्छुक है। यदि कुछ गोपनीय न हो तो आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सकती हैं।

शब्दार्थ → **तपोधने** = (हे तपस्विनि) हे तपस्विनी, **अतः** = (अनेनैव कारणेन, एतस्माद् सख्यभावात्, अस्मात्कारणात्) इसलिए, **बहुक्षमाम्** = (बहूक्तिसहाम्, अतीवक्षमावतीं) अत्यन्त क्षमाशीला, **भवतीं** = (त्वाम्) आपको, **अत्र** = (अस्मिन् विषये) यहाँ, **द्विजातिभावात्** = (ब्राह्मणवर्णोत्पन्नत्वात्, ब्राह्मणस्वभावात्) ब्राह्मणकुल में जन्म लेने के कारण, **उपपन्नचापलः** = (योग्यधाष्टर्यः, प्राप्तधाष्ट्र्यः सुलभधाष्ट्र्यः) स्वाभाविक चञ्चलता से युक्त, **अयं** = (एषः, अहम्)यह, **जनः** = (मनुष्यः, नरः) व्यक्ति मैं, **किञ्चित्** = (किमपि) कुछ, **प्रष्टुमनाः** = (जिज्ञासुः, प्रष्टुकामः अस्मि) पूछने का इच्छुक हूँ, **रहस्यं** = (गोप्यं, गोपनीयं) गोपनीय, **न** = नहीं, **चेत्** = (यदि)हो तो, **प्रतिवक्तुम् अर्हसि** = (कथयितुम् योग्यासि, प्रत्युत्तरं दातुं शक्नोसि) प्रत्युत्तर दे सकती हो।

भावार्थः → हे तपोव्रतवति! अस्मात् कारणाद् अत्र बहूक्तिसहां त्वां ब्राह्मणस्वभावात् प्राप्तचञ्चलस्वभावोऽहं त्वां किमपि प्रष्टुमिच्छामि। यदि किमपि गोप्यं न स्यात् तर्हि भवती प्रत्युत्तरं दातुं योग्यासि।

व्याकरणम् → **तपोधने** - तप एव धनं यस्याः सा तपोधना (बहु॰ समास) सम्बो॰ एक॰व॰। **अतः, अत्र** - अव्ययपद, **बहुक्षमाम्** = बहून् क्षमते अथवा बह्वयः क्षमाः यस्याः सा बहुक्षमा (बहु॰ समास) ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **भवतीम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **द्विजातिभावात्** - द्वे जाती जन्मनी यस्य सः द्विजातिः (बहु॰ समास) द्विजाते वः (ष॰ तत्पु॰ समास), तस्मात् पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **उपपन्नचापलः** (उप+√पद्+क्त; चापलः = चपल+अण्) चपलस्य भावः कर्म वा चापलम्, उपपन्नं चापलं यस्य सः (बहु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अयं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **जनः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **किञ्चित्** - अव्ययपद। **प्रष्टुमनाः** - प्रष्टुं मनो

यस्य सः (बहु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अस्ति** - √अस् भुवि+लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **रहस्यम्** - रहस्+यत्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। (तत्र भवः इति यत्) रहसि भवम् इति (सप्त॰ तत्पु॰ समास)। **चेत्** - अव्ययपद। **न** - अव्ययपद। **प्रतिवक्तुम्** - प्रति उपसर्ग √वच्+तुमुन् - अव्ययपद। **अर्हसि** - √अर्ह+लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **किञ्चित्** - किञ्चिदीषन्मनागल्पे। **बहु** - अदभ्रं बहुलं बहु। **क्षमा** - क्षितिक्षान्त्योः क्षमा युक्ते क्षमं शक्ते हिते त्रिषु। **द्विजाति** - द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः। **भावः** - भावः सत्तास्वाभाभिप्रायश्चेष्टात्मजन्मसु। **चपल** - चपलश्चिकुरः समौ। **रहस्य** - रहश्चोपांशु, चालिङ्गे रहस्यं तद्भवे त्रिषु। इत्यमरकोशः।

41

प्रसङ्ग → पार्वती के लिए संसार में सर्वसुलभ संसाधन विद्यमान होते हुए भी तप का प्रयोजन जानने का ब्रह्मचारी प्रयास कर रहा है -

कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपःफलं स्यात्किमतः परं वद॥

(सञ्जी॰) कुल इति। प्रष्टव्यमाह - **प्रथमस्य वेधसः** हिरण्यगर्भस्य **कुले** अन्ववाये **प्रसूतिः** उत्पत्तिः 'यज्ञार्थं हि मया सृष्टो हिमवानचलेश्वरः' इति ब्रह्मपुराणवचनात्। **वपुः** शरीरं [**त्रिलोकसौन्दर्य**] त्रयाणां लोकानां सौन्दर्यम् **इवोदितम्** एकत्र समाहृतम्। **ऐश्वर्यसुखं** सम्पत्सुखम् **अमृग्यम्** अन्वेषणीयं न भवति। किन्तु सिद्धमेवेत्यर्थः। **वयः नवम्**। यौवनमित्यर्थः। **अतः परम्** अतोऽन्यत् **किं तपः फलं स्याद्वद**। अस्ति चेदिति शेषः। न किञ्चिदस्तीत्यर्थः॥

(शिशु॰) कुल इति। प्रष्टव्यमाह - प्रथमस्य वेधसो ब्रह्मणः कुले वंशे ते जन्म प्रजापतेर्वा 'एकप्रथं यत्पर्वताः' इति श्रुतिः। त्रिलोकसौन्दर्यमिवोत्थितं वपुश्च। ऐश्वर्यसुखं चामृग्यमप्रार्थनीयम्। अनेन दुर्लभमित्यर्थः। नवं यौवनं वयश्च। अतः परं तव किं तपः फलं स्यात्। यत्तपसा फलमुत्पद्यते तज्जातमेव॥

अन्वयः → प्रथमस्य वेधसः कुले प्रसूतिः वपुः त्रिलोकसौन्दर्यम् इव उदितम् ऐश्वर्यसुखम् अमृग्यम् वयः नवम्, अतः परं किं तपः फलं स्यात्? वद।

अनुवाद → आदि ब्रह्मा के वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है, शरीर में तीनों लोकों की सुन्दरता मानों पुञ्जीभूत हो गई है, धन- सम्पत्ति का सुख

भी अन्वेषणीय नहीं हैं (अर्थात् पूर्वप्राप्त है), आयु नवीन (नव यौवन) है; इससे बढ़कर तपस्या का क्या फल हो सकता है? यह तो बताओ।

शब्दार्थ → **प्रथमस्य वेधसः** = (प्रथमस्य प्रजापतेः, आदेः ब्रह्मणः) आदि पुरुष ब्रह्मा के, **कुले** = (वंशे, अन्वये) वंश में, **प्रसूतिः** = उत्पत्तिः जन्म है, **वपुः** = (शरीरम्) शरीर, **त्रिलोकसौन्दर्यम् =** (भुवनत्रयलावण्यम्, त्रिभुवनसौन्दर्यम्) त्रिलोकी के सौन्दर्य के, **इव** = सदृश, **उदितम्** = (उद्भूतम्, पुञ्जीभूतम् अर्थात् एकत्र समाहृतम्) सम्पन्न/उत्पन्न हुआ है, **ऐश्वर्यसुखम्** = (समृद्धिसुखम्, विभूतिमुद्) सम्पत्ति का सुख, **अमृग्यम् =** (न अन्वेषणीयम्) खोजने योग्य नहीं है, **नवम् वयः** = (नवीनं तारुण्यं/ नूतन अवस्था) नयी युवावस्था है, **अतः परम्** = (अतोऽन्यत्, अस्मात् अन्यत्) इससे बढ़कर, **तपः फलं** = (तपस्यायाः परिणामः, तपःप्रयोजनम्) तपस्या का फल, **किम्** = (इति) क्या, **स्यात्** = (भवेत्) हो सकता है, **वद** = (ब्रूहि)कथय) यह कहो।

भावार्थ → प्रायः किसी दुर्लभ वस्तु या पद की प्राप्ति के लिए तपस्या की जाती हैं। किन्तु पार्वती के सम्बन्ध में ऐसी किसी भी स्थिति को न देखते हुए ब्रह्मचारी प्रश्न करता है कि हे पार्वती! लोग उच्च कुल में जन्म लेने के लिए तप करते हैं किन्तु सौभाग्य से तुम्हारा जन्म प्रजापति ब्रह्मा के कुल में हुआ है। कुछ लोग सुन्दरता प्राप्त करने के लिए तप करते हैं किन्तु तुम तो जन्म से ही त्रैलोक्य सुन्दरी हो। कुछ लोग धन- सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए तप करते हैं किन्तु तुम्हारे पास तो यह पूर्व से ही विद्यमान है। कुछ लोग युवावस्था को प्राप्त के लिए तप करते हैं किन्तु तुम तो नवयुवती हो। मेरी समझ में तुम्हारे तप करने का कोई प्रयोजन नहीं है। अतः स्पष्ट रूप से बताओ कि इन प्रचलित चार प्रयोजनों के अतिरिक्त तुम्हारे कठोर तप करने का और क्या प्रयोजन है?

भावार्थः → आदिब्रह्मणो वंशे तव जन्म जातम् अस्ति। त्रिलोकसुन्दरं तव शरीरमस्ति। दानोपभोगक्षमं धनस्य सुखमपि स्वतः प्राप्तमस्ति। नवयौवनं वयो विद्यते। सर्वोपलब्धिसत्त्वेऽपि ततोऽन्यत् किं तपसः प्रयोजनं विद्यते? यदि गोपनीयं स्यात् तर्हि मा कथय इति भावः।

व्याकरणम् → **प्रथमस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **वेधसः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **कुले** - सप्त॰, एक॰व॰। **प्रसूतिः** - प्र उपसर्ग पूर्वक √षुञ् प्राणीगर्भविमोचने+क्तिन् प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वपुः** - उप्यन्ते देहान्तरभोगः साधनबीजभूतानि कर्माणि अत्र - 'प्रशस्ताकारे' इति मेदिनी

- प्र॰वि॰, एक॰व॰। **त्रिलोकसौन्दर्यम् इव** - (सुन्दर+ष्यञ्) त्रयाणां लोकानां समाहारः इति त्रिलोकः (द्विगु॰ समास), त्रिलोकस्य सौन्दर्यम् इति त्रिलोकसौन्दर्यम् (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **उदितम्** - (उत्+√इ+क्त) उद् उपसर्ग पूर्वक √इण् गतौ+इट् आगम+क्त प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ऐश्वर्यसुखम्** - (ईश्वर+ष्यञ्) ईश्वरस्य भावः इति ऐश्वर्यम् ; ऐश्वर्यस्य सुखम् इति ऐश्वर्यसुखम् (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अमृग्यम्** - √मृज्+ण्यत्, न मृग्यम् (नञ् तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वयः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **नवम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अतः** - अव्ययपद। **परं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **किं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपःफलं** - तपसः फलम् (ष॰ तत्पु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **स्यात्** - √अस् भुवि+लिङ्लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **वद** - √वद् व्यक्तायां वाचि, लोट् लकार, म॰पु॰ एक॰व॰।

कोशः → **प्रसूति** - प्रसूतिः प्रसवः। प्रथमा - आद्ये प्रधाने प्रथमस्त्रिषु। **वेधा** - स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता। **लोक** - लोकस्तु भुवने जने। **वपुः** - गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः। **सुख** - स्यादानन्दथुरानन्दः शर्मशातसुखानि च। **कुल** - सन्ततिग्रोऽत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ। **नव** - प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्य नवीनो नूतनो नवः। **फलम्** - सस्ये हेतुकृते फलम्। **वयः** - खगबाल्यादिनोर्वयः।

42

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी तप के प्रयोजन की चर्चा करते हुए अपमान आदि अनिष्ट के कारण पार्वती के द्वारा किए जाने वाले तप की सम्भावना को निरस्त कर रहा है -

भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहान्मनस्विनीनां प्रतिपरीदृशी।
विचारमार्गप्रहितेन चेतसा न दृश्यते तच्च कृशोदरि त्वयि॥

(सञ्जी॰) भवतीति। **दुःसहात्** सोढुमशक्याद् **अनिष्टाद्** भर्त्रादिकृतात् **अपि मनस्विनीनां** धीरस्त्रीणाम् **ईदृशी** तपश्चरणलक्षणा **प्रतिपत्तिः** प्रवृत्तिः। 'प्रतिपत्तिस्तु गौरवे। प्राप्तौ प्रवृत्तौ प्रागल्भ्ये' इति केशवः। **भवति नाम**। नामेति। सम्भावनायाम्। [**विचारमार्गप्रहितेन**] विचारमार्गे प्रहितेन **चेतसा** चित्तेन **तद्** अनिष्टं **च। हे कृशोदरि! त्वयि न दृश्यते**। विचार्यमाणे तदपि नास्त्यसम्भावितत्वादित्यर्थः॥

(शिशु॰) भवतीति। अनिष्टाद्वैधव्यलक्षणादपि ईदृशी तपश्चर्यालक्षणप्रतिपत्तिरनुष्ठानं मनस्विनीनां मानिनीनां नामेति सम्भाव्ये भवति। कीदृशात्

अनिष्टात् दुःसहात्? भो तनूदरि! विचारमार्गप्रहितेन विचारमार्गप्रेषितेन चेतसा तच्चानिष्टं त्वयि न दृश्यते॥

अन्वयः → दुःसहात् अनिष्टात् अपि मनस्विनीनाम् ईदृशी प्रतिपत्तिः भवति नाम। हे कृशोदरि! विचारमार्गप्रहितेन चेतसा तत् त्वयि न दृश्यते।

अनुवाद → किसी असहनीय अनिष्ट (कष्ट) से भी स्वाभिमानी स्त्रियों में इस प्रकार की (कठोर तपस्या में) प्रवृत्ति होती है। हे कृशोदेरी! मन से बहुत अधिक विचार करने पर भी तुम्हारे प्रति किसी प्रकार के अपमान आदि अनिष्ट की सम्भावना प्रतीत नहीं हो रही है।

शब्दार्थ → **दुःसहात्** = (सोढुम् अशक्यात्, असह्यात्, असहनीयात्) असह्य, **अनिष्टात्** = (अप्रियात्, अपकृत्यात्) अप्रिय/अनिष्ट की सम्भावना से, **अपि** = भी, **मनस्विनीनाम्** = (धीरस्त्रीणां, मानवतीनां स्त्रीणाम्) स्वाभिमानिनी स्त्रियों में, **ईदृशी** = (एवंविधा, एतादृशी, तपश्चरणलक्षणा) इस प्रकार की (अर्थात् तप अनुष्ठान - व्रतादि करने की), **प्रतिपत्तिः** = (प्रवृत्तिः)प्रवत्ति, **भवति नाम** = (सम्पद्यते सम्भाव्यते, उत्पन्ना भवति) हो जाती है/सकती है। **कृशोदरि**! = (हे तनूदरि, सूक्ष्मोदरि, तन्वङ्गि) हे पतले पेट वाली! **विचारमार्गप्रहितेन** = (विचारवर्त्मप्रेषितेन, चिन्तनपथगामिना) विचार रूपी मार्ग पर चलते हुए, **चेतसा** = (मनसा) मन से (भी), **त्वयि** = (भवत्याम्) तुममें, **तत् च** = (पूर्वोक्तं अपमानादिरूपं अनिष्टम्, अप्रियम्) वैसा सम्भावित अनिष्ट, **न** = नहीं, **दृश्यते** = (अवलोक्यते/प्रतीयते) दिखाई देता है।

भावार्थ → ब्रह्मचारी तप का प्रयोजन जानने के उद्देश्य से पुनः आशंका पूर्वक प्रश्न करता है कि तप के इन प्रयोजनों के अतिरिक्त यह भी कारण हो सकते हैं कि किसी (परिवार अथवा पति) के द्वारा अपमानित होने के कारण तुमने तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया होगा। क्योंकि स्वाभिमानी स्त्रियों में प्रायः ऐसी प्रवृत्ति देखी जाती है। किन्तु तुम्हारे तप में मुझे ऐसी कोई भी सम्भावना नहीं दिखती है। मेरे विचार से कोई तुम्हारा अनिष्ट नहीं कर सकता है; अतः इसके अतिरिक्त तुम्हारे तप का और क्या प्रयोजन हो सकता है?

भावार्थः → अयि कृशोदरि! प्रायः संसारे दृश्यते यत् पत्यादिभिः प्रियव्यक्तिभिः अपमानिताः भूत्वा मानवत्यः स्त्रियः तपश्चरणे संलग्नाः भवन्ति, परन्तु भवत्यां तत् किमपि न दृग्गोचरी भवति, यदि अस्ति तर्हि तपस्यायाः कारणं ब्रूहीति भावः।

व्याकरणम् → **दुःसहात्** - (दुर्+√सह् खल् पञ्च॰वि॰, एक॰व॰) दुःखेन सह्यते इति दुस्सहः (तृ॰ तत्पु॰ समास) तस्मात्। **अनिष्टात्** - (न+√इष्+क्त) न इष्टः अनिष्टः (नञ् तत्पु॰ समास) तस्मात् पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **मनस्विनीनाम्** - प्रशस्तं मनः अस्ति आसां ताः, तासाम् - ष॰वि॰, बहु॰व॰। मनस्+'अस्मायामेधास्रजो विनिः' विनि प्रत्यय, ङीप्। **ईदृशी** - इदम्+दृश्+ङीप्, अयमिव पश्यति - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्रतिपत्तिः** - (प्रति+√पद्+क्तिन्) प्रति उपसर्ग पूर्वक √पद् धातु+क्तिन् प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **भवति** - भू+शप्+तिप् लट् लकार, प्र॰पुरुष, एक॰व॰। **नाम** - अव्ययपद। **हे कृशोदरि!** - कृशम् उदरं यस्याः सा कृशोदरी (बहु॰ समास) सम्बो॰, एक॰व॰। **विचारमार्गप्रहितेन** - (प्र+√धा+क्त = प्रहितम्) विचारस्य मार्गः, (ष॰ तत्पु॰ समास) तस्मिन् प्रहितं (सप्त॰ तत्पु॰ समास) तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **चेतसा** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तत्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **त्वयि** - सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **दृश्यते** - √दृश् कर्मणि, यक्, लट् लकार, प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कोश → **नाम** - नाम प्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगम कुत्सने। **प्रतिपत्ति** - प्रतिपत्तिस्तु गौरवे। प्राप्तौ प्रवृत्तौ प्रागल्भ्ये। इति केशवकोश। **उदर** - कुक्षो जठरोदरं तुन्दम्। **कृशं** - स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु॥

43

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी पार्वती के विषय में किसी प्रकार की अनिष्ट की सम्भावना के निराकरण के सम्बन्ध में तीन कारणों की चर्चा कर रहा है -

अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृतिर्विमानना सुभ्रु कुतः पितुर्गृहे।
पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये॥

(सञ्जी॰) अलभ्येति। हे **सुभ्रु! इयं** त्वदीया **आकृतिः** मूर्तिः [**अलभ्यशोकाभिभव**] अलभ्यो लब्धुमनर्हः शोकेन भर्त्रावमानजेन दुःखेनाभिभवस्तिरस्कारो यस्याः सा तथोक्ता। दृश्यत इति शेषः। असम्भावितश्चायमर्थ इत्याह - **पितुर्गृहे विमानना** अवमानः **कुतः**? न संभाव्यत एवेत्यर्थः। 'सुभ्रुः कुतस्तातगृहेऽवमाननम्' इति पाठान्तरकरणं तु साध्वसमेवोक्तोपपत्तिसम्भवात्। अन्यत्रापि (सुभ्र त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं त्यक्ता कथा योषिताम्) इत्यादिप्रयोगदर्शनाद्वंशस्थवृत्ते पादादौ जगणभङ्गप्रसङ्गाच्चेत्यलं गोष्ठीभिः। न चाप्यन्यस्माद्भावीत्याह - **पराभिमर्शः** परघर्षणं तु **तव नास्ति**। **पन्नगरत्नसूचये** फणिशिरोमणिशलाकाम्। ग्रहीतुमित्यर्थः। ''क्रि-

यार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः'' इति चतुर्थी। **करं हस्तं कः प्रसारयेत्**। 'सुभ्रु' इत्यत्र भ्रूशब्दस्योवङ्स्थानीयत्वात् ''नेयङुवङ्स्थानावस्त्री'' इति नदीसंज्ञाप्रतिषेधात् ''अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः'' इति ह्रस्वत्वं नास्ति। तेन ह्रस्वः प्रामादिकं इति केचित्। अन्ये तु अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम् इत्यत्र 'अलाबूः' 'कर्कन्धूः' इत्युकारान्तादप्यूङ् प्रत्ययमुदाजहार भाष्यकारः। एतस्मादेव ज्ञापकात्क्वचिदूकारान्तस्याप्यूङ्न्तत्वानदीत्वे ह्रस्वत्वमित्याहुः। अतएवाह वामनः - 'ऊकारादप्यूङ्प्रकृतेः' इति॥

(शिशु०) अलभ्येति। भो पार्वति! इयं तवाकृतिरलभ्यशोकाभिभवाऽलभ्यः प्राप्तुमयोग्यः शोकेनाभिभवस्तिरस्करो यस्याः सा। तादृशी दृश्यत इति शेषः। अथ चापमानजनिताद्वैराग्यादेवमित्याह। तव परावमर्शो नास्ति। पन्नगरत्नसूचये सर्परत्नशलाकायै कः करं प्रसारयेदपितु न कोऽपि। नदीसंज्ञाप्रतिषेधात्सुभ्रूशब्दाद्ध्रस्वश्चिन्त्यः। अस्य सम्बुद्धौ ह्रस्व इति केचित्॥

अन्वयः → हे सुभ्रु! इयम् आकृतिः अलभ्यशोकाभिभवा पितुः गृहे विमानना कुतः? पराभिमर्शः तव न अस्ति। पन्नगरत्नसूचये करं कः प्रसारयेत् ?

अनुवाद → हे सुन्दर भौंहों वाली पार्वती! तुम्हारी यह आकृति (रूप) शोक और तिरस्कार के द्वारा अलभ्य है क्योंकि पिता के घर में अपमान कैसे हो सकता है? किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा तुम्हारा स्पर्श भी नहीं किया जा सकता है; क्योंकि सर्प के मस्तक पर स्थित मणि के लिए कौन हाथ को फैलाता है?

शब्दार्थ → **सुभ्रु** = (हे शोभनभ्रूवति, शोभनभ्रूयुक्ते पार्वती) हे सुन्दर भौंहों वाली। **इयम् आकृतिः** = (पुरोऽवलोक्यमाना एषा तव मूर्तिः) यह तुम्हारा आकार/शरीर, **अलभ्यशोकाभिभवा** = (अप्राप्यदुःखतिरस्कारा, अप्राप्यशोकपरिभवा) शोक और तिरस्कार प्राप्त करने के अयोग्य (है), **पितुः** = (जनकस्य, जनयितुः) पिता के, **गृहे** = (भवने) घर में, **विमानना** = (विशेषोऽपमानः, अनादरः) अपमान, **कुतः** = (कथम्, कस्मात् सम्भवः)कहाँ/कैसे हो सकता है?,**पराभिमर्शः** = (परघर्षणं) दूसरों के द्वारा स्पर्श आदि भी, **तव** = (भवत्याः, ते) तुम्हारा, **नास्ति** = (न विद्यते, सम्भाव्यते) किया जा सकता है, (क्योंकि) **पन्नगरत्नसूचये** - (सर्पफणस्थित भुजगमणिप्राप्त्यै) सर्प के फण पर स्थित मणि की प्राप्ति के लिए, **कः** = (जनः, पुमान्) कौन पुरूष, **करः** = (हस्तम्, पाणिम्) हाथ को, **प्रसारयेत्** = (अग्रे कुर्यात् अर्थात् न कोऽपीत्यर्थः) फैलाएगा?

भावार्थ → ब्रह्मचारी पार्वती की तपस्या का प्रयोजन जानने के लिए विभिन्न सम्भावनाओं की कल्पना करके स्वयं ही उनका निराकरण भी करता जा रहा है। इसी क्रम में वह पुनः कहता है - हे पार्वती! तुम्हारी यह सुन्दर आकृति (शरीर) है जो किसी के लिए तिरस्कार या अपमान योग्य नहीं है। पुनः जिसके पिता पर्वतराज हिमालय हैं; उसका कोई कैसे अपमान कर सकता है।

भावार्थः → हे सुन्दरि! तव सुन्दरं शरीरं दुःखयोग्यं नास्ति। पतिगृहवासिनीनां स्त्रीणां दुखं सम्भाव्यते, परं पितृगृहवर्तिन्याः तव अन्यस्माद् दुःखं कथं सम्भाव्यते? पर्वतराजस्य हिमालस्य पुत्र्याः तव लम्पटकृतबलात्कारोऽपि न भवितुम्। कः पुरूषः जीवतः सर्पस्य शक्यते वर्तमानस्य मणेः ग्रहणाय हस्तं प्रसारयेत्? मस्तके तस्मान्न तवेदं तपश्चरणमनिष्टप्राप्तिहेतुकमस्तीति कल्पयामि।

व्याकरणम् → **हे सुभ्रः!** - शोभनौ भ्रुवौ यस्याः सा (बहु॰ समास), सम्बो॰ एक॰व॰। **इयम्** - इदं, स्त्री॰, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **आकृतिः** - आ उपसर्ग √कृ+क्तिन्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अलभ्यशोकाभिभवा** - (ने-+√लभ्, यत्, शोकः = √शुच्+घञ्; अभिभवः = अभि+√भू+अण्) न लभ्यः इति अलभ्यः (नञ् तत्पु॰ समास) अलभ्यः शोकाभिभवो यस्याः सा (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पितुः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **गृहे** - समास, एक॰व॰। **विमानना** - वि उपसर्ग √मन+णिच्+युच्+टाप् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कुतः** - अव्ययपद। **पराभिमर्शः** - (अभि+√मृष्+घञ्) परस्य परेण वा अभिमर्शः (ष॰वि॰, अथवा तृ॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तव** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पन्नगरत्नसूचये** - पन्नं पतितं गच्छतीति पन्नगः (पन्न+गम्+ड) पन्नगस्य रत्नं (ष॰ तत्पु॰ समास), तस्य सूचिः, तस्यै च॰वि॰, एक॰व॰। **करं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **कः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰ सर्वनाम। **प्रसारयेत्** - (प्र+√सृ+णिच्+विधिलिङ् प्र॰पु॰, एक॰व॰) प्र उपसर्ग √सृ गतौ+णिच् = प्रसारि - विधिलिङ् प्र॰ पु॰ एक॰व॰।

कोशः → **शोक** - मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम्। **पन्नग** - उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाऽशनः। **रत्न** - रत्नं मणिर्द्वयो रश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च।

अलङ्कार → "रूपवती पार्वती का कोई अनादर नहीं कर सकता है, पिता के घर में अपमान असम्भव है तथा अन्य के द्वारा स्पर्श भी नहीं किया जा सकता है" इन विशेष कथनों का "साँप की मणि प्राप्त करने

के लिए कौन हाथ फैलाता है।" इस सामान्य कथन से समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

44

प्रसङ्ग → अनेक प्रकार की भूमिका बनाने के बाद हतोत्साहित करने की इच्छा से ब्रह्मचारी स्पष्टतः पार्वती से तपस्या का कारण पूछ लेता है -

किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते॥

(सञ्जी०) किमिति। हे गौरि! **किमिति** केन हेतुना **यौवने त्वया आभरणानि अपास्य** विहाय। वृद्धस्य भावो वार्धकम्। मनोज्ञादित्वाद्वुञ्प्रत्ययः। 'वार्धकं वृद्धसंघाते वृद्धत्वे वृद्धकर्मणि' इति विश्वः। तत्र शोभत इति **वार्धकशोभि वल्कलं धृतम्। प्रदोषे** रजनीमुखे स्फुटाः प्रकटाश्चन्द्रस्ताराकाश्च यस्याः सा **स्फुटचन्द्रतारका विभावरी** रात्रिः **अरुणाय** सूर्यसूताय **कल्पते यदि** अरुणं गन्तुं कल्पते किम्? **वद्** ब्रूहि। ''क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः'' इत्यनेन चतुर्थी। दीप्यमानशशाङ्कतारके प्रदोषे यद्यरुण उदेति ततो विभूषणापहारेण तव वल्कलधारणं संघटत इति भावः॥

(शिशु०) किमति। भो गौरि! अपि च यौवने आभरणानि भूषणान्यपास्य त्यक्त्वा वार्द्धकशोभि वृद्धानां भावो वार्द्धं वार्द्धमेव वार्द्धकं तत्र शोभत इति तादृक् वल्कलं धृतं वद। स्फुटचन्द्रतारके स्फुटाः प्रकटाश्चन्द्रतारकाश्च यत्र तादृशे प्रदोषे रात्रिमुखे यदि विभावरी रात्रिररुणाय कल्पते सम्पद्यते। न किन्तु अरुणाय रात्रिः प्रभात एव सम्पद्यत इत्यर्थः। भूषणानां चन्द्रनक्षत्रोपमानं वल्कलस्यारुणतोपमान 'त्रियामा यामिनी भौती तमी तमा विभावरी' इत्यभिधानचिन्तामणिः॥

अन्वयः → (हे पार्वति) किमिति यौवने आभरणानि अपास्य वार्धकशोभि वल्कलं धृतं, प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी अरुणाय कल्पते यदि वद?

अनुवाद → हे पार्वती! किस कारण से तुमने युवावस्था में आभूषणों का परित्याग करके वृद्धावस्था में शोभा देने वाले वल्कलवस्त्र को धारण कर लिया है? सायंकाल प्रकट हुए चन्द्रमा और तारों वाली रात्रि क्या कभी प्रातः काल के सूर्योदय के समय समर्थ होती है? बताओ।

शब्दार्थ → **त्वया** = (भवत्या) तुम्हारे द्वारा, **यौवने** = (युवावस्थायाम्, तारुण्ये) युवावस्था/जवानी में, **आभरणानि** = (अलङ्कारणानि,

आभूषणानि) आभूषणों को, **अपास्य** = (विहाय, परित्यज्य, त्यक्त्वा) उतार कर/त्याग कर, **वार्धकशोभि** = (वृद्धत्वशोभि वृद्धावस्थोपयुक्तं, वार्धक्यालङ्करणभूतम्) वृद्धावस्था में शोभा बढ़ाने वाले, **वल्कलम्** = (वृक्षत्वक्, वल्कलवस्त्रं) वल्कल (पेड़ों की छाल से बने) वस्त्र को, **किमिति** = (केन कारणेन)किसलिए, **धृतम्** = (परिगृहीतम्, धारितम्) धारण किया गया, **प्रदोषे** = (सायं समये, रजनीमुखे, निशामुखे) सन्ध्या समय में, **स्फुटचन्द्रतारका** = (व्यक्तेन्दुनक्षत्रा, व्यक्तनिशाकरनक्षत्रा, प्रकाशमानशशाङ्कनक्षत्रा) स्पष्ट रूप से प्रकाशित चन्द्रमा और तारों वाली, **विभावरी** = (रात्रिः, निशा) रात्रि, **अरुणाय** = (प्रातःकालीनारुणवर्णाय सूर्याय, सूर्य गन्तुमर्हति) प्रातः कालीन सूर्य के लिए, **कल्पते** = (भवति, विचारयति वा) समर्थ होती है, **यदि** = (किम् इति)क्या यदि ऐसा है तो, **वद** = (ब्रूहि, कथय) बताओ।

भावार्थ → ब्रह्मचारी वस्त्राभूषण विषयक टिप्पणी करते हुए कहता है कि हे पार्वती! तुम अभी युवती हो। इस अवस्था में तुम्हारा तपस्वियों के सदृश वस्त्र धारण करना सर्वथा अनुचित है। तम्हें युवावस्था में सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करना चाहिए। आभूषणों का परित्याग और वल्कल वस्त्रों को धारण करना वृद्धों को शोभा देता है न कि तुम्हें। जिस प्रकार सूर्यास्त के उपरान्त आकाश में चन्द्रमा और तारे अच्छे लगते हैं न कि सूर्य तथा सूर्योदय के समय आकाश में सूर्य की लालिमा अच्छी लगती है उसी प्रकार तुम्हें भी अपनी अवस्था के अनुकूल वस्त्र और आभूषण धारण करना चाहिए। परन्तु तुमने अवस्था के प्रतिकूल इस प्रकार के वस्त्रों को क्यों धारण कर लिया है?

भावार्थः → **हे गौरी!** त्वया यौवनयोग्यानि आभूषणानि त्यक्त्वा जरा वृद्धा वस्थोचितम् इदं वल्कलवस्त्रं किमर्थं परिगृहीतमस्ति। यथा नक्षत्रतारायुक्ता रात्रिः सन्धयाकाले एव अरूणोदयं प्रति गन्तुं न अर्हति तथैव अस्यां युवावस्थायामेव विविधानि आभूषणानि सुन्दराणि वस्त्राणि च परित्यज्य वल्कलवस्त्रधारणं कृत्वा उग्रतपश्चरणं नोचितं प्रतिभाति।

व्याकरणम् → **किम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **इति** - अव्ययपद। **यौवने** - (युवन् +अण्) सप्त॰, एक॰व॰। **त्वया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **आभरणानि** - (आ+√भृ+ल्युट्) प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **अपास्य** - (अप्+√अस्+-ल्यप्) अप उपसर्ग पूर्वक √अस् धातु+क्त्वा एवं उसके स्थान पर ल्यप् होकर - अव्ययपद। **वार्धकशोभि -** वृद्धस्य भावो वार्धकम् - वृद्ध+वुञ्

(अकादेश) वार्धके शोभते - प्र०वि०, एक०व०। **वल्कलम्** - प्र०वि०, एक०व०। **धृतम्** - √धृञ् धारणे+क्त प्र०वि०, एक०व०। **प्रदोषे** - सप्त०, एक०व०। **स्फुटचन्द्रतारका** - चन्द्रश्च तारकाश्च (द्वन्द्वसमास) स्फुटाः चन्द्रतारकाः यस्यां (बहु० समास) सा - प्र०वि०, एक०व०। **विभावरी** - प्र०वि०, एक०व०। **अरुणाय** - च०वि०, एक०व०। **यदि** - अव्ययपद। **कल्पते** - √कृपु सामर्थ्ये+लट् लकार, प्र०पु०, एक०व०। **वद** - √वद्+- लोट् लकार, म० पु०, एक०व०।

कोशः → **आभरण** - अलङ्कारत्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम्। **यौवन** - तारुण्यं यौवने समे। **वार्धकम्** - स्यात् स्थाविरन्तु वृद्धत्ववृद्धसंघेऽपि वार्धकम्। **वल्कल** - वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्। **प्रदोष** - प्रदोषो रजनी-मुखम्। **स्फुट** - स्पष्टं स्फुटं प्रव्यक्तमुल्वणम्। **विभावरी** - विभावरी तमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी। **अरुण** - अरुणो भास्करेऽपि स्याद् वर्णभेदेऽपि च त्रिषु। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत श्लोक में 'चन्द्र' और 'नक्षत्र' आभूषणों के तथा 'अरूण' वल्कल के उपमान के रूप में वर्णित होने के कारण 'उपमा-अलङ्कार' है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

45

प्रसङ्ग → तप के अन्य प्रयोजनों की व्यर्थता सिद्ध करके ब्रह्मचारी तप को निरर्थक बताना चाहता है -

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्॥

(सञ्जी०) दिवमिति। **दिवं** स्वर्गं **प्रार्थयसे** कामयसे **यदि** तर्हि श्रमः तपश्चरणप्रयासो **वृथा** निष्फलः। यदि स्वर्गार्थं तप्यसे ततः श्रमं **मा** कार्षीः। कुतः? **तव पितुः** हिमवतः **प्रदेशा देवभूमयः** स्वर्गपदार्थाः। तत्रत्या इत्यर्थः। **अथः उपयन्तारं** वरं प्रार्थयसे तर्हि **समाधिना** तपसा **अलम्**। न कर्तव्यमित्यर्थः। निषेध्यस्य निषेधं प्रति करणत्वात्तृतीया। तथाहि। **रत्नम्।** कर्तृ। **न अन्विष्यति** न मृग्यते। ग्रहीतारमिति शेषः। किन्तु तद्रत्नं **मृग्यते**। ग्रहीतृभिरिति शेषः। न हि वरार्थं त्वया तपसि वर्तितव्यं किंतु तेनैव त्वदर्थमिति भावः।।

(शिशु०) दिवमिति। यदि तपसा दिवं स्वर्गं प्रार्थयसे इच्छसि। तर्हि श्रमः प्रयासो वृथा। यतस्तव पितुर्हिमवतः प्रदेशा एव देवभूमयः। अथोपयन्तारं भर्तारं प्रार्थयसे तर्हि समाधिना तपसो नियमेनालं पूर्यताम्। यतो रत्नं कर्तृ।

नान्विष्यतीति ग्रहीतारमित्यर्थात् प्राप्तम्। किं तर्हि रत्नमन्यैर्ग्रहीतृभिर्मृग्यते। त्वां भार्यां के न वाञ्छन्तीति भावः। समाधिनेति प्रकृत्यादित्वात्तृतीया। अलं शब्दोत्र निषेधार्थो न पर्याप्त्यर्थः॥

अन्वयः → यदि दिवं प्रार्थयसे (तर्हि) श्रमः वृथा, तव पितुः प्रदेशाः देवभूमयः। अथ उपयन्तारं प्रार्थयसे, (तर्हि) समाधिना अलम्। हि रत्नं न अन्विष्यति, तत् मृग्यते।

अनुवाद → यदि तुम स्वर्ग की कामना कर रही हो तो तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है; क्योंकि तुम्हारे पिता (हिमालय) के समस्त प्रदेश देवभूमि हैं। अथवा यदि तुम पति की कामना कर रही हो तो यह तप व्यर्थ हैं, क्योंकि रत्न स्वयं किसी को खोजने नहीं जाता है; अपितु वह स्वयं ही (गुणों के पारखी लोगों के द्वारा) खोजा जाता है।

शब्दार्थ → **यदि** = (चेत्) अगर, **दिवं** = (स्वर्गम्) स्वर्ग को, **प्रार्थयसे** = (वाञ्छसि, प्राप्तुम् अभिलषसि, कामयसे तर्हि) चाहती हो (तो) **श्रमः** = (परिश्रमः, तपस्याक्लेशं) यह सारा परिश्रम, **वृथा** = (निष्फलः, व्यर्थम् एव) व्यर्थ है, (क्योंकि) **तव** = (ते, त्वदीयस्य, भवत्याः) तुम्हारे, **पितुः =** (जनकस्य, जनयितुः, हिमालयस्येत्यर्थः) पिता के, **प्रदेशाः** = (स्थानानि) प्रदेश, **देवभूमयः** = (स्वर्गसदृशानि सर्वाणि देवस्थानानि, सुरनिवासाः) देवताओं के निवास स्थान हैं। **अथ** = (पक्षान्तरे, पश्चात्, चेत्) इसके अतिरिक्त, **उपयन्तारम्** = (वरं, पतिं, भर्तारम्) वर को (शादी करने योग्य पति को), **प्रार्थयसे** = (कामयसे, वाञ्छसि) प्राप्त करना चाहती हो तो, **समाधिना** = (तपसा, तपश्चरणेन) तपस्या करना, **अलम्** = (कृतम्, पर्याप्तम् न कर्तव्यम्) बन्द कर दो/व्यर्थ है, **हि** = (यतः) क्योंकि, **रत्नम् =** (मणिः, बहुमूल्यमणिः) बहुमूल्य रत्न, **न** = (नहि) नहीं, **अन्विष्यति** = (आत्मधारणार्हं जनं न गवेषयति अर्थात् ग्रहीतारं स्वयं न मृग्यते) खोजता है, **तत् =** (रत्नं, तु) बल्कि वह रत्न, **मृग्यते** = (स्वयम् अपरेण अन्विष्यते) स्वयं दूसरों के द्वारा खोजा जाता है।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पुनः पार्वती से पूछ रहा है कि क्या तुम स्वर्ग की प्राप्ति के लिए इतना घोर तप कर रही हो? यदि स्वर्ग की प्राप्ति तुम्हारे तप का प्रयोजन है तो तुम्हारा तप करना व्यर्थ है क्योंकि तुम्हारे पिता का राज्य ही साक्षात् देवभूमि है। पुनः यदि तुम वर की प्राप्ति के लिए तप कर रही हो तो इसकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता हूँ। तुम रूप, गुण, कुल, आयु, शील, अवस्था इत्यादि सभी दृष्टियों से बहुमूल्य रत्न

के समान हो। पुनः रत्न स्वयं किसी को खोजने नहीं जाता है अपितु रत्नों के पारखी स्वयं ही रत्न की खोज करते हैं। अतः तुम्हें खोजते हुए कोई सुयोग्य वर स्वयं ही तुम्हारे पास आएगा। अतः हे पार्वती! तुम व्यर्थ में इतनी कठोर तपस्या मत करो।

भावार्थः → यदि एतादृशेन कठोरतपसा त्वं स्वर्गम् प्राप्तुम् इच्छसि तर्हि तवैषः तपश्चरणप्रयासो व्यर्थः एव, यतो हि तव पितुः हिमालयस्य प्रदेशाः स्वर्गसदृशाः एव सन्ति। किंवा पतिप्राप्त्यर्थं तपो क्रियते चेत् तपश्चरणं व्यर्थमेव अस्ति। यतोहि रत्नं स्वकीयं ग्राहकं स्वयं न अन्वेषयति अपितु ग्राहकः एव रत्नम् अन्वेषयति। उत्तमवरः स्वयमेव भवत्याः समक्षम् आगत्य विवाहनिवेदनं करिष्यति।

व्याकरणम् → **दिवम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **प्रार्थयसे** - प्र उपसर्ग पूर्वक √अर्थ +णिच्+लट् लकार, म॰ पु॰, एक॰व॰। **यदि** - अव्ययपद। **तर्हि** - अव्ययपद। **श्रमः** - √श्रम्+घञ्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वृथा** - अव्ययपद। **तव** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पितुः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **प्रदेशाः** - प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **देवभूमयः** - देवानां भूमयः इति (ष॰ तत्पु॰ समास), प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **अथ** - अव्ययपद। **उपयन्तारम्** - उप उपसर्ग √यम्+तृच् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **समाधिना** - समाधीयतेऽस्मिन् मनो जनैरिति सम्+आ√धा धातु पूर्वक घोः किः से कि प्रत्यय, तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **अलं** - अव्ययपद। **रत्नं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अन्विष्यति** - अनु उपसर्ग √इष्+य+तिप्, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **हि** - अव्ययपद। **तत्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **मृग्यते** - √मृज्+यक्+लट् लकार, आत्मने॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **दिव** - सुरलोको द्यौ दिवौ द्वे स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम्। **यदि** - पक्षान्तरे चेद्यदि। **वृथा** - व्यर्थके तु वृथा मुधा। **पिता** - तातस्तु जनकः पिता। **अलं** - अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्। **रत्न** - रत्नं मणिद्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → "पार्वती को स्वयं वर का अन्वेषण नहीं करना चाहिए" इस विशेष कथन का "न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्" इस सामान्य कथन से समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

46

प्रसङ्ग → वर (पति) प्राप्ति के सम्बन्ध में ब्रह्मचारी के प्रश्न को

सुनकर पार्वती ने दीर्घ श्वास लिया जिससे ब्रह्मचारी अनुमान लगाता है कि पार्वती के तप का क्या प्रयोजन है? तथापि वह संशय उत्पन्न करता है -

निवेदितं निश्वसितेन सोष्मणा मनस्तु मे संशयमेव गाहते।
न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम्॥

(सञ्जी०) निवेदितमिति। **सोष्मणा निःश्वसितेन** निश्वासवायुना **निवेदितम्**। चिन्तानुभावेनोष्णोच्छ्वासेन ते वरार्थित्वं सूचितमित्यर्थः। तर्हि किं प्रश्नव्यसनेनेत्याह- **मनस्तु** तथापि **मे संशयमेव गाहते** प्राप्नोति। कुतः। **ते** तव। ''कृत्यानां कर्तरि वा'' इति षष्ठी। **प्रार्थयितव्यः** प्रार्थयितुमर्ह **एव न दृश्यते। प्रार्थित- दुर्लभः** प्रार्थितो यो दुर्लभः स **कथं भविष्यति** नास्त्येवेत्यर्थः॥

(शिशु०) निवेदितमिति। वरं कामयस इति वचनश्रवणशमनं विश्वासं परीक्ष्याह - सोष्मणोष्णेन निःश्वसितेन किं निवेदितं सूचितं तवाभिलषितं। तथापि मे मनः संशयमेव गाहते प्राप्नोति। ते त्वया प्रार्थयितव्योऽभिलषणीय एव न दृश्यते। यद्यस्तीत्याह। तर्हि प्रार्थितदुर्लभः कथं पुनर्भविष्यति। रत्नभूतत्वाद्भवत्या इति भावः॥

अन्वयः → सोष्मणा निश्वसितेन निवेदितं, मे मनः तु संशयमेव गाहते, ते प्रार्थयितव्यः एव न दृश्यते, प्रार्थितदुर्लभः कथं भविष्यति।

अनुवाद → (वर शब्द को सुनकर निकलने वाली तुम्हारी) गर्म सांसों ने ही (मन की इच्छा) बता दिया है, किन्तु मेरा मन संशययुक्त ही है। क्योंकि तुम्हारे चाहने योग्य कोई वर दिखाई ही नहीं पड़ता है फिर जिसकी तुम कामना करो और वह दुर्लभ हो जाए ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है?

शब्दार्थ → **सोष्मणा** = (उष्णतासहितेन ऊष्मायुक्तेन, उष्णेन) ऊष्मा (गर्म हवा) से युक्त, **निःश्वसितेन** = (निःश्वासपवनेन श्वासोच्छ्वासवायुना) दीर्घ श्वासोछ्वास ने ही, **निवेदितम्** = (कथितम्, सूचितम्) प्रयोजन कह दिया, **मे** = (मम) मेरा, **मनः** = (हृदयं, चित्तं) मन, **तु** = फिर भी, **संशयम्** = (सन्देहम्, अनिश्चयम्) सन्देह में, **एव** = ही, **गाहते** = (अनुभवति, अवगाहते, प्राप्तनोति) डूब रहा है; **ते** = (तव) तुम्हारे लिए, **प्रार्थयितव्यः** = (प्राथनीयः, प्राथयितुं योग्यः, अभिलषणीयः पुरुषः)चाहा जाने योग्य व्यक्ति, **एव** = ही, **न** = (नहि) नहीं, **दृश्यते** = (अवलोक्यते) दिखाई देता, **प्रार्थितदुर्लभः** = (याचितदुष्प्राप्यः, अभ्यर्थितदुरधिगमः)

चाहा गया पुरूष दुर्लभ, **कथं** = (केन प्रकारेण) कैसे, **भविष्यति** = (सम्भवति, न भविष्यतीत्यर्थः) होगा?

भावार्थ → अभीष्ट वर की प्राप्ति के लिए तप करने सम्बन्धी ब्रह्मचारी के प्रश्न को सुनकर पार्वती ने मनःसन्ताप के कारण दीर्घश्वास लेकर गर्म उच्छ्वास छोड़ा। जिससे ब्रह्मचारी ने यह समझा कि पार्वती वर प्राप्ति के लिए ही तप कर रही है तथापि अपने सन्देह के निवारण हेतु पार्वती के मुख से वास्तविकता जानने के उद्देश्य से ब्रह्मचारी कहता है कि यदि तुम वर की प्राप्ति के लिए तप कर रही हो तो तुम्हारा यह तप युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं हो रहा है। क्योंकि तुम्हारे लिए इस संसार में प्रार्थनीय कोई वर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है अपितु तुम ही अन्य पुरूषों के लिए (वधु के रूप में) प्रार्थनीय हो। मेरे मन में यह सन्देह है कि तुम्हारे जैसी कन्यारत्न किसी पुरुष के प्रति आकृष्ट होकर उसे वर के रूप में प्राप्त करने के लिए इस प्रकार कठोर तप क्यों करे? मुझे तो इस संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं दिखाई देता है जिसके लिए तुम तप करो और वह तुम्हारे लिए दुर्लभ हो। यह तो असम्भव ही लग रहा है।

भावार्थः → यद्यपि तव उष्णोच्छ्वासानुमानेन पतिप्राकामना एव तपस्याकारणमिति ज्ञायते तथापि उपपत्तेरभावान्मदीयं मनः सन्देहयुक्तं वर्तते। यतो हि सर्वजनप्रार्थनीयया भवत्या प्रार्थनीयो लोकत्रयेऽपि कश्चित् पुरूषविशेषो नावलोक्यते। यदा कदाचित् कश्चित् प्रार्थितो भवेत् तर्हि तस्य सौभाग्यातिशयं मन्ये। अत्र प्रार्थितदुर्लभत्वमिति भावः। हे पार्वति! तव उष्णोच्छ्वासेन अनुमीयते यत् त्वं अभीष्टवरप्राप्त्यर्थं तपः आचरति। तथापि मम मनसि संशयः अस्ति। यतोहि अस्मिन् संसारे भवत्या प्रार्थनीयः वरः कुत्रापि न दृश्यते। पुनश्च अभिलषितः वरः स्यात् सोऽपि दुर्लभः भवेत् इति कथं भवितुमर्हति।

व्याकरणम् → **सोष्मणा** - ऊष्मणा सहितं सोष्म (सहपूर्वपद बहु० समास), **तेन** - तृ०वि०, एक०व०। **निश्वसितेन** - (निस्+√श्वस्+क्त, तेन) तृ०वि०, एक०व०। **निवेदितम्** - नि उपसर्ग √विद्+इट्+क्त - प्र०वि०, एक०व०। **मनस्** - प्र०वि०, एक०व०। **तु** - अव्ययपद। **मे** - ष०वि०, एक०व०। **गाहते** - √गाह्+धातु+लट् लकार, आत्मने०, प्र०पु०, एक०व०। **ते** - ष०वि०, अथवा च०वि०, एक०व०। **प्रार्थयितव्यः** - प्रार्थयितुं योग्यः, प्र+अर्थ +इट्+तव्यत्, प्र०वि०, एक०व०। **दृश्यते** - दृश्+यक्+लट् लकार, आत्मने० प्र०पु०, एक०व०। **प्रार्थितदुर्लभः** - प्रार्थितश्चासौ दुर्लभश्च इति

(कर्मधा॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कथम् -** अव्ययपद। **भविष्यति** - √भू+इट्+ष्य+तिप् - लृट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **उष्णा** - निदाध उष्णोपगम उष्णा ऊष्मागमस्तपः। **संशय** - विचिकित्सा तु संशयः। सन्देह द्वापरौ।

47

प्रसङ्ग → पार्वती पति की प्राप्ति हेतु तप कर रही है ऐसा मानकर ब्रह्मचारी उस संभावित वर को कठोर हृदय वाला कहकर उलाहना देना प्रारम्भ कर देता है -

अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते।
उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः॥

(सञ्जी॰) अहो इति। **अहो** चित्रम्। **तेविप्सितः** आप्तुमिष्टो **युवा कः अपि स्थिरः** कठिनः। वर्ततः इति शेषः। कुतः। **यः** युवा **चिराय** चिरात्प्रभृति **कर्णोत्पलशून्यतां गते** प्राप्ते **कपोलदेशे** गण्डस्थले श्लथाः शिथिलबन्धना अतएव लम्बिन्यस्ताः **श्लथलम्बिनीः [कलमाग्रपिङ्गलाः]** कलमाः शालिविशेषास्तेषामग्राणि तद्वत्पिङ्गला **जटा उपेक्षते**। यस्त्वामीदृशीं दृष्ट्वा न व्यथते स नूनं वज्रहृदय इत्यर्थः॥

(शिशु॰) अहोस्थिर इति। स तवेप्सितस्तवेष्टः कोप्यद्भुतस्वरूपो युवा तरुणः अहो आश्चर्यं स्थिरो निश्चलः। यः चिराय चिरात्प्रभृति कर्णोत्पलशून्यतां गतेऽवतंसोत्पलरहिते कपोलदेशे श्लथबन्धिनीः शिथिलबन्धा जटा उपक्षते। कीदृशीः? कलमाग्रपिङ्गलाः॥

अन्वयः → अहो तव ईप्सितः युवा कोऽपि स्थिरः यः चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते कपोलदेशे श्लथलम्बिनीः कलमाग्रपिङ्गलाः जटाः उपेक्षते।

अनुवाद → अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि तुम्हारा मनोवाञ्छित युवा कोई कठोर हृदय वाला होगा जो चिर काल से कान में कमल रूपी आनूषणों से रहित ढीली लटकती हुई पके धान की बाली के सदृश पीली जटाओं को देखकर भी अनदेखा कर रहा है।

शब्दार्थ → **अहो** = (आश्चर्यम्) आश्चर्य है, **तव** = (भवत्याः) आपका, **ईप्सितः** = (अभिलषितः आप्तुम् इष्टः, वाञ्छितः) इच्छित, चाहा हुआ, **युवा** = (तरुणः, युवकः) युवक, **कः अपि** = (कश्चिद् अपि) कोई, **स्थिरः** = (अतिकठोरः, कठोरमनाः) कठोर हृदयवाला/निर्दयी है, **यः** = (तरुणः, युवा) जो, **चिराय** = (चिरात्प्रभृति, चिरकालात्) बहुत समय से, **कर्णोत्पलशून्यतां** = (कर्णकमलराहित्य-

म्, श्रुतिकुवलयराहित्यं, श्रवणसरोरुहहीनतां) कानों के कमलों, **गते** = (प्राप्ते) से रहित, **कपोलदेशे** = (गण्डस्थले) कपोलों के प्रान्तभाग पर, **श्लथलम्बिनीः** = (बन्धनशैथिल्येन लम्बमानाः, शिथिललम्बिनीः, शिथिलबन्धनाः) ढीली होकर लटकती हुई और, **कलमाग्रपिङ्गलाः** = (शालिविशेषाग्रकपिलाः, शाल्यग्रकपिलाः, शालिविशेषेरक्तवर्णाः) उत्तम धान के अग्र भाग के समान पीले रङ्ग के, **जटाः** = (रुक्षकेशाः, सटाः) जटाओं की, **उपेक्षते** = (न चिन्तयति, उपेक्षां करोति) उपेक्षा कर रहा है।

भावार्थ → आश्चर्य प्रकट करते हुए ब्रह्मचारी पार्वती से कहता हैं कि तुम जिस पुरुष को पति के रूप में प्राप्त करना चाहती हो वह निश्चय ही अत्यन्त कठोर हृदय वाला व्यक्ति होगा। क्योंकि घोर तपस्या के कारण कमलरूपी कर्णाभरण रहित कानों और गालों पर लटकते हुए पीली पड़ चुकी जटाओं को देखकर भी वह पुरुष द्रवित नहीं हो रहा है। उसे अब तक तुम पर दया दिखानी चाहिए थी और तुम्हें कठोर तप से मुक्त कर देना चाहिए था।

भावार्थः → अहो! आश्चर्यमेतत् तवाभीष्टः तरूणः नूनमेव कठोर-हृदयः वर्तते यः कर्णोत्पलशून्यतां गते कपोलदेशे लम्बमानां पिङ्गलजटां दृष्ट्वा अपि उपेक्षते। सः त्वदीयां दुर्दशां दृष्ट्वा अपि न द्रवीभूतः जातः इति भावः।

व्याकरणम् → **अहो** - अव्ययपद। **तव** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **ईप्सितः** - √आप्+सन्+क्त, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **युवा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अपि** - अव्ययपद। **स्थिरः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **यः** - यद् सर्वनाम - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **चिराय** - अव्ययपद। **कर्णोत्पलशून्यतां** - कर्णयोः उत्पले (ष॰ तत्पु॰ समास), कर्णोत्पलाभ्यां शून्यः (तृ॰ तत्पु॰ समास) कर्णोत्पल शून्यस्य भावः (तल् प्रत्यय) तां 'कर्णोत्पलशून्यताम्' द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **गते** - √गम्+क्त सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **कपोलदेशे** - कपोल एव देशः इति कपोलदेशः (कर्मधा॰ समास), कपोलस्य देशः (ष॰वि॰, तत्पुरुषः) तस्मिन् - सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **श्लथलम्बिनीः** - (लम्ब+णिनि+ङीप्) श्लथाश्च ताः लम्बिन्यः च (कर्मधा॰ समास) ताः द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **कलमाग्रपिङ्गलाः** - कलमानाम् अग्राणि (ष॰ तत्पु॰ समास) तानि, कलमाग्रणीव पिङ्गलाः, ताः पुनस्तद्वत्, द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **जटाः** - द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **उपेक्षते** - उप उसर्ग पूर्वक √ईक्ष्दर्शने,लट् लकार, आत्मने॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **अहो** - अहो ही च विस्मये। **युवा** - वयस्यस्तरुणा युवा। **चिराय** - चिराय चिररात्राय चिरस्याघाश्चिरार्थकाः। **उत्पल** - स्यादुत्पलं कुवलयम्। **शून्य** - शून्यन्तु वशिकं तुच्छरिक्तके। **जटा** - व्रतिनस्तु जटा सटा। **कपोल** - गण्डौ कपोलौ। **कमल** - शालयः कलमाद्याश्च। **पिङ्गल** - कडारः पिङ्गपिशंगौ कद्रुपिङ्गलौ। इत्यमरकोशः।

48

प्रसङ्ग → पार्वती के तपजन्य क्लेश को देखकर भी द्रवित न होने वाले पाषाणवत् भावी पति की कठोर हृदयता का ब्रह्मचारी प्रतिपादन कर रहा है -

मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा सचेतसः कस्य मनो न दूयते॥

(सञ्जी०) मुनिव्रतैरिति। **मुनिव्रतैः** श्चान्द्रायणादिभिः **[अतिमात्रकर्शिताम्]** अतिमात्रमत्यन्तं कर्शितां कृशीकृतां दिवाकरेण सूर्येणाप्लुष्टानि दग्धानि वातातपसंस्पर्शान्मृदुत्वाच्च श्यामीकृतानि विभूषणास्पदानि भूषणस्थानानि यस्यास्तां तथोक्ताम्। अतएव **दिवा** अहनि **शशाङ्करेखामिव** स्थितां **त्वां पश्यतः सचेतसः** जीवतः **कस्य** पुंसो **मनः न दूयते** न परितप्यते। अपि तु सर्वस्यैवेत्यर्थः॥

(शिशु०) मुनिव्रतैरिति। भो पार्वति! मुनिव्रतैश्चान्द्रायणादिभिरतिमात्रकर्शितां भृशकृशां त्वां पश्यतः सचेतसः सहृदयस्य कस्य मनो हृदयं न विदीर्यते न स्फुटति? अपितु सर्वस्य। त्वां कीदृशीं? दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदां दिवाकरेण प्लुष्टानि दग्धानि भूषणान्यलङ्कारस्थानानि यस्यास्तांम् त्वां कामिव। दिने शशाङ्कलेखामिव। दीर्यत इति कर्मकर्तर्यात्मनेपदम्॥

अन्वयः → मुनिव्रतैः अतिमात्रकर्शितां दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदां दिवा शशशाङ्कलेखाम् इव त्वां पश्यतः कस्य सचेतसः मनः न दूयते।

अनुवाद → ऋषियों के समान अत्यन्त कठोर व्रतों के पालन से अत्यन्त कृश (दुर्बल) शरीर, सूर्य की किरणों से झुलसे हुए आभूषण धारण करने के स्थान (अङ्ग) दिन के समय चन्द्रमा की कला के समान निस्तेज तुम्हें देखते हुए किस सहृदय व्यक्ति का मन दुःखित नहीं होगा?

शब्दार्थ → **मुनिव्रतैः** = (ऋषिनियमैः, मुनिनियमैः) ऋषियों के समान किये जाने वाले कठोर व्रतों के द्वारा, **अतिमात्रकर्शितां** = (अत्यन्तकृशतां गताम् प्राप्तां, अत्यन्तदुर्बलीभूताम्)अत्यधिक दुर्बल स्थिति को प्राप्त हुई, **दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्** = (रविदग्धालङ्कारस्थानाम्) सूर्य

के ताप से झुलसे हुए आभूषण धारण करने योग्य स्थानों वाली, **दिवा** = (अहनि, दिनसमये) दिन के समय, **शशाङ्कलेखाम्** = (चन्द्ररेखासदृशीं, चन्द्रकलासदृशाम्, चन्द्ररेखाम्) चन्द्रमा की कला के, **इव** = समान, **त्वाम्** = (भवतीम्) तुमको, **पश्यतः** = (अवलोकयतः, ईक्षमाणस्य) देखते हुए, **कस्य** = (पुंसः, जनस्य, मानुषस्य) किस, **सचेतसः** = (स्चेतनस्य, जीवतः, सहृदयस्य) सहृदय व्यक्ति का, **मनः** = (चेतः, चित्तं हृदयं) हृदय, **न** = (नहि) नहीं, **दूयते** = (सन्तप्यते, परितप्यते, दुखितं भवति) दुखी अथवा खिन्न होता है।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पुनः मनोवाञ्छित वर की पाषाणहृदयता का प्रतिपादन करते हुए कहता है। हे पार्वती! तुम सुकोमल शरीर के होते हुए भी ऋषियों द्वारा किए जाने योग्य व्रतों और नियमों की कठोरतापूर्वक पालन कर रही हो जिससे तुम्हारा शरीर अत्यन्त दुर्बल और कृश हो गया है।

भावार्थः → मुनिसदृशकठोरतपोनियमैः कृशीभूतां दिनपतिदग्धालङ्कारस्थानां दिवसे परिधूसरां चन्द्रमारेखामिव त्वां पश्यतः कस्य सहृदयस्य हृदयं न परितप्यते अपितु सर्वस्य सहृदयस्य जनस्य परितप्यते एवेति भावः।

व्याकरणम् → **मुनिव्रतैः** - मुनीनां व्रतानि (ष॰ तत्पु॰ समास) तानि, **तैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **अतिमात्रकर्शितां** - अतिमात्रं यथा- तथा कर्शिता, ताम् - (सुप्सुपा समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदां** - (आ+√प्लुष+क्त; वि+√भूष्+ल्युट्) विभूषणानाम् आस्पदानि (ष॰ तत्पु॰ समास), दिवाकरेण आप्लुष्टानि श्यामीकृतानि विभूषणास्पदानि यस्याः सा (बहु॰ समास) ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **दिवा** - दिवसे इस अर्थ में अव्ययपद। **शशाङ्कलेखाम्** - शशस्य अङ्कः यस्य (बहु॰ समास) सः, शशाङ्कस्य लेखा (ष॰ तत्पु॰ समास) **ताम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **त्वां** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰ (युष्मद्)। **पश्यतः** - √दृश् धातु पश्य आदेश+शतृ प्रत्यय, ष॰वि॰, एक॰व॰। **सचेतसः** - चेतसा सहितः सचेतः तस्य (बहु॰ समास) ष॰वि॰, एक॰व॰। **कस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰ (किम्)। **मनः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **दूयते** - √दूङ् दूञ् परितापे+यक्+लट् लकार, आत्मने॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **मुनि** - तपस्वी तापसः पारिकाङ्क्षी वाचंयमी मुनिः। **अतिमात्र** - अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम्। **प्लुष्ट** - प्रुष्टप्लुष्टोषिता

दग्धे। **आस्पदम्** - प्रतिष्ठाकृत्यमास्पदम्। **दिवा** - दिवाह्नीत्यथ।

अलङ्कार → जिस प्रकार दिन में सूर्य के तीव्र प्रकाश के कारण चन्द्रमा की कला क्षीण (निष्प्रभावी) हो जाती है उसी प्रकार तपस्या के कठोर नियमों के अनुपालन से पार्वती की काया (शरीर) भी अत्यन्त क्षीण (कान्तिहीन) हो गई है। 'शशाङ्कलेखा' उपमान है 'त्वाम्' उपमेय तथा 'इव' उपमावाचक है अतः यहाँ 'उपमा- अलङ्कार' है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

49

प्रसङ्ग → कठोर तप करने पर भी अभीष्ट वर द्वारा पार्वती की उपेक्षा करने को ब्रह्मचारी वस्तुतः वर की हानि बताते हुए उलाहना दे रहा है -

अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।
करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः॥

(सञ्जी०) अवैमीति। **तव प्रियं** वल्लभं **सौभाग्यमदेन** सौन्दर्यगर्वेण कर्त्रा। **वञ्चितं** विप्रलब्धम् **अवैमि** वेद्मि। **यः** प्रियश्चतुरं मधुरमवलोकत इति **चतुरावलोकिनः अरालपक्ष्मणः** कुटिलरोम्णः। 'अरालं वृजिनं जिह्मम्' इत्यमरः। **अस्य** त्वदीयस्य **चक्षुष आत्मीयं** वक्त्रं मुखं **चिरं लक्ष्यं** विष्यं **न करोति**। दृष्टिपथं न गच्छतीत्यर्थः। तदयं गर्वेण हतो निष्फलात्मलाभो जात इति भावः॥

(शिशु०) अवैमीति। हे गौरि! तव प्रियं सौभाग्यमदेन गर्वेण वञ्चितमहमवैमि जाने। यः प्रियो यस्य तव चक्षुषो नेत्रस्य आत्मीयं स्वं वक्त्रं लक्षविषयं न करोति। कीदृशस्य चक्षुषश्चतुरावलोकिनः चतुरेण निरीक्षणविशेषेणावलोकितुं शीलं यस्य तत्तस्य। पुनः कीदृशस्य? अरालपक्ष्मणः अरालानि कुटिलानि पक्ष्माणि यस्य तस्य। त्वदवलोकनेनैव तस्य जन्म सफलं। य आत्मानं त्वां न दर्शयति स निर्भाग्य एवेति भावः॥

अन्वयः → तव प्रियं सौभाग्यमदेन वञ्चितम् अवैमि। यः चतुरावलोकिनः अरालपक्ष्मणः अस्य चक्षुषः आत्मीयं वक्त्रं चिरं लक्ष्यं न करोति।

अनुवाद → मैं तुम्हारे प्रिय (वर) को अपने सौभाग्य के मद (गर्व) से ठगा गया समझता हुँ; जो सुन्दर दृष्टि से देखने वाले तथा वक्र पलकों से युक्त इन नेत्रों का लक्ष्य अपने मुख को देर तक के लिए नहीं बनाया।

शब्दार्थ → **तव** = (ते, भवत्याः) तुम्हारे, **प्रियं** = (दयितम्, वल्लभम्) प्रियजन, वल्लभ को, **सौभाग्यमदेन** = (स्वलावण्यगर्वेण, सौन्दर्यगर्वेण) सौन्दर्य के गर्व से, **वञ्चितम्** = (विप्रलब्धं, प्रतारितम्, मुषितम्) ठगा

हुआ, **अवैमि** = (जानामि) समझता हूँ। **यः** = (तव प्रियः) जो, **चतुरावलोकिनः** = (सुन्दरदर्शिनः, मधुरदर्शिनः) सुन्दर दृष्टि वाले, **अरालपक्ष्मणः** = (जिह्मरोम्णः, कुटिलरोम्णः) टेढ़ी भृकुटियों/पलकों वाले, **अस्य =** (तवेत्यर्थः, त्वदीयस्य) तुम्हारे इस, **चक्षुषः** = (अक्षणः, नेत्रस्य) नेत्र के (सम्मख), **आत्मीयम्** = (स्वकीयम्) अपने, **वक्त्रम् =** (मुखम्, आननम्, वदनम्) मुख को, **चिरम्** = (बहुकालपर्यन्तम्, चिरकालपर्यन्तम्) पर्याप्त समय तक, **लक्ष्यम्** = (विषयम्) लक्ष्य, **न** = (नहि) नहीं, **करोति** = (विषयीकरोति, विधत्ते, विद्धाति) नहीं बना रहा है।

टिप्पणी → ब्रह्मचारी पार्वती के अभीष्ट वर की आलोचना करते हुए कहता है कि हे गौरी! मेरे विचार से तुम जिस पुरुष के लिए तप कर रही हो वह निश्चय ही अपने सौन्दर्य के मिथ्या अभिमान में है। वस्तुतः इसी अहङ्कार के कारण वह एक बहुत बड़े लाभ से अब तक वञ्चित है। यदि वह अपने अभिमान को छोड़कर तुम्हारे पास आ जाता तो सुन्दर आँखों और तिरछी भृकुटी वाले तुम्हारे द्वारा चिरकाल तक देखा जाता तब निश्चय ही उसका मिथ्याभिमान नष्ट हो जाता। अतः मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह अपने मिथ्या सौन्दर्याभिमान के द्वारा ठग लिया गया है।

भावार्थः → अहं भवत्या प्रियत्वेन प्रार्थितं पुरूषं सौन्दर्यगर्वेण वञ्चितं मन्ये। यः सौम्यदर्शनस्य कुटिलनेत्ररोम्णः तव नयनस्य स्वकीयं मुखं दृष्टिगोचरी न करोति। सः पुरुषः व्यर्थगर्वकारणेन फलरूपेण भवतीं प्राप्तुं न शक्नोति इति भावः।

व्याकरणम् → **तव** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **प्रियम्** - (प्रियः √प्री+क) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **सौभाग्यमदेन** - (सुभग+ष्य) सुभगस्य भावः कर्म वा सौभाग्यम् - ष्यञ् प्रत्यय - सौभाग्यस्य मदः (ष॰ तत्पु॰ समास) तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **वञ्चितम्** - √वञ्च्+णिच्+क्त - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अवैमि** - अव उपसर्ग पूर्वक √इण् गतौ+लट् लकार, उ॰पु॰, एक॰व॰। **यः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **चतुरावलोकिनः** - चतुरं यथा तथा, अवलोकते इति चतुराऽवलोकि (सुप्सुपासमास), णिनि प्रत्यय - ष॰वि॰, एक॰व॰। **अरालपक्ष्मणः** - अरालानि पक्ष्माणि यस्य (बहु॰ समास) तत्, तस्य - ष॰वि॰, एक॰व॰। **अस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **चक्षुषः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **आत्मीयं** - आत्मनः इदं आत्मीयं - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **वक्त्रम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **चिरम्** - अव्ययपद। **लक्ष्यं** - (√लक्ष्+यत्) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **करोति** - √डुकृञ् करणे+लट् लकार, परस्मै॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

***कोशः →* मदः** - चित्तोद्रेकः स्मयो मदः। गर्वोऽभिमानोऽहंकारो मानाश्चित्तसमुन्नति। दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भः। **वञ्चित** - विप्रलब्धस्तु वञ्चितः। **प्रियम् -** दयितं वल्लभं प्रियम्। **लक्ष्य** - लक्षं लक्ष्यं शरव्यञ्च। **वक्त्र** - वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्। **अराल** - अरालं वृजिनं जिह्ममूर्मिमत्कुञ्चितानतम्। आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि।। **पक्ष्म -** पक्ष्माक्षिलोम्नि किञ्जल्के तत्त्वाद्यंशेऽप्यणीयसी। इत्यमरकोशः।

50

प्रसङ्ग → वाक्पटु ब्रह्मचारी चतुराई पूर्वक पार्वती के तप के प्रयोजन को जानकर पुनः अभीष्ट वर का परिचय जानना चाहता है -

कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः।
तदर्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम्॥

(सञ्जी०) कियदिति। **हे गौरि! कियत्** किंप्रमाणकम्। किमवधिकमित्यर्थः। **चिरं श्राम्यसि** तपस्यसि। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। **ममापि [पूर्वाश्रमसंचितं]** पूर्वाश्रमः प्रथमाश्रमो ब्रह्मचर्याश्रमस्तत्र सञ्चितं सम्पादितं **तपः विद्यते। [तदर्धभागन]** अर्धश्चासौ भागश्च तेन यस्य तपसोऽर्धभागेनैकदेशेन **काङ्क्षितम्** इष्टं **वरम्** उपयन्तारं **लभस्व। तं** वरं **साधु** सम्यक् **वेदितुं** ज्ञातुम् **इच्छामि च**। यद्यसौ योग्यो भवति तदा ममापि समितिरिति भावः॥

(शिशु०) कियदिति। हे गौरि! कियच्चिरं कियतं समयं श्राम्यसि तपस्यसि। ममापि पूर्वाश्रमसञ्चितं पूर्वाश्रमो ब्रह्मचर्यं तेनोपार्जितं तपः विद्यते। तदर्द्धभागेन तस्य तपसोऽर्द्धभागेन काङ्क्षितं वाञ्छितं वरं लभस्व प्राप्नुहि। तं च वरं साधु सम्यग् वेदितुं ज्ञातुमिच्छामि। यदि स योग्यो भवति तदा ममापि सम्मतिरितिभावः॥

अन्वयः → हे गौरि! कियत् चिरं श्राम्यसि? मम अपि पूर्वाश्रमसञ्चितं तपः विद्यते। तदर्धभागेन काङ्क्षितं वरं लभस्व। किन्तु तं च साधु वेदितुम् इच्छामि।

अनुवाद → हे गौरी तुम कब तक तप करती रहोगी? मेरा ब्रह्मचर्याश्रम में सञ्चित किया गया तप है। उसके आधे भाग से इच्छित वर को प्राप्त कर लो किन्तु मैं उस वर को अच्छी तरह से जान लेना चाहता हूँ।

***शब्दार्थ →* गौरि**! = (पार्वति)हे पार्वती! **कियत् चिरम्** = (किम् अवधिकं, किं प्रमाणकं, किम् अवधिपर्यन्तम्, चिरकालपर्यन्तम्) कितने लम्बे समय तक, **श्राम्यसि** = (तपस्यसि, तपःश्रमं विदधासि, श्रमं

करोषि)तपस्या का श्रम करती रहोगी? **मम** = (मामकं)मेरी, **अपि** = (मदीयमपि) भी, **पूर्वाश्रमसञ्चितम्** = (ब्रह्मचर्याश्रमसम्पादितं, ब्रह्मचर्याश्रमार्जितम्)प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम में एकत्रित, **तपः** = (पुण्यम्) तपस्या, **विद्यते** = (वर्तते)है, **तदर्धभागेन** = (तदर्धांशेन)उसके आधे भाग से, **काङ्क्षितम्** = (अभिलषितम्, इष्टम्, ईप्सितम्)अपने इच्छित, **वरम्** = (पतिम्, उपयन्तारं) पति को, **लभस्व** = (प्राप्नुहि, प्राप्नोतु) प्राप्त कर लो, **च** = किन्तु, **तम्** = (वरम्) उस अभीष्ट वर को, **साधु** = (सम्यक् रूपेण) अच्छी तरह से (भलीभाँति), **वेदितुम्** = (अवगन्तुम्, ज्ञातुम्) जानना, **इच्छामि** = (अभिलषामि) चाहता हूँ।

भावार्थ → प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मचारी पार्वती के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहता है कि हे गौरी! अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तुम कब तक इतना कठोर तप करती रहोगी? तुम्हें अभीष्ट फल की प्राप्ति में पर्याप्त विलम्ब हो रहा है। अपने ब्रह्मचर्याश्रम में किये गए सञ्चित तप का आधा भाग तुमको देना चाहता हूँ। ताकि तुम उस तप के प्रभाव से अभीष्ट फल की प्राप्ति कर सको। किन्तु मैं उस वर का कुल, गोत्र, नाम आदि सम्पूर्ण परिचय जानना चाहता हूँ।

भावार्थः → हे गौरि! त्वं कियत्कालपर्यन्तं तपस्यसि? तपजन्यपरिश्रमं मा कुरू, ममापि ब्रह्मचर्याश्रमे सञ्चितं तपो विद्यते। तस्य तपसः अर्धभागेन अभिलषितं वरं लभस्व। किन्तु भवत्या हृदये सञ्चिन्त्यमानं तं पतिं बोद्धुमिच्छामि। तस्य कुलं गोत्रं नाम च ब्रूहि इति भावः।

व्याकरणम् → **हे गौरि** - सम्बो॰ एक॰व॰, षिद् गौरादिभ्यश्च सूत्र से ङीष् प्रत्यय स्त्रीत्व में। **कियत्** - किम्+वतुप् - अव्ययपद। **चिरं** - अव्ययपद। **श्राम्यसि** - √श्रम तपसि खेदे च+दिवादिगण के कारण श्यन् विकरण- लट् लकार, परस्मै॰ म॰ पु॰ एक॰व॰। **मम** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पूर्वाश्रमसंचितं** - (सम्+√चि+क्त) पूर्वश्चासौ आश्रमः इति पूर्वाश्रमः (कर्मधा॰ समास) पूर्वाश्रमे सञ्चितम् इति पूर्वाश्रमसञ्चितम् (सप्त॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **विद्यते** - √विद्+-श्यन्+लट् लकार, आत्मने, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **तदर्धभागेन** - अर्धश्चासौ भागश्च - (कर्मधा॰ समास) सः, तस्य अर्धभागः (ष॰ तत्पु॰ समास) तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **काङ्क्षितं** - √काक्षि काङ्क्षायाम्+इट्+क्त, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **वरं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **लभस्व** - √लभ् प्राप्तौ,लोट् लकार, आत्मने॰, म॰ पु॰ एक॰व॰। **तं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰ (तद्)। **वेदितुम्** -

√विद्+इट्+तुमुन् - अव्ययपद। **इच्छामि** - √इच्छ्, लट् लकार, परस्मै०, उ०पु०, एक०व०।

***कोशः →* पूर्व** - पुंस्यादिः पूर्व पौरस्त्य प्रथमाद्याः। **अर्ध** - पुंस्योर्धोऽर्धे समेऽशंके। इत्यमरकोशः। **वर** - वरो जामातरि श्रेष्ठे देवतादेरभीप्सिते॥ इति मेदिनीकोशः।

51

प्रसङ्ग → ब्रह्मचारी द्वारा पति विषयक जिज्ञासा उत्पन्न करने पर पार्वती लज्जावश अपने मन की बात सहसा नहीं कह सकी, अतः उसने उत्तर देने के लिए अपनी सखी को संकेत किया -

इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्।
अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनी विवर्तितानञ्जननेत्रमैक्षत॥

(सञ्जी०) इतीति। **इति** इत्थं **द्विजन्मना** द्विजेन **प्रविश्य** अन्तर्गत्वा। आप्तवद्रहस्यमुद्भाव्येत्यर्थः। **अभिहित** उक्ता **सा** पार्वती **मनोगतं** हृदिस्थं वरं **शंसितुं** वक्तुं **न शशाक** समर्था नाभूत्। लज्जयेति शेषः। **अथः** अनन्तरं **परिपार्श्ववर्तिनीं वयस्यां** सखी **[विवर्तितानञ्जननेत्रं]** विवर्तितं विचलितमनञ्जनं व्रतवशाद्वर्जितकज्जलं नेत्रं यस्मिन्कर्मणि तत्तथा **ऐक्षत**। नेत्रसंज्ञयैव प्रत्युत्तरं वाचयांचकारेत्यर्थः॥

(शिशु०) इतीति। द्विजन्मना विप्रेण प्रविश्येतीत्थमभिहितोक्ता सा गौरी मनोगतं वरं शंसितु वक्तुं न शशाक न समर्थाऽभूत्। अथानन्तरं परिपार्श्ववर्तिनीं समीपस्थां सखीं विवर्तितानञ्जननेत्रं यथा स्यात् विवर्तितं चालितमनञ्जनं कञ्जलरहितं नेत्रं यस्मिन् कर्मणि तत्तथैक्षताद्राक्षीत्। त्वं चक्षीति नेत्रचालनेन सखीं प्रेरितवतीत्यर्थः॥

अन्वयः → इति द्विजन्मना प्रविश्य अभिहिता सा मनोगतं शंसितुं न शशाक। अथो परिपार्श्ववर्तिनीं वयस्यां विवर्तितानञ्जननेत्रम् ऐक्षत।

अनुवाद → इस प्रकार उस ब्राह्मण के द्वारा (हृदय में) प्रवेश करके कही (पूछी) गई वह पार्वती अपने मन की बात कहने में समर्थ न हो सकी। तत्पश्चात् पास में स्थित सखी को कञ्जलरहित नेत्रों को घुमाकर देखा।

***शब्दार्थ →* इति** = (एवम्, इत्थं, अनेन प्रकारेण) इस प्रकार से, **द्विजन्मना** = (ब्राह्मणेन, द्विजेन, ब्रह्मचारिणा) ब्राह्मण ब्रह्मचारी के द्वारा, **प्रविश्य** = (हृदयं गत्वा अन्तर्गत्वा, आप्ततद्रहस्यम् उद्भाव्य, गोपनीयं प्रकटय्य) हृदय तक पहुँचकर (अन्तर्मन की बात जानने के लिए),

अभिहिता = (उक्ता) पूछे जाने पर, **सा** = (गौरी) वह पार्वती, **मनोगतं** = (हृदयवर्तिनं भावम्, मनोभिलाषं, हृदयस्थितम्) अपने मन की इच्छा को, **शंसितुम्** = (वक्तुम्, कथयितुम्, सूचयितुम्) कह पाने में, **न शशाक** = (नहि शक्ताभवत् अर्थात् लज्जयासमर्था न अभूत, समर्था नासीत्) समर्थ नहीं हुई। **अथो** = (अनन्तरम्) इसके बाद, **परिपार्श्ववर्तिनीम्** = (समीपस्थिताम्,) पास में बैठी हुई, **वयस्याम्** = (सखीम्) सखी को, **विवर्तितानञ्जननेत्रम्** = (विचालिताऽकज्जलनेत्रं नर्तिताकज्जललोचनम्) काजल से रहित नेत्रों को घुमा कर, **ऐक्षत** = (अवलोकितवती, अपश्यत्) देखा।

भावार्थ → ब्रह्मचारी ने पार्वती से उसके अभीष्ट पति के बारे में स्पष्टतः पूछा तो वह लज्जा के कारण कोई उत्तर ना दे सकी। इसलिए उस पार्वती ने अपने हृदय में स्थित अपनी प्रिय सखी को आँखों से संकेत करके ब्रह्मचारी के प्रश्न का उत्तर देने को कहा।

भावार्थः → इत्थं विप्रब्रह्मचारिणा पृष्टे सति लज्जया हृदयस्थं वरं वक्तुम् असमर्था सा पार्वती निरन्तरं पार्श्ववर्तिनीं सखीं स्वमनोभावकथनाय प्रेरयामासेति भावः।

व्याकरणम् → **इति** - अव्ययपद। **द्विजन्मना** - द्वे जन्मनी यस्य सः इति (बहु॰ समास) तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **प्रविश्य** - प्र उपसर्ग √विश प्रवेशने+क्त्वा, पुनः ल्यप्, आदेश - अव्ययपद। **अभिहिता** - अभि उपसर्ग √धा धातु 'दधाते' से हि आदेश, क्त तथा टाप् प्रत्यय - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **मनोगतं** - (तम् द्वि॰वि॰, एक॰व॰) मनसि गतः - मनोगतः (सप्त॰ तत्पु॰ समास)। **शंसितुं** - √शंस्+तुमुन् - अव्ययपद। **शशाक** - √शक्लृ शक्तौ+लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **अथो** - अव्ययपद। **परिपार्श्ववर्तिनीं** - परिपार्श्वे वर्त्तते तच्छीला, परिपार्श्ववर्त्तिनी ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **वयस्याम्** - वयसा तुल्या वयस्या ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विवर्तितानञ्जननेत्रम्** - अविद्यमानं अञ्जनं यस्मिन् तत् (बहु॰ समास) अनञ्जनम्, तच्च नेत्रम् (कर्मधा॰ समास) विवर्तितम् अनञ्जनं नेत्रं यस्मिन् कर्मणि तत् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ऐक्षत** - √ईक्ष् दर्शने+लङ् लकार, आत्मने॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **वयस्या** - आलिः सखी वयस्याथ पतिवत्नी सभर्तृका। **अथो** - मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ।

प्रसङ्ग → पार्वती से संकेत पाकर सखी ने ब्रह्मचारी को तप का प्रयोजन सविस्तार कहना शुरू किया -

सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं निबोध साधो तव चेत्कुतूहलम्।
यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं कृतं तपःसाधनमेतया वपुः॥

(सञ्जी०) सखीति - तस्याः पार्वत्या इयं **तदीया सखी** वयस्या **तम्**। 'वर्णः प्रशास्तः' इति क्षीरस्वामी। सोऽस्यास्तीति **वर्णिनं** ब्रह्मचारिणम्। ''वर्णाद्ब्रह्मचारिणि'' इतीनिप्रत्ययः। **उवाच** ब्रूते स्म। किमिति? **हे साधो** विद्वन्! **तव कुतूहलं चेत्**। श्रोतुमस्तीति शेषः। तर्हि **निबोध** अगवच्छ। आकर्णयेत्यर्थः। 'बुध अवगमगने' इति धातोर्भौवादिकाल्लोट। श्रोतव्यं किं तदाह - यस्मै लाभायेदं **यदर्थम्।** अर्थेन सह नित्यसमासः सर्वलिङ्गता चेति वक्तव्यम् इति वार्तिकनियमात्क्रियाविशेषणम्। **एतया** पार्वत्या **अम्भोजं** पद्मम् **उष्णवारणम्** आतपत्रम् **इव वपुः** शरीरं **तपःसाधनं कृतम्**। तपःप्रवृत्तिकारणमुच्यते श्रूयतामित्यर्थः॥

(शिशु०) सखीति - तदीया तस्या इयं तदीया सखी तं वर्णिनं ब्रह्मचारिणमुवाच। भो साधो! चेत्तव कुतूहलं तर्हि निबोध शृणु। यदर्थं यस्यार्थमेतया गौर्या वपुस्तपस्साधकं कृतं। किमिव? उष्णवारणं अम्भोजमिव। पद्मस्यातपवशाद्यथा म्लानिमा स्याद्वपुषस्तपसेत्यर्थः। 'वर्णी स्याद् ब्रह्मचारिणि' इति हैमः॥

अन्वयः → तदीया सखी तं वर्णिनम् उवाच। हे साधो! तव कुतूहलं चेत् निबोध। यदर्थम् एतया अम्भोजम् उष्णवारणम् इव वपुः तपःसाधनं कृतम्।

अनुवाद → उस पार्वती की सखी ने उस ब्रह्मचारी से कहा - हे साधु पुरुष! यदि इस विषय में (जानने की) उत्सुकता है तो सुनिए कि किसलिए इस पार्वती के द्वारा कमल को छतरी बनाने के सदृश अपने शरीर को तप का साधन बना लिया है।

शब्दार्थ → **तदीया** = (तस्याः इयम्, पार्वत्याः) पार्वती की, **सखी** = (वयस्या, सहचरी)सहेली ने, **तम्** = (पूर्वोक्तं)उस, **वर्णिनम्** = (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी को, **उवाच** = (अवोचत्, उक्तवती, अब्रवीत्) कहा, **साधो** = (भद्र पुरुष, विद्वन्) हे भद्र पुरुष! **तव** = (भवतः, ते) आपको, **चेत्** = यदि, **कुतूहलम्** = (श्रोतुं कौतुकम् अस्ति तर्हि) उत्सुकता है, **निबोध** = (अवगच्छ, शृणु, जानीहि) तो सुनिये, जानिए, **यदर्थम्** = (येन कारणेन, यत्फलाय) जिसके लिए, **एतया** = (अनया पार्वत्या) इस पार्वती

के द्वारा, **अम्भोजम्** = (पद्मम्, कमलम्) कमल को, **उष्णवारणम्** = (आतपत्रम्) छत्र की, **इव** = तरह, **वपुः =** (स्वकीयं शरीरम्,)शरीर को, **तपः साधनम्** = (तपःनियमोपकरणम्, तपोहेतुकम्) तपस्या का साधन, **कृतम्** = (विहितम्) कर लिया/बना लिया।

भावार्थ → पार्वती से सङ्केत पाकर सखी ने ब्रह्मचारी से कहा कि यदि आपको पार्वती अभीष्ट वर के सम्बन्ध में जानने की अभिलाषा है मैं बता रही हूँ कि किस कारण से पार्वती ने अपने कमल के समान कोमल शरीर को कठोर तप में लगा रखा है। आपका अनुमान सही है कि यह पार्वती अभीष्ट वर की प्राप्ति के लिए ही इतना कठोर तप कर रही है।

भावार्थः → पार्वतीसखी तं ब्रह्मचारिणमब्रवीत् - हे ब्रह्मचारी! तव श्रवणकुतूहल मस्ति चेत् शृणु यदर्थं मम सख्या पार्वत्या मृदुतरं स्वशरीरम् एतादृशे कठोर तपसि तपः साधनत्वेन नियोजितम्।

व्याकरणम् → **तदीया** - (तत्+छ (ईय) +टाप्) तस्या इयं - तदीया, तत् से वृद्धाच्छः सूत्र द्वारा 'छ' प्रत्यय ईय् आदेश स्त्रीत्व में टाप्, प्र०वि०, एक०व०। **सखी** - प्र०वि०, एक०व०। **तम्** - द्वि०वि०, एक०व०। **वर्णिनम्** - द्वि०वि०, एक०व०। **उवाच** - √वच् परिभाषणे+लिट् लकार, परस्मै०, प्र०पु०, एक०व०। **हे साधो** - सम्बो० एक०व०। **तव** - ष०वि०, एक०व०। **कुतूहलं** - प्र०वि०, एक०व०। **चेत्** - अव्ययपद। **निबोध** - नि उपसर्ग पूर्वक √बुध् अवगमने+लोट् लकार, म० पु० एक०व०। **वर्णिनम्** - (वर्ण+इनि) वर्णः प्रशस्तः, सोऽस्यस्तीति वर्ण+इन्+तम्, 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' सूत्रसे द्वि०वि०, एक०व०। **यदर्थम्** - यस्मै लाभाय इदं यदर्थम् - 'अर्थेन सह नित्यसमासः' से समास, - प्र०वि०, एक०व०। **अम्भोजम्** - अम्भसि जायते इति अम्भोजः (उपपद तत्पु० समास) तम्, द्वि०वि०, एक०व० 'सप्तम्यां जनेर्डः' से ड, अम्भस्+जन्+ड। **उष्णवारणम् इव** - उष्णं वार्यतेऽनेनेति उष्णवारणम् तत् - प्र०वि०, एक०व०। **वपुः -** द्वि०वि०, एक०व०। **तपः साधनम्** - तपसः साधनम् (ष० तत्पु० समास) - प्र०वि०, एक०व०। **कृतम् -** √कृ+क्त - प्र०वि०, एक०व०।

कोशः → वर्णिन् - तपः क्लेशः सहो दान्तो वर्णिनो ब्रह्मचारिणः। **साधु** - महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः। **अम्भोज** - पुण्डरीकं सिताम्भोजमथ रक्तसरोरुहे।

अलङ्कार → "अम्भोजं उष्णवारणम् इव वपुः तपः साधनं कृतम्" में उपमालङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

53

प्रसङ्गः → प्रस्तुत श्लोक में पार्वती की सखी ब्रह्मचारी को स्पष्टतः बता रही है कि पार्वती शिव को ही पति के रूप में पाने के लिए तप कर रही है -

इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति॥

(सञ्जी०) इयमिति। **मानिनी** इन्द्राणीप्रभृतीरतिशय्य वर्तितव्यमित्यभिमानवती **इयं** पार्वती **अधिश्रियः** अधिकैश्वर्यान् **महेन्द्रप्रभृतीन्** इन्द्रादींश्चतसृणां दिशामीशान् **[चतुर्दिगीशान्]** इन्द्रवरुणयमकुबेरान्। ''तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'' इत्यनेनोत्तरपदसमासः। **अवमत्य** अवधूय मदनस्य निग्रहात् निबर्हणाद्धेतोः। अकामुकत्वादित्यर्थः। रूपेण सौन्दर्येण हार्यो वशीकरणीयो न भवतीति **अरूपहार्यं** पिनाकः पाणौ यस्य तं **पिनाकपाणिं** हरम्। प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः इति साधु। **पतिं** भर्तारमाप्तुमिच्छति। एतेन संकल्पावस्था सूचिता॥

(शिशु०) इयमिति। इयं गौरी अधिश्रियो बहुलक्ष्मीकान् महेन्द्रप्रभृतीन् शक्रादीन् चतुर्दिगीशानवमत्य त्यक्त्वा मदनस्य निग्रहात् भस्मीकरणादरूपहार्यं न सौन्दर्यवश्यं पिनाकपाणिं शम्भुं पतिमाप्तुमिच्छति॥

अन्वयः → मानिनी इयम् (पार्वती) अधिश्रियः महेन्द्रप्रभतीन् चतुर्दिगीशान् अवमत्य मदनस्य निग्रहात् अरूपहार्यं पिनाकपाणिं (शिवं) पतिं आप्तुम् इच्छति।

अनुवाद → स्वाभिमानी यह (पार्वती) ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र आदि चारों दिक्पालों की अवमानना (त्याग) कर के कामदेव को दण्डित करने के कारण तथा मात्र सौन्दर्य से ही प्रसन्न न होने वाले शिव को पति के रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा रखती है।

शब्दार्थ → **मानिनि** = (स्वाभिमानि, अभिमानवति!) स्वाभिमानी, मानवती, **इयम्** = (एषा, पार्वती) यह मेरी सखी पार्वती, **अधिश्रियः** = (अधिकैश्वर्यवान्, महदैश्वर्यवतः, अधिकशोभावतः) अत्यधिक ऐश्वर्य सम्पन्न, **महेन्द्रप्रभृतीन्** = (इन्द्रादीन्, महेन्द्रादीन्) इन्द्र आदि, **चतुर्दिगीशान्** = (दिक्चतुष्टयाधिपतीन्, इन्द्रयमकुबेरवरुणान्, चतुर्दिक्पालान्) चारों दिक्पालों (इन्द्र पूर्व के, यम दक्षिण के, वरुण, पश्चिम के तथा उत्तर के कुबेर दिक्पाल कहे गये हैं) को, **अवमत्यम्** = (अवधूय, अनादृत्य तिरस्कृत्य) ठुकरा कर, अनादर करके, **मदनस्य** = (कामदेवस्य) कामदेव

का, **निग्रहात्** = (निर्वहणात्, अवरोधात्, नाशात्) निग्रह, नियन्त्रण करने के कारण (अर्थात् काम के दहन के पश्चात् काम भाव से रहित होकर), **अरूपहार्यम्** = (सौन्दर्येण अवशीकरणीयं असौन्दर्यवश्यम्, सौन्दर्यानाकर्षणीयम्) सौन्दर्य से वशीभूत न होने वाले, **पिनाकपाणिम्** = (पिनाकधनुर्धारिणम्, शिवम्) हाथ में 'पिनाक' नामक धनुष को धारण करने वाले भगवान् शिव को, **पतिम्** = (भर्तृरूपेण, वररूपेण, भर्तारम्) पति के रूप में, **आप्तुम्** = (प्राप्तुम्, अधिगन्तुम्) प्राप्त करना, **इच्छति** = (वाञ्छति, अभिलषति) चाहती है।

भावार्थ → हमारी यह सखी अत्यन्त स्वाभिमानी है। यह समस्त धन और ऐश्वर्य से सम्पन्न इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण इन चारों दिक्पालों में से किसी को स्वीकार न करके सिर्फ महादेव शिव को ही पति के रूप में प्राप्त करना चाहती है। क्योंकि शिव ने पार्वती के समक्ष ही कामदेव को क्रोधवश भस्म करके दण्डित किया था। यद्यपि शिव ने तप भङ्ग होने पर थोड़ी देर पार्वती को देखा था किन्तु उसके रूप से आकर्षित नहीं हुए। अतः अपने सौन्दर्य से प्रभावित करके प्राप्त करने में अक्षम पार्वती तप के द्वारा शिव को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है।

भावार्थः → स्वकुलाभिमानी एषा मे सखी पार्वती ऐश्वर्यसम्पन्नान् चतुर्दिक्पतीन् इन्द्रयमवरूणकुबेरान् अनादृत्य शङ्करं पति रूपेण कामयमानां कामदहनदर्शनानन्तरं तस्य रूपहार्यत्वाभवं निश्चित्य तत्प्राप्तये उपायान्तरमनवलोकयन्ती तत्प्राप्त्युपायत्वेन तपश्चरणमेव स्वीकृतवती।

व्याकरणम् → **मानिनी** - (मान+इनि+ङीप्) प्रशस्तः मानः अस्या अस्ति इति - सम्बो॰, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **इयम्** - इदम् स्त्रीलिङ्ग प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अधिश्रियः** - अधिका श्रीः येषां ते अधिश्रियः (बहु॰ समास) तान् - द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **महेन्द्रप्रभृतीन्** - महान् चासौ इन्द्रः इति महेन्द्रः (कर्मधा॰ समास), महेन्द्रः प्रभृतिः येषां ते महेन्द्रप्रभृतयः तान् (बहु॰ समास) - द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **चतुर्दिगीशान्** - चतसृणां दिशाम् ईशाः चतुर्दिगीशाः (उत्तरपदतत्पु॰ समास) तान् द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **अवमत्य** - (अव+√मन्+ल्यप्) अव उपसर्ग √मन् धातु+क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश, तुक् आगम होकर - अव्ययपद। **मदनस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **निग्रहात्** - (नि+√ग्रह+अप्) पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **अरूपहार्यम्** - (√ह्र+ण्यत्) हर्तुं शक्यः हार्यः, रूपेण हार्यः रूपहार्यः, न रूपहार्यः अरूपहार्यः (न तत्पुरुष) तम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **पिनाकपाणिं** - पिनाकः पाणौ

यस्य सः - (बहु॰ समास) तम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **पतिम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **आप्तुम्** - √आप्+तुमुन्, अव्ययपद। **इच्छति** - √इच्छ्+लट् लकार, परस्मै॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **मदन** - मदनो मन्मथो मारः। **पिनाक** - पिनाकोऽजगवं धनुः। **पाणि** - पञ्चशाखः शयः पाणिः। **पति** - धवः प्रियः पतिर्भर्ता।

54

प्रसङ्ग → कामदेव द्वारा चलाए गए बाण को हुँकार मात्र से शिव ने वापस लौटा दिया किन्तु उस बाण ने प्रर्वती के हृदय में प्रवेश किया अर्थात् पार्वती के हृदय में शिव के प्रति कानभावना उत्पन्न हो गया -

असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरा पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद्विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः॥

(सञ्जी॰) असह्येति। **पुरा** पूर्वे **[असह्यहुङ्कारनिवर्तितः]** असह्येन सोढुमशक्येन हुंकारेण रौद्रेण निवर्तितः। अतएव **पुरारिं** हरम् **अप्राप्तमुखः** अप्राप्तफलो **विशीर्णमूर्तेः** नष्टशरीरस्य अपि **पुष्पधन्वनः** कामस्य शिलीमुखो बाण इमां पार्वतीं **हृदि [व्यायतपातम्]** व्यायतः। सुदूरावगाढ इति यावत्। तादृक्पातः प्रहारो यस्मिन्कर्मणि तत्तथा **अक्षिणोत्** अकर्शत्। दग्धदेहस्यापि मार्गणो लग्नः। (मृदुः सर्वत्र बाध्यते) इति भावः। अनेन 'विवृण्वती शैलसुतापि भावम्' इत्यत्रोक्तं चक्षुःप्रीतिमनः सङ्ज्ञाख्यमवस्थाद्वयमनन्तरावस्थोपयोगितयानूद्य कार्श्यावस्था सूचिता॥

(शिशु॰) असह्येति। पुष्पधन्वनः कामस्य शिलीमुखो बाणोऽसह्यहुंकारनिवर्तितो दुःसहेन हुंकारेण परावर्तितः स्मरारिं शम्भुमप्राप्तमुखोऽप्राप्तं मुखमग्रभागो यस्य स इमां व्यायतपातं दीर्घपातं यथा स्यात् तथा हृद्यक्षणोद्धन्ति स्म। कीदृशस्य पुष्पधन्वनो विशीर्णमूर्तेरपि दाहाद्गलितवपुषोऽपि॥

अन्वयः → पुरा असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरारिम् अप्राप्तमुखः विशीर्णमूर्तेः अपि पुष्पधन्वनः शिलीमुखः इमां हृदि व्यायतपातम् अक्षिणोत्।

अनुवाद → बहुत पहले (शिव को) असहनीय हुँकार ध्वनि से लौटाए गए शिव तक नहीं पहुँच सकने वाले, नष्ट शरीर वाले, फुलों के धनुष वाले (कामदेव के) बाण ने मेरी इस सखी के हृदय में बहुत गहराई तक प्रहार किया है।

शब्दार्थ → **पुरा** = (पूर्वम् ,पूर्वस्मिन्काले) बहुत पहले, **असह्यहुङ्कारनिवर्तितः** = (शिवस्य दुःसहहुङ्कृतिपरावर्तितः, असहनीयहुङ्कारपराङ्मुखीकृतः) असहनीय हुङ्कार से लौटाया हुआ, **पुरारिम्** = (शिवम् हरं)

शिव को, **अप्राप्तमुखः** = (अप्राप्तफलः, अलब्धफलः, अप्राप्ताग्रभागः) अपने लक्ष्य में सफलता बिना प्राप्त किये, **विशीर्णमूर्तेः अपि** = (नष्ट-शरीरस्य, विनष्टदेहस्य अपि, नष्टकायस्य) नष्ट शरीर वाले होने पर भी, **पुष्पधन्वनः** = (कामदेवस्य, मदनस्य) फूलों के धनुष वाले अर्थात् कामदेव के, **शिलीमुखः** = (बाणः, शरः)बाण ने, **इमाम्** = (पार्वतीम्) इस पार्वती के, **हृदि** = (वक्षसि, हृदये) हृदय में, **व्यायतपातम् =** (तीव्र-प्रहारेण, सुदीर्घप्रहारम्) अत्यन्त तीव्र प्रहार से, **अक्षिणोत् =** (अकर्शत्, अकरोत्, समपीडयत्, अपीडयत्) पीड़ित कर दिया।

भावार्थ → पौराणिक कथा के अनुसार तारकासुर के अत्याचार से पीड़ित देवतागण ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा ने उपाय बताया कि यदि शिव और पार्वती का विवाह हो जाए तो उनसे उत्पन्न पुत्र ही तारकासुर का वध कर सकेगा। शिव की अनवरत तपस्या से ऊबकर देवताओं ने तपभङ्ग करने एवं पार्वती के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के उद्देश्य से कामदेव को पुष्पबाण चलाने के लिए प्रेरित किया। किन्तु वह पुष्पबाण शिव की क्रोधपूर्ण हुँकार से वापस लौट गया। किन्तु भस्म हुए उस कामदेव के बाण ने अपने तीव्र प्रहार के द्वारा पार्वती के हृदय को बहुत पीड़ित कर दिया।

भावार्थः → बाणप्रहरणानन्तरं कपर्दिक्रोधानलेन कामदेवे भस्मीभूते शिवमेव लक्ष्यीकृत्य सवेगं पलायमानः कामदेवस्य पुष्पबाणः शिवहुङ्कारमात्रेण परावर्तितः सन् शिवं सेवमानया तत्पार्श्ववर्तिन्याः पार्वत्याः हृदये प्रविष्टः इति भावः।

व्याकरणम् → **पुरा** - अव्ययपद। **असह्यहुंकारनिवर्तितः** - (न+√सह्+यत्, निवर्तितः = नि+√वृत्+णिच्+क्त, प्र॰वि॰, एक॰व॰) न सह्याः असह्याः (नञ् तत्पु॰ समास), असह्याः चासौ हुङ्कारश्च (कर्मधा॰ समास) असह्यहुङ्कारेण निवर्तितः इति असह्यहुङ्कारनिवर्तितः (तृ॰ तत्पु॰ समास) ; **पुरारिम्** - पुराणाम् अरिः पुरारिः तम् - (ष॰ तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अप्राप्तमुखः** - न प्राप्तं - अप्राप्तं मुखं यस्य स - (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **विशीर्णमूर्तेः -** (वि+√शृ+क्त) विशीर्णा मूर्तिः यस्य सः (बहु॰ समास) तस्य - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पुष्पधन्वनः** - (बहु॰ समास ष॰वि॰, एक॰व॰) पुष्पाणि एव धनुः यस्य सः पुष्पधन्वा तस्य। **शिलीमुखः** - (प्र॰वि॰, एक॰व॰) शिली मुखे यस्य सः शिलीमुखः (बहु॰ समास) तेन। **इमाम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **हृदि** - सप्त॰ वि॰, एक॰व॰।

व्यायतपातम् - (वि+आ+√यम्+क्त, पातम् = √पत्+घञ्) विशेषेण आयतः व्यायतः (सुप्सुपा समास) व्यायतः पातः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा भवति तथा - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अक्षिणोत्** - √क्षिणु हिंसायाम्+लङ् लकार, परस्मै॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **पुरा** - स्यात् प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा। **शिलीमुखः** - अलिबाणौ शिलीमुखः। **आयत** - सूदूरं दीर्घमायतम्। **मूर्ति** - मूर्त्तिः काठिन्यकाययो। **पुष्पधन्वा** - पुष्पधन्वा रतिपतिः मकरध्वज आत्मभूः।

55

प्रसङ्ग → सखी प्रस्तुत श्लोक में पार्वती की शिव के प्रति प्रेम के कारण कामपीड़ाजन्य व्याकुलता तथा शारीरिक का वर्णन कर रही है -

तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं तुषारसंघातशिलातलेष्वपि॥

(सञ्जी॰) तदेति। तदेति। छेदः। **तदा प्रभृति**। तत आरभ्येत्यर्थः। सप्तम्यर्थस्यापि दाप्रत्ययस्य पञ्चम्यर्थे लक्षणा प्रभृतियोगे पञ्चमीनियमात्। **पितृर्गृहे उन्मदना** उत्कटमन्मथा **[ललाटिकाचन्दनधूसरालका]** ललाटस्थालंकारो ललाटिका तिलकः। 'कर्णललाटात्कनलंकारे' इति कन्प्रत्ययः। तस्याश्चन्दनेन धूसरा धूसरवर्णा अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्याः सा तथोक्ता **बाला** पार्वती **जातु** कदाचिदपि **[तुषारसङ्घातशिलातलेषु]** तुषारसंघातास्तुषारघनास्त एव शिलास्तासां तलेषूपरिभागेषु **अपि निर्वृतिं** सुखं **न लभते स्म।** एतेनारत्यपरसंज्ञा विषयविद्वेषावस्था द्वादशावस्थापक्षे संज्वरश्च व्यज्यते॥

(शिशु॰) तदेति। तदा प्रभृति तत आरभ्य पितुर्गृहेपि बाला जातु कदाचित्तुषारसंघातशिलातलेष्वपि निर्वृतिं सुखं न लभतेस्म। कीदृशी? ललाटिकाचन्दनधूसरालका सुवर्णघटितललाटालंकारविशेषस्तस्याश्चन्दनं तेन धूसरा अलका यस्याः सा। तथा उन्मदना कामार्ता॥

अन्वयः → तदा प्रभृति पितुः गृहे उन्मदना ललाटिकाचन्दनधूसरालका बाला जातु तुषारसंघातशिलातलेषु अपि निर्वृतिं न लभते स्म।

अनुवाद → उसी समय से पिता के घर में उत्कट कामपीड़ा वाली मस्तक पर लगे चन्दन के कारण धूसर (श्वेत, पीली) केशों वाली यह बालिका कभी भी वर्फ की शिलाओं पर भी सुख (शान्ति) को नहीं प्राप्त करती थी।

शब्दार्थ → **तदा प्रभृति** = (ततः आरभ्य, शरपतनान्तरकालादारभ्य,

तत्कालादारभ्य, तत आदाय) तब से, **पितुः** = (जनकस्य, जनयितुः) पिता के, **गृहे** = (गेहे, भवने, सद्मनि) घर में, **उन्मदना** = (उत्कटमन्मथा तीव्र-कामयुक्ता, उत्कटकामविकारा)तीव्र कामभाव वाली, **ललाटिकाचन्दन-धूसरालका** = (मस्तकतिलकरूक्षकुन्तला, मस्तकमलयजपाण्डुअलका, तिलकचन्दनधूसरकेशा) ललाट पर लगाए गये तिलक के चन्दन से पीली अलकों/बालों वाली, **बाला** = (कन्या, पार्वती) यह पार्वती, **जातु** = (कदाचित्) कभी, **तुषारसङ्घातशिलातलेषु** = (सघनहिमयुक्तशिला-तलेषु, हिमसमूहपाषाणतलेषु) जमी हुई बर्फ वाली चट्टानों पर, **अपि** = भी, **निर्वृतिम्** = (शान्तिं सुखं वा)सुख को, **न** = (नहि) नहीं, **लभते स्म** = (प्राप्नोति स्म, अवाप्नोत्, न विन्दति स्म)प्राप्त करती थी।

भावार्थ → शिव जी के प्रति प्रेमासक्त पार्वती कामदेव के बाण से आहत होकर अत्यन्त व्याकुल रहने लगी। अपने कामजन्य सन्ताप की शान्ति के लिए पार्वती ने अपने सुन्दर मस्तक पर बार- बार चन्दन का लेप लगाया जिससे उसकी अलकें (बाल) धूसर (मरमैले) रङ्ग की हो गई। पार्वती अपने शरीर के ताप को शान्त करने के लिए हिमालय की बर्फयुक्त शिलाओं पर भी लेटती थी; किन्तु उसे किसी भी उपाय से शान्ति नहीं मिली।

भावार्थः → कामबाणपतनकालादेव हिमालयप्रदेशे जायमानमदनवि-कृतिः तच्छमनाय शीतलोपचारेण भूयोभयः भालस्थले लिप्तचन्दना रू-क्षकेशा पार्वती सघनहिमसनाथशिलातलेष्वपि मदनदाहशमनं नागच्छत्। कामबाणपतनानन्तरं पार्वती कामवेदनया अतिशयं पीडिता भभूव। सा मद-नविकारं शमयितुं मस्तके चन्दनलेपं करोति स्म येन भालस्थले लम्बिताः केशाः धुसराः जाताः। पुनः हिमशिलासु अपि शयनं करोति स्म। इत्थं विविधैः उपायैः कृतेऽपि पार्वति कामदाहशमने समर्ता न बभूव इति।

व्याकरणम् → **तदाप्रभृति** - ये दो पद हैं - तदा - सप्तमी, प्र-तिरूपक समयवाची अव्ययपद। **प्रभृति** - अव्ययपद। **पितुः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **गृहे** - सप्त॰, एक॰व॰। **उन्मदना** - उत्कटः उद्गतः वा मदनः यस्याः सा (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ललाटिकाचन्दनधूसरा-लका** - (ललाट+कन्+टाप्) ललाटे भवः अलङ्कारः ललाटिका, 'कर्ण-ललाटात्कनलङ्कारे' सूत्र से कन् प्रत्यय, स्त्रीत्व में टाप्। ललाटिकायाः चन्दनं ललाटिकाचन्दनं (ष॰ तत्पु॰ समास) ललाटिकाचन्दनेन धूसराः अलकाः यस्याः सा (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **बाला** - प्र॰वि॰,

एक॰व॰। **जातु** - अव्ययपद। **तुषारसंघातशिलातलेषु** - (सम्+√हन्+-क्त) तुषाराणां सङ्घाताः (ष॰ तत्पु॰ समास), तुषारसङ्घात एव शिलाः, तासां तलानि - तुषारसङ्घातशिलातलानि तेषु - सप्त॰वि॰, बहु॰व॰। **निर्वृति** - निर् उपसर्ग √वृत् धातु+क्तिन् द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **लभते स्म** - √लभ्+लट् लकार, आत्मने॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰, स्म - अव्यय - अतीत के अर्थ → में।

कोशः → **पिता** - तातस्तु जनकः पिता। **गेह** - गृहं गेहोदववसिते। **ललाटिका** - बालपाश्या पारितथ्या पत्रपाश्या ललाटिका। **चन्दन** - गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीचन्दनोऽस्त्रियाम्। **धूसर** - ईषत्पाण्डुस्तुधूसरः। **अलक** - अलकाश्चूर्णकुन्तलाः। **जातु** - कदाचिज्जातु सार्धन्तु। **तुषार** - तुषारः शीतलः शीतो हिमः सप्तान्यलिङ्गकाः। **संघात** - स्तोमौघ निकरव्रातवारसंघातसञ्चयाः। **शिला** - पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत्॥ इत्यमरकोशः।

अलंकार → दीपक

56

प्रसङ्ग → विरह की ज्वाला से संतप्त पार्वती शिव के चरित का गान करते हुए विलाप कर रही है -

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम्।
अनेकशः किंनरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयत्॥

(सञ्जी॰) उपात्तेति। **इयं पिनाकिनः** शम्भोः **चरिते** त्रिपुरविजयादिचेष्टित **उपात्तवर्णे** प्रारब्धगीतक्रमे। 'गीतक्रमे स्तुतौ वेदे वर्णशब्दः प्रयुज्यते' इति हलायुधः। **[सबाष्पकण्ठस्खलितैः]** सवाष्पे गद्गगे कण्ठे स्खलितैर्विशीर्णैः **पदैः** सुप्तिङन्तरूपैः करणैः। **[वनान्तसङ्गीतसखीः]** वनान्ते संगीतेन निमित्तेन सखीर्वयस्याः **किन्नरराजकन्याका अनेकशः** बहुशः **अरोदयत्** अश्रुमोक्षमकारयत्। हरचरितगानजनितमदनवेदनामेनां वीक्ष्य किन्नर्योऽपि रुरुदुरिति भावः। अत्र वर्णस्खलनलक्षणकार्योक्त्या पुनःपुनस्तत्कारणीभूतमूर्छावस्थाप्रादुर्भावो व्यज्यतेऽन्यथा सखीरोदनानुपपत्तेरिति। द्वादशावस्थापक्षे तु प्रलापावस्था च व्यज्यते। 'प्रलापो गुणकीर्तनम्' इत्यालंकारिकाः॥

(शिशु॰) उपात्तेति। इयं गौरी पिनाकिनः शम्भोश्चरिते त्रिपुरवधादिके कर्मण्युपात्तवर्णे सति। उपात्ताः स्वीकृता वर्णा यत्र तस्मिन् गीयमान इत्यर्थः। सवाष्पकण्ठैः स्खलितैः सवाष्पः कण्ठो येषु तैरेवाऽतएव स्खलितैः

पदैर्वचोभिर्वनान्ते संगीतसखीरुपवने संगीतसहायकर्त्रीः किन्नरराजकन्यकाः किन्नरीरनेकशो बहुवारमरोदयत् रोदयति स्म। हरचरितश्रवणजनितमदनव्यथामेनां वीक्ष्य किन्नर्योपि रुरुदुरिति भावः॥

अन्वयः → पिनाकिनः चरिते उपात्तवर्णे (सति) इयं सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैः वनान्तसंगीतसखीः किन्नरराजकन्यकाः अनेकशः अरोदयत्।

अनुवाद → शिव के चरित्र सम्बन्धी गीतों के गाये जाने पर यह पार्वती आँसू भरे गले से अस्पष्ट निकलने वाले पदों (शब्दों) के द्वारा वन प्रदेश में अपने साथ गीत गाने वाली साखियों किन्नरराजकुमारियों को बार- बार रुला देती थी।

शब्दार्थ → **पिनाकिनः** = (शिवस्य, शङ्करस्य) शिव के, **चरिते** = (चरित्रे त्रिपुरविजयादिचेष्टिते, कथानके) आख्यानों वाले, **उपात्तवर्णे (सति)** = (प्रारब्धगीतक्रमे, गीयमाने) गीत का प्रारम्भ करने पर, **इयम् =** (एषा पार्वती) यह पार्वती, **सवाष्पकण्ठस्खलितैः** = (साश्रुगद्गद्कण्ठनिर्गतैः, गद्गदस्वरोच्चारितैः) आंसू से गद्गद् (रुंधे) हुए गले से अस्पष्ट, **पदैः** = (शब्दैः) शब्दों के द्वारा, **वनान्तसङ्गीतसखीः** = (अरण्यमध्यगानवयस्या वनप्रान्तरमध्यगीतवयस्याः, वनप्रदेशगानसहचरीः) वन प्रदेश में सहगान करने के कारण सखी बनी हुई, **किन्नरराजकन्यकाः** = (तुरङ्गमुखराजकुमारीः, किम्पुरुषनृपसुताः) किन्नरराज की पुत्रियों को, **अनकेशः** = (बहुशः, अनेकवारम्, बहुवारम्) बहुत बार**, अरोदयत्** = (अश्रुमोक्षमकारयत्, रोदयामास) रुला देती थी।

भावार्थ → हिमालय के वनप्रदेश में किन्नर राजाओं की पुत्रियाँ, पार्वती और उसकी सखियाँ मिलकर गीत गाया करती थी। गीत गाने के क्रम में यदि कोई शिव के चरित्र सम्बन्धित गीत आ जाते थे तो पार्वती का गला आँसुओं से भर जाता था। अश्रुपूर्ण और गद्गद कण्ठों वाली पार्वती के मुख से गीत के शब्द भी अस्पष्ट और टूटे फूटे निकलते थे। ऐसी पार्वती की उस दयनीय दशा को देखकर किन्नर राजकुमारियाँ भी रोने लगती थीं। यहाँ काम की दश अवस्थाओं के अन्तर्गत विलाप का वर्णन किया गया है।

भावार्थः → यदा इयं मे सखि पार्वती सङ्गीताभ्यासव्याजेन किन्नरकुमारीणां समक्षे शिवचरितं गायति स्म, तदा शिवस्वरूपस्मरणेन सञ्जातविरहवेदनया गद्गदकण्ठेन अस्पष्टोच्चारणं निशम्य पार्श्वस्थाः किन्नरराजकुमार्यः अपि रुदन्ति स्म।

व्याकरणम् → **इयम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पिनाकिनः** - पिनाकः अस्यास्तीति - पिनाकी, इनि प्रत्यय, ष॰वि॰, एक॰व॰। **चरिते** - √च-र्+क्त, सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **उपात्तवर्णे -** (उप+आ+√दा+क्त)) उपात्तः वर्णः यस्मिन् सः उपात्तवर्णः (बहु॰ समास) तस्मिन सप्त॰वि॰, ए॰व॰। **सवाष्पकण्ठस्खलितैः -** (स्खल्+क्त) वाष्पेण सहितः सवाष्पः (सहपूर्व बहु॰ समास), सवाष्पश्चासौ कण्ठश्च (कर्मधा॰ समास), सबाष्पकण्ठे स्खलितानि (सप्त॰ तत्पु॰ समास) तैः, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **पदैः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **वनान्तसंगीतसखीः** - (द्वि॰वि॰, बहु॰व॰) वनस्य अन्तः वनान्तः (ष॰ तत्पु॰ समास)। वनान्तः वनान्ते सङ्गीतम् इति वनान्तसङ्गीतम् (सप्त॰ तत्पु॰ समास) तेन निमित्तेन/वनान्तसङ्गीतेन सख्यः इति वनान्तसङ्गी-तसखीः (तृ॰ तत्पु॰ समास) ताः। **किन्नरराजकन्यकाः -** किन्नराणां राजा किन्नरराजः, तस्य कन्यकाः (ष॰ तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **अनेकशः** - अनेक+शस्, बीप्सा के अर्थ में, अव्ययपद। **अरोदयत्** - √रुदिर् अश्रुविमोचने+णिच्+लङ् लकार, परस्मै॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **वर्ण** - वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ स्तुतौ वर्णन्तु वाक्षरे। **पिनाकी** - पिनाकी प्रथमाधिपः। **वाष्पं** - वाष्पमूष्माश्रुः। **कण्ठ** - कण्ठो-गलोऽथ ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि। **किन्नर** - स्यात्किन्नरः किम्पुरु-षस्तुरङ्गवदनो मयुः। इत्यमरकोशः। **वर्ण -** गीतक्रमे स्तुतौ वेदे वर्णशब्दः प्रयुज्यते। हलायुधकोशः।

57

प्रसङ्ग → कामपीड़ा जन्य पीड़ा की दशाओं के अन्तर्गत स्वप्नावस्था का वर्णन इस श्लोक में किया जा रहा है -

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना॥

(सञ्जी॰) त्रिभागेति। किंचेति चार्थः। **[त्रिभागशेषासु]** शिष्यत इति शेषः। कर्मणि घञ्। त्रिभ्यो भागेभ्यः शेषास्ववशिष्टासु। यद्वा रात्रेस्त्रियाम-त्वेन प्रसिद्धत्वात्तृतीयो भागस्त्रिभागः। संख्याशब्दस्य वृत्तिविषये पूरणार्थत्व-मिष्यते। यथा 'शतांशः' सहस्रांशः। इति त्रिभागः शेषो यासां तासु **निशासु क्षणं** क्षणमात्रं **नेत्रे निमील्य** मीलयित्वा **सहसा** सद्यः। **हे नीलकण्ठ! क्व व्रजसि** कुत्र गच्छसीति **[अलक्ष्यवाक्]** अलक्ष्या निर्विषया वाग्वचनं यस्याः सा तथोक्ता। तथा **[असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना]** सत्ये मिथ्याभूते कण्ठेऽर्पितं बाहुबन्धनं यस्याः सा तथा सती **व्यबुध्यत** विबुद्धवती। एतेन

जागरोन्मादौ सूचितौ॥

(शिशु०) त्रिभागेति। इयं गौरी त्रिभागशेषासु शिष्यन्ते इति कर्मणि घञ्। त्रिभ्यो भागेभ्यः शेषास्ववशिष्टासु। यद्वा रात्रेस्त्रियामत्वेन प्रसिद्धत्वादव-शिष्टप्रभातप्रहरासु क्षणं नेत्रं निमील्य सहसा व्यबुध्य प्रबुद्धा। कीदृशी भो नीलकण्ठ! क्व व्रजसीत्यलक्ष्यवागप्रकटवचना। तथा असत्यकण्ठार्पिता-बाहुबन्धनाऽसत्यकण्ठेऽर्पितं बाहुबन्धनं यया सा। अस्या विरहवशान्निद्रैव नायाति। यद्यायाति कदाचित्तर्हि स्वप्नेपि शम्भुमेव पश्यतीति भावः।।

अन्वयः → त्रिभागशेषासु निशासु क्षणं नेत्रे निमील्य सहसा- "हे नीलकण्ठ! क्व व्रजसि" इति अलक्ष्यवाक् असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना च व्यबुध्यत।

अनुवाद → रात्रि के तृतीय प्रहर के शेष रह जाने पर क्षण भर के लिए अपने नेत्रों को बन्द करके अचानक- "हे शिव! कहाँ जा रहे हो?" इस प्रकार असम्बद्ध प्रलाप करती हुई तथा काल्पनिक गले में अपनी बाहुपाश को डालती हुई वह पार्वती जाग जाती थी।

शब्दार्थ → **त्रिभागशेषासु** = (तृतीयभागावशिष्टासु, त्र्यंशावशिष्टा-सु वा) रात्रि के तीसरे भाग में शेष अर्थात् पहले भाग में, **निशासु =** (रात्रिषु, क्षपासु) रात्रियाँ रह जाने पर, **क्षणं =** (क्षणमात्रम्) एक क्षण के लिए, **नेत्रे** = (नयने) नेत्रों को, **निमील्य** = (मीलयित्वा) बन्द कर, **सहसा** = (अकस्मात्, सद्यः) अचानक, **नीलकण्ठ** = (शिव, शितिक-ण्ठ) हे शिव, **क्व** = (कुत्र) कहाँ, **व्रजसि** = (यासि, गच्छसि) जा रहे हो, **इति** = (एवम्) इस प्रकार से, **अलक्ष्यवाक्** = (असम्बद्धभाषिणी, निर्विषयवचना) असंगत वाणी/बड़बडाती हुई आवाज वाली, **च** = तथा, **असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना =** (मिथ्याभूतगलनिक्षिप्तभुजबन्ध-ना, मिथ्याकण्ठार्पितभुजबन्धना) कल्पना में (शिव के) गले में अपनी भुजाओं के बन्धन को डालती हुई, **व्यबुध्यत** = (विबुद्धवती, अजागरीत्, प्रबुद्धाऽऽसीत्) जाग जाती थी।

भावार्थ → पार्वती की काम- अवस्थाओं का वर्णन करते हुए सखी ब्रह्मचारी से कह रही है कि पार्वती शिव के वियोग के कारण काम से सन्तप्त होने के कारण रात्रि में ठीक से शयन भी नहीं कर पाती थी। यदि रात्रि के तृतीय प्रहर में किसी प्रकार निद्रा आ भी जाए तो स्वप्न में शिव को जाते हुए देखकर कुछ - कुछ असंगत सा बोलने लगती थी - "हे शिव! मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हो?" स्वपनावस्था में शिव को अपने

समीप उपस्थित मानकर उसके गले में अपने बाहुपाश को डालकर आलिङ्गन करने की चेष्टा करते हुए जाग जाती थी।

भावार्थः → इयं मे सहचरी विरहवेदनया सम्यक्तया निद्रां न लभते स्म। सा रात्रौ चतुर्थे प्रहरे क्षणं नेत्रं निमील्य निद्रावस्थायां स्वपने शिवं विलोक्य सहसा "हे शिव! कुत्र गच्छति?" इति उक्त्वा कल्पनायां उपस्थितस्य शिवस्य गले स्वभुजबन्धनम् असम्बद्धप्रलापं च कुर्वन् जागर्ति स्म।

व्याकरणम् → **त्रिभागशेषासु निशासु** - (√शिष्+घन्) तृतीयश्चासौ भागश्च त्रिभागः, सः शेषः यासां ताः (बहु॰ समास) **तासु** - सप्त॰ वि॰, बहु॰व॰। **निशासु** - सप्त॰वि॰, बहु॰व॰। **क्षणम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **नेत्रे** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **निमील्य** - (नि+√मील्+ल्यप्) अव्ययपद, नि उपसर्ग पूर्वक √मील निमेषणे+क्त्वा एवं उसके स्थान पर ल्यप् होकर। **सहसा** - अव्ययपद। **हे नीलकण्ठ** - सम्बो॰ एक॰व॰, नीलः कण्ठः यस्यः सः इति नीलकण्ठः (बहु॰ समास)। **क्व** - अव्ययपद। **व्रजसि** - व्रज्+लट् लकार, परस्मै॰, मध्यमपुरुष, एक॰व॰। **इति** - अव्ययपद। **असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना** - न सत्यः असत्यः, चासौ कण्ठश्च (कर्मधा॰ समास) असत्यकण्ठे अर्पितं बाहुबन्धनं यया सा (बहु॰ समास)। बाहुभ्यां बन्धनं (तृ॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अलक्ष्यवाक्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰, न लक्ष्या अलक्ष्या वाक् यस्या सा इति (बहु॰ समास)। **च** - अव्ययपद। **व्यबुध्यत** - वि √बुध् अवगमने (दिवादि गण) +श्यन्+लङ् लकार, आत्मनेपद, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **भाग** - अंशभागौ तु वष्टके। **सहसा** - अतर्किते तु सहसा। **इति** - हेतु प्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिषु। **वाक्** - गीर्वाक् वाणी भारती सरस्वती।

58

प्रसङ्ग → विरहिणी नायिका की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है - प्रियतम का स्वप्न देखना अथवा चित्र बनाकर अङ्गस्पर्श करना। इस श्लोक में विरहिणी पार्वती शिव का चित्र बनाकर उसे उलाहना दे रही है -

यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम्।
इति स्वहस्तोलिखितश्च मुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः॥

(सञ्जी॰) यदेति। **यदा।** यत इत्यर्थः। यदेति हेतावित्युक्त्वा गणव्याख्यानेऽस्योदाहृतत्वात्। **त्वं बुधैः** मनीषिभिः **सर्वगतः** सर्वव्यापीति **उच्यसे**।

तत इत्यध्याहारः। भावे रताख्ये तिष्ठतीति **भावस्थम्**। त्वप्यनुरागिणमित्यर्थः। **इमं जनम्।** इममित्यात्मनिर्देशः। **कथं न वेत्सि** न जानासि **इति मुग्धया** मूढया। अकिंचित्करश्चित्रगतोपालम्भ इत्यजानानयेत्यर्थः। तया **[स्वहस्तोल्लिखितः]** स्वहस्तेनोल्लिखितश्चित्रे लिखितः **चन्द्रशेखरो रहसि** ऐकान्ते। सखीमात्रसमक्षमित्यर्थः। **उपालभ्यत**। साधिक्षेपमुक्तश्च। उक्तसमुच्चयार्थश्चकारः। यद्यपि रहसीत्युक्तं तथापि सखीसमक्षकरणाल्लज्जात्यागो व्यज्यत एव॥

(शिशु०) यत इति। मुग्धयैतया रहसि स्वहस्तलिखितश्चन्द्रशेखरः शम्भुरित्युपालभ्यत। शम्भवे उपालम्भो दत्त इत्यर्थः। इति किम्? यतः कारणाद्बुधैस्त्वं सर्वगतो विश्वव्यापक उच्यसे। भावस्थमिमं जनं मल्लक्षणं कथं न वेत्सि। भावो वासना तत्र तिष्ठतीति॥

अन्वयः → यदा बुधैः त्वं सर्वगतः उच्यसे, (ततः) भावस्थम् इमं जनं कथं न वेत्सि? इति मुग्धया स्वहस्तोलिखितः चन्द्रशेखरः रहसि उपालभ्यत।

अनुवाद → जब विद्वान् लोगों के द्वारा तुम सर्वव्यापी कहे जाते हो तो भाव (प्रेम, अनुराग) में स्थित इस (पार्वती) को क्यों नहीं समझते हो? इस प्रकार मुग्धा (भोली) सखी अपने हाथों से चित्रित शिव को एकान्त में उलाहना दिया करती थी।

शब्दार्थ → **यदा** = (यतः) जब, **बुधैः** = (पण्डितैः, विद्वद्भिः) विद्वानों के द्वारा, **त्वम्** = (भवान्), **सर्वगतः** = (सर्वव्यापि इति) सर्वत्र, सब जगह व्यापक (अन्तर्यामी), **उच्यसे** = (कथ्यसे, अभीधीयसे) कहलाते हो, (ततः = तो फिर) **भावस्थम्** = (रतिस्थं, त्वयि आसक्तम्, अनुरागवन्तम्) भाव अर्थात् रति अनुराग में स्थित (अनुरागी) को, **इमम् जनम् =** (मद्रूपं जनं, माम् इत्यर्थ) मुझ पार्वती को**, कथम्** = (केन प्रकारेण) कैसे, **न वेत्सि =** (न जानासि) नहीं समझते हो जानते हो?, **इति** = (इत्थम्, एवम्) इस प्रकार से, **मुग्धया =** (सरलया मूढया वा पार्वत्या) भोली- भाली सखी पार्वती के द्वारा, **स्वहस्तोल्लिखितः** = (आत्मकरचित्रलिखितः, स्वकरचित्रितः) अपने हाथ से चित्रित, **चन्द्रशेखरः** = (चन्द्रचूडः शिवः) शिव को, **रहसि** = (एकान्ते), **उपालभ्यत** = (उपालब्धः, उपालम्भपूर्वकम् उक्तः, साधिक्षेपमुक्तोऽभूत्) उलाहना दी गई।

भावार्थ → वह चेतन और अचेतन में भेद करने में असमर्थ हो जाने के कारण स्वप्नगत और वास्तविक शिव में भेद नहीं कर पा रही थी।

अपने मन को बहलाने के लिए वह शिव का चित्र बना कर अपनी भावनायें प्रकट करती थी। किन्तु कभी-कभी शिव के चित्र को ही वास्तविक मानकर वह भोली- भाली पार्वती एकान्त में उनसे वार्तालाप प्रारम्भ कर देती थी। शिव के चित्र को उपालम्भ देती हुए वह कहती थी कि हे शिव! भले ही ज्ञानी लोग तुम्हें सर्वज्ञ और सर्वव्यापी कहते हो पर तुम अपने प्रति अनन्य अनुराग रखने वाली पार्वती की व्यथा को क्यों नहीं समझ पा रहे हो।

भावार्थः → पार्वती एकान्ते शिवस्य आकृतिं विलिख्य एवम् उपालम्भं ददाति स्म - हे भगवन्! यदा पण्डितैः त्वं सर्वदेशव्यापि कथ्यसे तदा त्वयि अनुरागिणीं मां कथं न जानासि? एवं प्रकारेण मोहग्रसता सा पार्वती चित्राङ्किते चन्द्रशेखरे वास्तविकचन्द्रशेखरबुद्ध्या उपालम्भं ददाति इति भावः।

व्याकरणम् → **यदा** - अव्ययपद। **त्वम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰ (युष्मद्)। **बुधैः** - (√बुध्+क, तृ॰वि॰, एक॰व॰) तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **सर्वगतः** - (सर्व+गम्+क्त) सर्वं गतः इति सर्वगतः (द्वि॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, ए॰व॰ **उच्यसे** - (√ब्रू अथवा वच्+यक्+लट् लकार, आत्मनेपद, म॰पु॰, एक॰व॰। **भावस्थम्** - (भाव+√स्था+क) भावे तिष्ठतीति भावस्थः (उपपद तत्पु॰ समास) तम् द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **इमम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **जनम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **कथम्** - अव्ययपद। **वेत्सि** - √विद्+लट् लकार, म॰पु॰ एक॰व॰। **इति** - अव्ययपद। **मुग्धया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **स्वहस्तोल्लिखितः** - (उत्+√लिख्+क्त) स्वश्चासौ हस्तश्च (कर्मधा॰ समास) तेन उल्लिखितः, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **चन्द्रशेखरः** - (प्र॰वि॰, एक॰व॰) चन्द्रः शेखरे यस्य सः इति चन्द्रशेखरः (बहु॰ समास)। **रहसि** - सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **उपालभ्यत** - उप+आ उपसर्ग पूर्वक √लभ्+यक्+लङ् लकार, आत्मने पद - प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **बुध** - सन्सुधी कोविदो बुधः। **भाव** - भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु। **चन्द्रशेखर** - ईश्वरः शर्व ईशानः शंकरश्चन्द्रशेखरः। **रहस्** - रहश्चोपांशु चालिङ्गे।

59

प्रसङ्ग → कामजन्य पीड़ा से व्यथित पार्वती ने शिव की प्राप्ति हेतु अन्ततः तप करना शुरू किया -

यदा च तस्याधिगमे जगत्पतेरपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती।।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरोरियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम्॥

(सञ्जी०) यदेति। **जगत्पतेः तस्य** इश्वरस्य **अधिगमे** प्राप्तौ **अन्यं विधि** मुपायं **विचिन्वती** मृगयमाणा यदा **न अपश्यत् तदा इयं** पार्वती **गुरोः** पितुः **अनुज्ञया अस्माभिः सह तपसे** तपश्चरितुं **तपोवनं प्रपन्ना** प्राप्ता॥

(शिशु०) यदेति। तस्य जगत्पतेः शम्भोरधिगमे प्राप्तौ विचिन्वती पर्यालोचयन्त्यसौ गौरी यदान्यं विधिं नापश्यन्नाद्राक्षीत् तदा पितुरनुज्ञयाऽस्माभिः सह तपसे तपोर्थं प्रपन्ना प्राप्ता॥

अन्वयः → जगत्पतेः तस्य अधिगमे विचिन्वती अन्यं विधिं यदा न अपश्यत् तदा इयं गुरोः अनुज्ञया अस्माभिः सह तपसे तपोवनं प्रपन्ना।

अनुवाद → जगत् के स्वामी उस शिव की प्राप्ति के लिए उपाय खोजती हुई जब उस पार्वती ने कोई अन्य मार्ग नहीं देखा तब इसने पिता की अनुमति से हम होगों के साथ तपोवन में आ गई।

शब्दार्थ → **जगत्पतेः** = (विश्वेश्वरस्य, विश्वस्वामिनः, लोकेश्वरस्य) संसार के स्वामी, **तस्य =** (शिवस्य, हरस्य) उस शिव को, **अधिगमे** = (प्राप्तौ) प्राप्ति के लिए, **विचिन्वती** = (अन्विष्यती, मृग्यमाना पार्वती) खोज करती हुई, **अन्यं** = (अपरम्)कोई और, **विधिम्** = (उपायम्)उपाय, **यदा** = (यस्मिन् समये) जब, **न** = (नहि)नहीं, **अपश्यत्** = (अद्राक्षीत्, अवालोकयत्) देखा, **तदा =** (तस्मिन् समये, काले) तब, **इयं** = (पार्वती) यह पार्वती, **गुरोः** = (पितुः जनकस्य) पिता की, **अनुज्ञया** = (आज्ञया, अनुमत्या) आज्ञा से, **अस्माभिः** = (सहचरीभिः, सखीभिः) हम सखियों के, **सह =** (सार्धम्, साकम्) साथ, **तपसे =** (तपश्चरणाय, तपश्चरितुम्, तपोऽनुष्ठातुम्) तपस्या करने के लिए, **तपोवनम् =** (तपोभूमिं, तपोऽरण्यम्) तपोवन में, **प्रपन्ना** = (आगच्छत समागता, प्राप्ता) आ गई।

भावार्थ → सखी ब्रह्मचारी को बता रही है कि पार्वती ने शिव को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार से प्रयत्न किया किन्तु उसके समस्त प्रयास असफल हुए। अन्ततः उसने पिता से तपस्या करने की अनुमति प्राप्त करके इस तपोवन में आ गई।

भावार्थः → इयं मे सखी पार्वती यदा सर्वेशस्य शिवस्य प्राप्तौ तपोव्यतिरिक्तमुपायान्तरं न दृष्टवती, तदा पितुर्हिमालयस्यादेशं प्राप्य अस्माभिः प्रियसखीभिः सह तपः कर्तुम् अस्मिन् तपोवने आगतवती।

व्याकरणम् → **जगत्पतेः** - जगतां पतिः इति जगत्पतिः (ष॰ तत्पु॰ समास) तस्य, ष॰वि॰, एक॰व॰। **तस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **अधिगमे** - (अधि+√गम्+अ "निमित्तात् कर्मयोगे" सूत्र से सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **विचिन्वती** - (वि+√चि+शतृ+ङीप्) वि उपसर्ग पूर्वक √चिञ् चयने-+श्नु विकरण+शतृ+ङीप् प्रत्यय, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अन्यम् -** द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विधि** - वि उपसर्ग √धा+किः प्रत्यय - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **यदा -** अव्ययपद। **न** - अव्ययपद। **अपश्यत्** - √दृश्+लङ् लकार, परस्मै॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰। **तदा** - अव्ययपद। **इयम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **गुरोः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **अनुज्ञया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **अस्माभिः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **सह** - अव्ययपद। **तपसे** - च॰वि॰, एक॰व॰। **तपोवनं** - (द्वि॰वि॰, एक॰व॰) तपसः वनम् इति तपोवनम् (ष॰ तत्पु॰ समास)। **प्रपन्ना** - (प्र+√पद्+क्त+टाप्) प्र उपसर्ग √पद्+क्त+टाप् - प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कोशः → **जगत्** - त्रिष्वथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्। **विधि** - विधिर्विधाने दैवेऽपि। **सह** - साकं सत्रा समं सह। **अन्य** - भिन्नार्थका अन्यतर एकस्त्वोऽन्येतरावपि। **गुरु** - गुरूर्गीष्पतिपित्राधौ। इत्यमरकोशः।

60

प्रसङ्ग → पार्वती के घोर तप के बाद भी शिव के प्रसन्न न होने से दुःखी सखी तप की निरर्थकता का वर्णन कर रही है -

द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं फलं तपःसाक्षिषु दृष्टमेष्वपि।
न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः॥

(सञ्जी॰) द्रुमिष्विति। **सख्या** पार्वत्या **स्वयं [कृतजन्मसु]** कृतं जन्म येषां तेषु। स्वयं रोपितेष्वित्यर्थः। **[तपःसाक्षिषु]** तपसः साक्षिषु साक्षाद्द्रष्टृ **एषु द्रुमेषु अपि फलं दृष्टं** लब्धम्। जनितमित्यर्थः। **अस्याः** पार्वत्याः **शशिमौलिसंश्रयः** चन्द्रशेखरविषयो **मनोरथः तु प्ररोहाभिमुखः** अङ्कुरोन्मुखः **अपि न दृश्यते**। 'प्ररोहस्त्वङ्कुरोऽङ्कुरः' इति वैजयन्ती। स्वयं रोपितवृक्षफलकालेऽप्यस्याः मनोरथस्य नाङ्कुरोदयोऽप्यस्ति। फलाशा तु दूरापास्तेत्यर्थः॥

(शिशु॰) द्रुमेष्विति। कियच्चिरमित्यस्योत्तरमाह - सख्या गौर्या स्वयं कृतजन्मसु कृतमारोपणमेव जन्म येषां तेषु। तपःसाक्षिषु एषु द्रुमेष्वपि फलं बद्धे जातम्। अस्याः शशिमौलिसंश्रयः शशिमौलिः शम्भुः संश्रयो यस्य स मनोरथः प्ररोहाभिमुखोऽभिलाषांकुरः सम्मुखोऽपि न दृश्यते॥

अन्वयः → सख्या स्वयं कृतजन्मसु तपःसाक्षिषु एषु द्रुमेषु फलम् अपि दृष्टम् अस्याः शशिमौलिसंश्रयः मनोरथः च प्ररोहाभिमुखोऽपि न दृश्यते।

अनुवाद → सखी पार्वती के द्वारा अपने (हाथों से) लगाए गए और तप के साक्षी बने इन वृक्षों में फल भी दिखाई देने लगे; किन्तु इस पार्वती के शिव की प्राप्ति रूपी मनोरथ का अंकुर भी नहीं दिखता है।

शब्दार्थ → **सख्या** = (सहचर्या, वयस्या पार्वत्या)सखी पार्वती के द्वारा, **स्वयम्** = (आत्मना एव) स्वयं ही, **कृतजन्मसु** = (विहितजन्मषु स्वयं रोपितेषु)जन्म दिए गए/जिन्हें उगाया एवं संवर्द्धन किया गया उनमें, **तपःसाक्षिषु** = (तपसः साक्षिषु, तपसः साक्षादवलोकयितृषु) तपस्या के साक्षी रूप, **एषु** = (पुरः दृश्यमानेषु, पुरोवर्तिषु) इन, **द्रुमेषु** = (वृक्षेषु) वृक्षों में, **फलम्** = (प्रसवम्) फल, **अपि** = भी, **दृष्टम्** = (अवलोकितम्) दिखने लगे, **च** = परन्तु, **अस्याः** = (पार्वत्याः) पार्वती की, **शशिमौलिसंश्रयः** = (शिवविषयकः)शिव विषयक, **मनोरथः** = (अभिलाषः)मन की इच्छा, **प्ररोहाभिमुखः** - (अङ्कुरोन्मुखः) अङ्कुर निकलते हुए, **अपि** = भी, **न** = (नहि) नहीं, **दृश्यते** = (अवलोक्यते) दिखाई दे रही।

टिप्पणी → तप करते हुए पार्वती ने बहुत वर्ष व्यतीत कर दिया किन्तु उसे अब तक किसी भी प्रकार के फल की प्राप्ति नहीं हुई है। जब तप करने के लिए पार्वती इस तपोवन पर आयी थी तब उसने इस आश्रम में अनेक वृक्ष आदि लगा दिए थे। वे वृक्ष भी बड़े होकर फल देने लगे हैं। इस कथन से सखी यह बताना चाहती है कि पार्वती के लगाए पेड़-पौधे फल देने लगे; किन्तु शिव को पति के रूप में प्राप्त करने की पार्वती के मनोकामना रूपी बीज में अङ्कुर भी फुटते नहीं दिखाई दे रहा है।

भावार्थः → अनया मम सख्या पार्वत्या स्वयं बीजवपनोदकदानपूर्वकम् आरोपितेषु तपःसाक्षिभूतेषु पुरोदृश्यमानेषु एतेषु तरूषु फलोद्गमो जातः, परं शङ्करविषयको ममास्याः सख्याः मनोरथः अङ्कुरोन्मुखोऽपि न जातः, अर्थात् शिवप्राप्तेः अस्याः मनोरथः तु अधुनापि अपूर्णः एव अस्तीति भावः।

व्याकरणम् → **सख्या** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **स्वयं** - अव्ययपद। **कृतजन्मसु** - कृतं जन्म येषां ते कृतजन्मानः (बहु॰ समास), तेषु सप्त॰ वि॰, बहु॰व॰। **तपःसाक्षिषु** तपसः साक्षिणः इति तपःसाक्षी (ष॰ तत्पु॰ समास) तेषु - (सप्त॰ वि॰)। **एषु** - सप्त॰ वि॰, बहु॰व॰। **द्रुमेषु** - सप्त॰

वि॰, बहु॰व॰। **फलम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **दृष्टम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अस्याः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **शशिमौलिसंश्रयः** - (शश+इनि; संश्रयः = सम्+√श्रि+अच्) शशः अस्यास्तीति शशी, शशी मौलौ यस्य स शशिमौलिः (बहु॰ समास) सः संश्रयः यस्य सः (बहु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **मनोरथः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **प्ररोहाभिमुखः** - (प्र+√रुह्+-घञ्) प्ररोहस्य अभिमुखः (ष॰ तत्पु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **दृश्यते** - (√दृश्+लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰) दृश्+यक् आत्मने॰ लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **द्रुम** - अनोकहः कुटः शालः पलाशी द्रुद्रुमागमाः। **जन्म** - जनुर्जननजन्मानि। **स्वयम्** - स्वयमात्मना। **मनोरथ** - वाञ्छा लिप्सा मनोरथः। इत्यमरकोशः।

61

प्रसङ्गः → सखी निराशापूर्वक चिन्ता प्रकट करती हुई ब्रह्मचारी से कह रही है कि पता नहीं कब शिव पार्वती पर कृपा करेंगे -

न वेद्मि सः प्रार्थितदुर्लभः कदा सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम्।
तपः कृशामभ्युपपत्स्यते सखीं वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम्॥

(सञ्जी॰) नेति। प्रार्थितः सन्दुर्लभः **प्रार्थितदुर्लभः** स देवः **[तपःकृशां]** तपसा कृशां तपसा कृशां क्षीणामतएव **सखीभिः अस्रोत्तरम्** अवु प्रधानं यथा भवति तथा **ईक्षितामिमां** नः **सखीं [तदयग्रक्षतां]** तस्येन्द्रस्यावग्रहेणानावृष्ट्या क्षतां पीडिताम्। 'वृष्टिर्वर्ष तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ' इत्यमरः। अवग्रहः वर्षप्रतिबन्ध इत्यर्थः। **सीतां** कृष्टभुवम्। 'सीता लाङ्गलपद्धतिः' इत्यमरः। **वृषा** वासव **इव**। 'वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यमरः। **कदा अभ्युपपत्स्यते** कदानुग्रहीष्यति **न वेद्मि**। अत्र वाक्यार्थः कर्म। तदवग्रहक्षतामित्यत्रावग्रहक्षतामित्यनेनैव गतार्थत्वे तत्पदस्य वैयर्थ्यापत्तेस्तदिति भिन्नं पदं वेद्मीत्यस्य कर्मेति युक्तमुत्पश्यामः॥

(शिशु॰) न वेद्मीति। प्रार्थितोपि दुर्लभः। स शम्भुस्तपःकृशां क्षीणामिमां सखीं गौरीं कदाभ्युपपत्स्यते सम्मुखो भविष्यति न वेद्मि। कीदृशीमिमां? सखीभिरस्रोत्तरं व्याकुलं यथा स्यात्तथेक्षितां। यथा वृषेन्द्रस्तदवग्रहक्षतां तेनेन्द्रेण कृतो योऽवग्रहो वृष्टिविघातस्तेन क्षतां शुष्यन्तीं क्षेत्रभुवं प्रति वृष्ट्याभिमुखी भवति॥

अन्वयः → प्रार्थितदुर्लभः सः तपःकृशां सखीभिः अस्रोत्तरम् ईक्षिताम् इमां सखीं वृषा तदवग्रहक्षतां सीताम् इव कदा अभ्युपपत्स्यते? इति न

वेद्मि।

अनुवाद → प्रार्थना करने पर भी दुर्लभ वे शिव तपस्या के कारण दुर्बल, अश्रुधारा के साथ देखी गई इस सखी (पार्वती) पर वर्षा न होने से जोती गई भूमि को इन्द्र के समान कृपा- वृष्टि (अनुग्रह) कब करेंगे? यह मैं नहीं जानती हूँ।

शब्दार्थ → **प्रार्थितदुर्लभः** = (अभ्यर्थितदुष्प्राप्यः, याचितदुष्प्राप्यः, याचितदुरधिगमः) प्रार्थना करने पर भी दुर्लभ, **सः** = (नीलकण्ठः)वह शिव, **तपःकृशां** = (तपश्चरणक्षीणाम्) तप करने से दुर्बल शरीर वाली, **सखीभिः** = (वयस्याभिः, आलिभिः) सखियों के द्वारा, **अस्रोत्तरम्** = (साश्रुनेत्रम्, अश्रुभिः) अश्रुपूर्ण नेत्रों से, **ईक्षिताम्** = (अवलोकिताम्, दृष्टाम्) देखी जाती हुई, **इमाम्** = (पुरोवर्तिनीम्, सम्मुखस्थिताम्) इस, **सखीम्** = (वयस्यां पार्वतीम्) सखी पार्वती को, **वृषा** = (देवेन्द्रः, इन्द्रः) इन्द्र के, **तत्** = वह, **अवग्रहक्षताम्** = (वर्षाभावेन, अनावृष्ट्या पीडिताम्, सुरेन्द्रावग्राहपीडिताम्) वर्षा न होने के कारण नष्ट/सुखी हुई, **सीताम्** = (हलकृष्टां भूमिम् पृथिवीम्, लाङ्गलपद्धतिम्) जुती हुई भूमि, **इव** = के समान, **कदा** = (कस्मिन् काले)कब, **अभ्युपपत्स्यते** = (अनुग्रहीष्यति, अनुकम्पयिष्यति) अनुगृहीत करेंगे/कृपा वृष्टि करेंगे, **इति न** = (एवम्) ऐसा नहीं, **वेद्मि** = (जानामि) जानती हूँ।

भावार्थ → सखी ब्रह्मचारी से कह रही है कि इतनी अधिक कठोर तपस्या करने के बाद भी पार्वती के लिए शिव अब तक दुर्लभ बने हुए हैं। तप करने से दुर्बल एवं कृशकाय शरीर वाली पार्वती की स्थिति को देखकर हम लोगों को अत्यन्त कष्ट हो रहा है। जिस प्रकार वर्षा न होने के कारण जोती गई भूमि नष्ट हो जाती है उसी प्रकार पार्वती पर यदि शिव कृपा नहीं करेंगे तो यह भी नष्ट हो जाएगी। यहाँ पार्वती की तपस्या को फलीभूत होते न देखकर सखियाँ अपनी निराशा अभिव्यक्त कर रही हैं।

भावार्थः → अभ्यर्थितोऽपि दुर्लभः स शिवः अस्माभिः सखीभिः साश्रुनयनं यथा स्यात्तथा दृष्टामिमां पार्वतीम् इन्द्रः वृष्टिप्रतिबन्धेन शोषितां महीमिव कदा अनुग्रहीष्यतीति न जाने इति भावः। यथा इन्द्र वृष्ट्या कदा भूमिसिञ्चनं करिष्यति इति प्रार्थितोऽपि दुर्लभः सः शिवः तपश्चरणेन कृशां अश्रूणि मुञ्चन्त्यां पार्वत्याम् उपरि कदा अनुग्रहं करिष्यति इति वयं न जानीमः।

व्याकरणम् → **प्रार्थितदुर्लभः** - (प्र+√अर्थ्+क्त, दुर्लभः = दुर्+√लभ्+खल्) प्रार्थितश्चासौ दुर्लभश्च सः (कर्मधा॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपःकृशां** - तपसा कृशा (तृ॰ तत्पु॰ समास) ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **सखीभिः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **अस्रोत्तरम्** - अस्राणि उत्तराणि यस्मिन्, तद् अस्त्रोत्तरं यथा तथा - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ईक्षिताम्** - √ईक्ष्+इट्+क्त+स्त्रीत्व विवक्षा में टाप्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **इमाम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **सखीम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **वृषा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तदवग्रहक्षताम्** - (अव+√ग्रह्+अप्) तस्य अवग्रहः (ष॰ तत्पु॰ समास), तदवग्रहेण क्षता (तृ॰ तत्पु॰ समास) ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **सीताम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **कदा** - अव्ययपद। **अभ्युपपत्स्यते** - अभि एवं उप उपसर्ग पूर्वक √पद् धातु+आत्मनेपद, लृट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **वेद्मि** - √विद् ज्ञाने+परस्मै॰, लट् लकार, उ॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **वृषा** - वासवो वृत्रहा वृषा। **सीता** - सीता लाङ्गलपद्धतिः। **अवग्रह** - तद्विधाते अवग्रहावग्रहौ समौ। **अभ्युपपत्ति** - अभ्युपपत्तिरनुग्रहः। **कृश** - स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं तनु इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → "वृषा तदवग्रहक्षतां सीताम् इव" इस पद्यांश में उपमालङ्कार है।

62

प्रसङ्ग → पति विषयक तप के प्रयोजन को जान लेने के बाद ब्रह्मचारी सत्यता का अनुमोदन पार्वती के मुख से करवाने की इच्छा से कहता है -

अगूढसद्भावमितीङ्गितज्ञया निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया।
अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदव्यज्जितहर्षलक्षणः॥

(सञ्जी॰) अमूढेति। **इङ्गितज्ञया** पार्वतीहृदयाभिज्ञया 'इङ्गितं हृद्गतो भावः' इति सज्जनः। **तया** गौरीसंख्या इति एवम **अगूढसद्भावं** प्रकाशितसदभिप्रायं यथा तथा **निवेदितः** ज्ञापितः। **[नैष्ठिकसुन्दरः]** निष्ठा मरणमवधिर्यस्य स नैष्ठिको यावज्जीवब्रह्मचारी। सुन्दरो विलासी। नैष्ठिकश्चासौ सुन्दरश्चेति तथोक्तः। द्वयोरन्यतरस्य विशेषणत्वविवक्षायां विशेषणसमासः। किन्तु नैष्ठिकत्वविशेषणेन कामित्वविरोधः। अथवा देवस्यालौकिकमहिमत्वादुभयं तात्विकमिति न विरोधः। **[अव्यज्जितहर्षलक्षणः]** अव्यज्जितं हर्षलक्षणं मुखरागादिहर्षलिङ्गं यस्य तथाभूतः सन्। **अयि** गौरि! अयीति कोमलामन्त्रणे। **इदं** त्वत्सखीभाषितमे **एवम्**। सत्यं किमित्यर्थः। **परिहासः** केलिर्वा। 'द्रवकेलिपरीहासाः' इत्यमरः। **इति** एवम् **उमाम् अपृ-**

च्छत् पृष्टवान्॥

(शिशु०) इङ्गितज्ञयाऽभिप्रायज्ञया सख्या अगूढः स्पष्टः सद्भावः परमार्थो यत्र कर्मणि तत् एवं यथा स्यात्तथा निवेदितेऽभिहिते सति अव्यञ्जितहर्षलक्षणोऽव्यञ्जितान्यप्रकटितानि हर्षलक्षणानि स्वोत्कर्षवर्णनजनितहर्षचिह्नानि रोमाञ्चादीनि येन स नैष्ठिकसन्दरो नैष्ठिको ब्रह्मचारी स चासौ सुन्दरश्च विप्रो भो गौरि! इदं सख्योक्तमेवं सत्यमुत परिहासो नर्मवाक्यमित्युमां गौरीमपृच्छदप्राक्षीत्॥

अन्वयः → इङ्गितज्ञया तया इति अगूढसद्भावं निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरः अव्यञ्जितहर्षलक्षणः उमाम् अपृच्छत्- अयि! इदम् एवं परिहासः (वा) इति।

अनुवाद → (पार्वती) के संकेत (हृदयगत भाव) को समझने वाली उस सखी के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट मनोभाव को बताए जाने पर निष्ठावान् सुन्दर ब्रह्मचारी ने प्रसन्नता के लक्षण प्रकट किए बिना उमा से पूछा - क्या यह बात ऐसा ही (सत्य) है या परिहास है?

शब्दार्थ → **इङ्गितज्ञया** = (सङ्केतज्ञया, पार्वतीहृद्भावाभिज्ञया, हृद्गताभिप्रायाभिज्ञया) पार्वती के भावों/सङ्केत को समझने वाली, **तया** = (पार्वती सख्या)उस सखी के द्वारा, **इति =** (एवं प्रकारेण, एवम्) इस प्रकार**, अगूढसद्भावम्** = (प्रकाशितसदभिप्रायं, प्रगटसदभिप्रायम्, अतिरोहितसदभिप्रायम्) वास्तविकता को छिपाये बिना स्पष्ट सद्भावपूर्वक, **निवेदितः** = (ज्ञापितः) प्रकट कर दिया, **नैष्ठिकसुन्दरः** = (आजीवनसौम्यब्रह्मचारी, रम्याकृतिराजीवनब्रह्मचारी) सौम्य ब्रह्मचारी ने, **अव्यञ्जितहर्षलक्षणः** = (अप्रकटितप्रमोदचिह्नः, अप्रदर्शितप्रसन्नताचिह्नः, अप्रकटितमुखरागः) प्रसन्नता का कोई भी चिह्न प्रकट किये बिना, **उमाम्** = (पार्वतीम्) गौरी से, **अपृच्छत् =** (पृष्टवान्) पूछा। **अयि** = हे पार्वती, **इदम् =** (त्वत्सखीभाषितम्, एतत्)यह सब सखी के द्वारा बतायी गई बात, **एवम्** = (इत्थं सत्यम्, सत्यमेव) वास्तव में ऐसा ही है, **परिहासः वा इति** = (केलिमात्रं वा, परिहासमात्रं वा) अथवा केवल मजाक है।

भावार्थ → पार्वती के मनोगत भाव को समझकर सखी ने ब्रह्मचारी को पार्वती के तप का प्रयोजन सही- सही बता दिया। यह जानकर ब्रह्मचारी मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए कि अपनी प्रसन्नता छिपाकर सखी के कथन की सत्यता जानने के लिए पार्वती से पूछते हैं कि

आपकी सखी आपके बारे में जो कह रही है क्या वह सत्य है अथवा उपहासमात्र ही है।

भावार्थः → पार्वत्याः मनोभावं जानन्त्या तया वयस्यया प्रकशितसदभिप्रायं बोधितः स सौम्यो नैष्ठिकब्रह्मचारी हर्षचिह्नं गोपयित्वा अवोचत्- अयि पार्वती! किं सखीवचनं सत्यम् अथवा परिहासमात्रं वेति?

व्याकरणम् → **इङ्गितज्ञया** - इङ्गितं जानातीति इङ्गितज्ञा (उपपद तत्पु॰ समास) तया - 'आतोऽनुपसर्गे कः' से क प्रत्यय आकार लोप, पुनः स्त्रीत्व में टाप् - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **अगूढसद्भावम्** - (न+√गुह्+क्त) न गूढः अगूढः (नञ् तत्पुरुष), सच्चासौ भावश्च (कर्मधा॰ समास) सद्भावः, अगूढः सद्भावः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा भवति तथा - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **निवेदितः** - नि उपसर्ग पूर्वक √विद् ज्ञाने+इट्+क्त, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **नैष्ठिकसुन्दरः** - (निष्ठा+ठक्) निष्ठा = मरणम् अवधिर्यस्य स नैष्ठिकः, नैष्ठिकः चासौ सुन्दरः इति नैष्ठिकसुन्दरः (कर्मधा॰ समास) सः, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अव्यज्जितहर्षलक्षणः** - न व्यज्जितम् इति अव्यज्जितम् (नञ् तत्पु॰ समास) ; हर्षस्य लक्षणम् इति हर्षलक्षणम् (ष॰ तत्पु॰ समास) न व्यजितं हर्षलक्षणं येन सः (बहु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अयि** - अव्ययपद, कोमलतापूर्वक निमन्त्रण में। **परिहासः** - परि+√हस्+घञ्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **उमाम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अपृच्छत्** - √पृच्छ् ज्ञीप्सायाम्+लङ् लकार, परस्मै॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **गूढ** - निदिग्धोपचिते गूढगुप्ते। **भाव** - भावः सत्ता स्वभावाभिप्रायः। **इङ्गित** - आकारस्त्विङ्गइङ्गितम्। **निष्ठा** - निष्ठानिष्पत्ति नाशान्ता। **सुन्दर** - सुन्दरं रुचिरं चारु। **अयि** - प्रश्नेऽनुनये त्वयि। **परिहास** - द्रवकेलिपरिहासः। **लक्षण** - चिह्नम् लक्ष्म च लक्षणम्। इत्यमरकोशः। **इङ्गितम्** - इङ्गितं हृद्गतो भावः इति सज्जनकोशः।

63

प्रसङ्ग → लज्जावश कुछ कहने के इच्छुक न होने पर भी ब्रह्मचारी द्वारा सम्भावित परिहास की आंशका को दूर करने हेतु पार्वती ने स्वयं को सम्हालते हुए व्यवस्थित वाणी में कहा -

अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम्।
कथञ्चिदद्रेस्तनया मिताक्षरं चिरव्यवस्थापितवागभाषत॥

(सञ्जी॰) अथेति। **अथ** अनन्तरम् **अद्रेः तनया** पार्वती **मुकुलीकृ-**

ताङ्गुलौ सम्पुटीकृताङ्गुलौ। अग्रश्चासौ हस्तश्चेति समानाधिकरणसमासः। हस्ताग्राग्रहस्तयोर्गुणगुणिनोर्भेदाभेदादिति वामनः। तस्मिन् **अग्रहस्ते [स्फटिकाक्षमालिकाम्]** स्फटिकानामक्षमालिकां जपमालिकाम् **समर्पयन्ती** आमुञ्चती **कथंचित्** महता कष्टेन **चिरव्यवस्थापितवाक** चिरेण स्वीकृतवाक्। एतेन लज्जोपरोधो व्यज्यते। **मिताक्षरं** परिमितवर्णं यथा तथा **अभाषत** बभाषे॥

(शिशु०) अथाग्रहस्त इति। अनन्तरमद्रेस्तनया गौरी मुकुलीकृताङ्गुलौ मुकुलीकृता संकुचिता अंगुलियो यस्य तस्मिन्नग्रहस्ते स्फटिकाक्षमण्डलं स्फटिकाक्षमालां समर्पयन्ती संयोजयन्ती कथञ्चित्कृच्छ्रेण मिताक्षरं स्तोकाक्षरं यथा स्यात्तथाऽभाषताऽवोचत्। कीदृशी? चिरव्यवस्थापितवाक् चिरेण व्यवस्थापिता वाग् यया सा॥

अन्वयः → अथ मुकुलीकृताङ्गुलौ अग्रहस्ते स्फटिकाक्षमालिकां समर्पयन्ती चिरव्यवस्थापितवाक् अद्रेः तनया मिताक्षरं कथञ्चित् अभाषत।

अनुवाद → इसके बाद कलियों के सदृश जुड़ी हुई अंगुलियों वाले हाथ के अग्रभाग में स्फटिक की माला को धारण की हुई बहुत देर तक वाणी को संयमित करके हिमलाय की पुत्री (पार्वती) ने नपे- तुले शब्दों में किसी प्रकार कहा।

शब्दार्थ → **अथ** = (तदनन्तरम्) इसके बाद, **मुकुलीकृतांगुलौ** = (सम्पुटितकरांगुलौ सम्पुटीकृताङ्गुलौ) उंगलियों को कली के समान बना कर, **अग्रहस्ते** = (कराग्रे, हस्ताग्रे) हाथ के अग्रभाग में, **स्फटिकाक्षमालाम्** = (स्फटिकमणिनिर्मिताक्षमालिकां, स्फटिकस्य धवलजपमालां, स्फटिकमयीं जपमालाम्) स्फटिक से बनी जपमाला को, **समर्पयन्ती** = (आमुञ्चन्ती, ददती, आत्मजा) धारण करते हुए/रखती हुई, **चिरव्यवस्थापितवाक्** = (चिरेण स्वीकृतवाक्, चिरकालसंयमितवचना, सुचिरावरुद्धवाग्व्यापारा) बहुत देर तक वाणी को संयमित करके, **अद्रेः** = (पर्वतस्य, हिमालयस्य) हिमालय पर्वत की, **तनया** = (सुता, आत्मजा) पुत्री पार्वती ने, **मिताक्षरम्** = (परिमितपदं, परिमितशब्दम्) नपे तुले/बहुत कम शब्दों में, **कथञ्चित्** = (येन केन प्रकारेण, कथमपि, महता कष्टेन) किसी प्रकार कठिनाई से, **अभाषत** = (उवाच, अब्रवीत्)कहा।

भावार्थ → ब्रह्मचारी के प्रश्न को सुनकर पार्वती ने स्फटिक- निर्मित माला को जपना छोड़कर अंगुलियाँ मोड़ लिया जिससे उसकी अंगुलियाँ कमल की पँखुरियों के समान दिखने लगी। लज्जावश कुछ देर चुप

रहने के उपरान्त पार्वती ने प्रयास पूर्वक स्वयं को व्यवस्थित किया और अत्यन्त नपे- तुले शब्दों में कुछ बोलना शुरू किया।

भावार्थः → ब्रह्मचारिणा पृष्टे सति चिरकालसंयमितवचना मुकुलिताञ्जलौ हस्तास्याग्रे स्फटिकस्य जपमालां धारयन्ती हिमालयस्य पुत्री पार्वती महता कष्टेन येन केन प्रकारेण किञ्चिदुवाचेति भावः।

व्याकरणम् → **अथ** - अव्ययपद। **मुकुलीकृताङ्गुलौ - (**मुकुल+च्वि-+√कृ+क्त) अमुकुला मुकुला यथा सम्पद्यन्ते तथा, **कृताः** - मुकुलीकृता (च्वि प्रत्यय), मुकुलीकृताः अंगुलयः यस्मिन् स (बहु॰ समास) तस्मिन् सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **अग्रहस्ते** - सप्त॰ वि॰, एक॰व॰, अग्रश्चासौ हस्तः अग्रहस्तः (कर्मधा॰ समास) तस्मिन्। **स्फटिकाक्षमालिकां** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰, स्फटिकानाम् अक्षमालिका (ष॰ तत्पु॰ समास) ताम्। **समर्पयन्ती - (**सम्+√अर्प+णिच्+शतृ+ङीप्) सम् उपसर्ग पूर्वक √अर्पि+शतृ स्त्रीत्व में ङीप्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **चिरव्यवस्थापितवाक्** - (वि+अव+√स्था+क्त) चिरेण व्यवस्थापिताः, चिरव्यवस्थापिताः वाक् यया सा - (बहु॰ समास) - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अद्रेः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **तनया** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **मिताक्षरं** - मितानि अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि तद्, मिताक्षरं यथा तथा, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कथञ्चित् -** अव्ययपद। **अभाषत** - √भाष व्यक्तायां वाचि+लङ् लकार, आत्मने॰ - प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → मुकुल - कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्। **अद्रि** - अद्रिगोत्रगिरिग्रावा।

अलङ्कार → पार्वती की स्वाभाविक क्रियाओं का सुन्दर वर्णन होने के कारण यहाँ 'स्वभावोक्ति अलङ्कार' है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

64

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में पार्वती संयमित शब्दों में सखी के कथन का समर्थन करती हुई शिव से कहती है -

यथा श्रुतं वेदविदां वर त्वया जनोऽयमुच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं मनोरथानामगतिर्न विद्यते॥

(सञ्जी॰) यथेति। किमुवाचेत्याह - **हे वेदविदां वर** वैदिकश्रेष्ठ! **त्वया यथा श्रुतं** सम्यक् श्रुतम्। श्रुतार्थमेवाह - **अयं जनः।** स्वयमित्यर्थः। [**उच्चैःपदलङ्घनोत्सुकः**] उच्चैःपदस्य शिवलाभरूपोन्नतस्थानस्य लङ्घन आक्रमण उत्सुकः। किमत्रायुक्तमित्यत्राह - **इदं तप** [**तदवाप्ति-**

साधनं] तदवातेस्तस्योच्चैः पदस्यावाप्तेः प्राप्तेः साधनं **किल**। किलेत्यलीके। अतितुच्छत्वादसाधकमेवेत्यर्थः। तर्हि त्यज्यतामित्याशङ्क्य दुराशा मां न मुञ्चतीत्याशयेनाह - **मनोरथानां** कामानाम् **अगतिः** अविषयः **न विद्यते**। न हि स्वशक्तिपर्यालोचनया कामाः प्रवर्तन्त इति भावः॥

(शिशु०) यथेति। भो वेदविदां वर! त्वया यथाश्रुतं तथेति शेषः। यतोऽयं जन उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः उच्चस्थानस्याक्रमणेनोत्कण्ठितः। इदं तदस्तदवाप्तिसाधनं तस्येश्वरस्यावाप्तिस्तस्याः कारणं। यतो मनोरथानां कुत्राप्यगतिर्नास्ति। किंतु सर्वत्र धावन्तीत्यर्थः। तदवाप्तीत्यत्र सलज्जत्वान्न शब्दनिर्देशः॥

अन्वयः → हे वेदविदां वर! त्वया यथा श्रुतम् अयं जनः उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः (अस्ति)। इदं तपः तदवाप्तिसाधनं किल? मनोरथानाम् अगतिः न विद्यते।

अनुवाद → हे वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ! तुम्हारे द्वारा जैसा सुना गया है (वह ठीक है) यह व्यक्ति (पार्वती) उच्चपद प्राप्त करने का इच्छुक है। यह तपस्या निश्चय ही उस शिव को प्राप्त करने साधन है क्योंकि इच्छायें रोकी नहीं जा सकती है।

शब्दार्थ → **वेदविदां वेदविदाम् =** (वेदज्ञानाम्), **वर** = (वेदज्ञश्रेष्ठ, वेदज्ञातृणां श्रेष्ठ) हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ, **त्वया** = (भवता)आपके द्वारा, **यथा** - (येन प्रकारेण, यदपि, यथार्थम्) जैसा, **श्रुतम् =** (सखीमुखात् आकर्णितम्) सुना गया वह वैसा ही अर्थात् सत्य है, **अयम् जनः** = (एषा अहम्) यह व्यक्ति अर्थात् मैं, **उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः** = (उन्नतपदप्राप्त्युत्सुका अस्ति, उच्चैः शिवलाभरूपोन्नतस्थानस्य लङ्घने प्राप्तये वा उत्कण्ठितः, उन्नतस्थानप्राप्त्युत्कण्ठितः) शिव- प्राप्ति जैसे ऊँचे पद को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ।, **इदम्** = (एतद् क्रियमाणम्) यह, **तपः** = (तपश्चरणम्, अनुष्ठानं) तपस्या, **तदवाप्तिसाधनम्** = (शिवप्राप्त्युपकरणं, उन्नतस्थानप्राप्तिसाधकम्) उस शिव को प्राप्त करने का साधन है, **किल** = (निश्चयेन) निश्चय ही, **मनोरथानाम्** = (मनोराज्यानाम्, कामानाम्, इच्छानाम्) मन की इच्छाओं की, **अगतिः** = (अविषयः) रुकावट, अविषयता, सीमा,अगम्यता, **न विद्यते** = (न वर्तते, नास्ति) नहीं होती है।

भावार्थ → पार्वती शिव को सम्बोधित करती हुए बोली - हे वेदज्ञाताओं में श्रेष्ठ! आपने जो कुछ मेरी सखी के मुख से सुना है वह परिहास

नहीं अपितु पूर्णतः सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए ही तप कर रही हूँ। दृढ़ इच्छा शक्ति वाले व्यक्तियों के लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं है। और तप से समस्त इच्छाएँ अवश्य पूर्ण होती है।

भावार्थः → हे वैदिकश्रेष्ठ! भवता सखीमुखात् यत् वचनं श्रुतं तत् सत्यमेवास्ति। अहं पतिरूपेण शिवप्राप्तये उत्कण्ठिताऽस्मि। मयानुष्ठीयमानमिदं तपः शिवोपलब्धिसाधनं वर्तते। पृथिव्यां मनोरथानां अविषयः कश्चित्पदातपः न वर्तते इति भावः।

व्याकरणम् → **हे वेदविदाम्** - ष॰वि॰, बहु॰व॰, वेदं विदन्ति इति वेदविदः (उपपद तत्पु॰ समास) तेषाम्। **वर** - सम्बो॰ एक॰व॰। **त्वया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **यथा** - अव्ययपद। **श्रुतम्** - √श्रु+क्त, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अयम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **जनः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः** - (लङ्घ्+ल्युट्) उच्चैःश्च तत् पदञ्च (कर्मधा॰ समास), तस्य लङ्घनम् (ष॰ तत्पु॰ समास) उच्चैः पदलङ्घने उत्सुकः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) सः - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **इदं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तपः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तदवाप्तिसाधनम्** - (अव+√आप्+क्तिन्, साधनम् = √साध्+ल्युट्) तस्य अवाप्तिः (ष॰ तत्पु॰ समास), तदवाप्तेः साधनम् (ष॰ तत्पु॰ समास) तत् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **किल** - अव्ययपद। **मनोरथानाम्** - ष॰वि॰, बहु॰व॰। **अगतिः** - (न+√गम्+क्तिन्, प्र॰वि॰, एक॰व॰) न गतिः अगतिः (नञ् तत्पु॰ समास)। **विद्यते** - √विद् सत्तायाम्+लट् लकार, आत्मने॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **श्रुतं** - श्रुतं शास्त्रावधृतयोः। **वेद** - श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः। **वर** - दैवाद् वृते वर श्रेष्ठे। **उच्चैः** - महत्युच्चैः। पदं - पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु। **उत्सुकः** - इष्टार्थोऽद्युक्त उत्सुकः। **किल** - वार्ता सम्भाव्ययोः किल। **साधनम्** - निर्वर्तनोपकरणानुव्रज्यासु च साधनम्। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → शिव- साहचर्य रूपी उच्च पद को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय रूपी विशेष कथन का "तप से दुर्लभ वस्तु प्राप्य है" इस कथन की पुष्टि होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

65

प्रसङ्ग → पार्वती के मुख से शिव की प्रप्ति की इच्छा को सुनकर

ब्रह्मचारी पुनः पार्वती के मन की दृढ़ता जानने हेतु कहना शुरू करते हैं -

अथाह वर्णी विदितो महेश्वरस्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्तसे।
अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे॥

(सञ्जी०) अथेति। **अथ वर्णी** ब्रह्मचारी। 'वर्णिनो ब्रह्मचारिणः' इत्यमरः। **आह**। उवाचेत्यर्थः। 'आहेति भूतार्थे लट्प्रयोगो भ्रान्तिमूलः' इत्याह वामनः। किमित्याह - **महेश्वरः** महादेवः **विदितः**। मया ज्ञायत इत्यर्थः। बुद्ध्यर्थत्वाद्वर्तमाने क्तप्रत्ययः। तद्योगात्षष्ठी च। 'येन त्वं प्राग्भग्नमनोरथा कृतेति भावः।' **पुनरेव त्वं** तमीश्वरमर्थयसे **तदर्थिन्येव** तत्कामैव **वर्तसे**। तत्प्रभावमनुभूयापीति भावः। अनुसरणे को दोषस्तत्राह - [**अमङ्गलाभ्यासरतिं**] अमङ्गलाभ्यासेऽमङ्गलाचारे रतिर्यस्य तं तथोक्तं **तम्** ईश्वरं **विचिन्त्य** विचार्य **तवानुवृत्तिम्** अनुसरणं **कर्तुं न उत्सहे**। नानुमन्तुं शक्नोमीत्यर्थः॥

(शिशु०) अथाहेति। अथानन्तरं वर्णी ब्रह्मचारी आह। किमाह। महेश्वरो विदितः। महेश्वर इति सोल्लुण्ठनं। तदर्थिनी तादृशस्य भस्मीकृतकामस्य महेश्वरस्यार्थिनी त्वं पुनः प्रवर्तसे इति। अमङ्गलाभ्यासरतिं अमङ्गलाभ्यासे श्मशाननिवासादौ रतिर्यस्य तं तादृशं विचिन्त्य विचार्य तवानुवृत्तिं सम्मतिं कर्तुं नोत्सहे नेच्छामि। त्वद्योग्यो भर्ता न भवतीति भावः॥

अन्वयः → अथ वर्णी आह, महेश्वरः विदितः त्वं पुनः तदर्थिनी एव वर्तसे। अमङ्गलाभ्यासरतिं तं विचिन्त्य तव अनुवृत्तिं कर्तुं च नोत्सहे।

अनुवाद → तब उस ब्रह्मचारी ने कहा - शिव को मैं जानता हूँ और तुम उसी शिव की कामना कर रही हो। अमाङ्गलिक वस्तुओं में रुचि को जानकर तुम्हारा अनुमोदन करने के लिए मैं और अधिक उत्साहित नहीं हूँ।

शब्दार्थ → **अथ** = (तदा पार्वतीकथनादनन्तरं, अनन्तरम्) इसके बाद, **वर्णी** = ब्रह्मचारी ने, **आह** = (उवाच) कहा, **महेश्वरः** = (शिवः) शिव को, **विदितः** = (ज्ञातः)जानता हुँ, **त्वं** = (भवती) तुम, **पुनः** = (भूयः)फिर, **तदर्थिनी** = (तत्कामा, शिवकामा) उसी की इच्छा करने वाली, **एव** = ही, **वर्तसे** = (असि, विद्यसे) हो, **अमङ्गलाभ्यासरतिं** = (अमङ्गलपदार्थानुरागिणं, अकल्याणाचारानुरागिणम्) अमङ्गलकारी वस्तुओं में ही प्रेम रखने वाले/अशुभ कार्य- कलापों की बारम्बार आवृत्ति में आसक्ति रखने वाले, **तं** = (शिवं)उस शिव को, **विचिन्त्य** = (विचार्य, ज्ञात्वा) समझ कर, **तव** = (भवत्याः)तुम्हारे, **अनुवृत्तिं** = (चित्तवृत्तिम्, अनुसरणं)अनुसरण, समर्थन, **कर्तुम्** = (विधातुं, अनुगन्तुम्)करने में, **च** = और अधिक, **न उत्सहे** = (न उत्साहम् अनुभवामि, न शक्नोमि) उत्साहित नहीं हूँ।

भावार्थ → पार्वती की इच्छा को जानने के बाद ब्रह्मचारी ने कहना शुरू किया कि मैं शिव को अच्छी तरह जानता हूँ (जिसने कामदेव को भस्म करके तुम्हारी उपेक्षा की)। वह सर्वदा अशुभ कार्यों में संलग्न रहते हैं। अमङ्गल वस्तुओं से प्रेम करते हैं। श्मशान में विचरण करते हैं। चिता के भस्म लगाते हैं। पुनः उसने कामदेव को नष्ट करके तुम्हारे प्रेम का तिरस्कार किया था। तथापि तुम ऐसे शिव को पति के रूप में प्राप्त करना चाहती हो तो मैं कदापि तुम्हारी इच्छा का अनुमोदन नहीं कर सकता हूँ।

भावार्थः → पार्वतीवचनश्रवणानन्तरं स ब्रह्मचारी पुनः अब्रवीत् - अहं सम्यक् प्रकारेण शिवं जानामि। तेन त्वम् भग्नमनोरथा विहिता तथापि तमेवाराधयसि? चिताभस्मानुलेपनानुरागिणं तं शिवं विचार्याहं अस्मिन् विषये तव चित्तवृत्तिं समर्थयितुं न शक्नोमीति भावः।

व्याकरणम् → **वर्णी** - प्रशस्तः वर्णः अस्यास्तीति वर्ण+इनि प्र॰वि॰, एक॰व॰। **आह** - (√ब्रू+लङ् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰) √ब्रूञ् धातु के स्थान पर आह आदेश+लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **महेश्वरः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰, महान् चासौ ईश्वरः इति महेश्वरः (कर्मधा॰ समास)। **विदितः** - (= √विद्+क्त) √विद्+ज्ञाने+इट्+क्त - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तदर्थिनी** - प्र॰वि॰, एक॰व॰, तमर्थयते इति तदर्थिन्, तम् अर्थयते यः सः इति तदर्थिन् (बहु॰ समास) स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप्। **वर्तसे** - √वृतु वर्त्तने+लट् लकार, आत्मने॰ म॰ पु॰ एक॰व॰। **अमङ्गलाभ्यासरतिं** - (अभि+√अस्+घञ्) न मङ्गलम् अमङ्गलम् (नञ्तत्पुरुष) तस्य अभ्यासः, अमङ्गलाभ्यासः (ष॰ तत्पु॰ समास) तस्मिन् रतिः, यस्यः सः (बहु॰ समास) तम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विचिन्त्य** - (वि+√चिन्त्+ल्यप्) वि उपसर्ग पूर्वक √चिति चिन्तायाम् से क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर ल्यप् होकर - अव्ययपद। **तव** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **अनुवृत्तिं** - अनु उपसर्ग+वृत्+क्तिन् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **कर्तुम्** - √कृ+तुमुन् - मान्त अव्ययपद। **उत्सहे** - उत् उपसर्ग पूर्वक √षह् मर्षणे से आत्मने॰ में लट् लकार, उत्तम पुरुष एक॰व॰।

कोशः → **विदित** - बुद्धं बुधितं मनितं विदितम्। **महेश्वर** - शिवः शूली महेश्वरः। **मङ्गल** - कल्याणं मङ्गलं शुभम्। **अर्थिन्** - वनीयको याचनको मार्गणो याचकार्थिनौ। इत्यमरकोशः॥

66

प्रसङ्ग → छद्म वेश धारण किये हुए ब्रह्मचारी स्वयं (शिव) के अमङ्गलकारी स्वरूप की निन्द करते हुए पार्वती को समझाता हैं कि शिव

तुम्हारे योग्य वर नहीं हैं। अतः शिव को पति के रूप में पाने की इच्छा छोड़ देनी चाहिए। यहाँ से आगामि सात श्लोकों में शिव की निन्दापूर्वक पार्वती को तप से विरत करने के कथन का वर्णन है -

अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं न तु करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।
करेण शम्भोवलयीकृताहिना सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम्॥

(सञ्जी०) अवस्त्विति। अवस्तुनि तुच्छवस्तुनि निर्बन्धोऽभिनिवेशः परं प्रधानं यस्यास्तस्याः सम्बुद्धिः **अवस्तुनिर्बन्धपरे** पार्वति! [**आमुक्तविवाहकौतुकः**] आमुक्तमासञ्जितं विवाहे यत्कौतुकं हस्तसूत्रं तद्यस्य स **ते अयं करः**। 'कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः। **वलयीकृताहिना** भूषणीकृतसर्पेण **शम्भोः** महादेवस्य **करेण** करणभूतेन। [**तत्प्रथमावलम्बनम्**] तदेव प्रथमं तत्प्रथमम्। अपरिचितत्वादतिभयंकरमिति भावः। तच्च तदवलम्बनं ग्रहणं चेति **कथं नु सहिष्यते**। न कथञ्चिदपि सहिष्यत इत्यर्थः। अग्रतो यद्भावि तद्दूरेऽवतिष्ठतां प्रथमं करग्रह एव दुःसह इति भावः॥

(शिशु०) अमङ्गलाभ्यासरतित्वमाह - अवस्त्विति। हे अवस्तुनिर्बन्धपरे! अवस्तुन्यस्थाने निर्बन्धो हठो यस्यास्तत्सम्बुद्धौ। आमुक्तविवाहकौतुकः आमुक्तं बद्धं विवाहार्थं कौतुकं सूत्रं इति तेऽयं करः शम्भोर्भुजेन तत्प्रथमावलम्बनं तदाघग्रहणं कथं नु सहिष्यते। कीदृशेन। वलयीकृताहिना वलयीकृतः। कङ्कणीकृतोऽहिः सर्पा यत्र तेन। कौतुकं विषयादियोगसम्बन्धं सम्पर्कमर्हतः॥

अन्वयः → हे अवस्तुनिर्बन्धपरे! आमुक्तविवाहकौतुकः ते अयं करः वलयीकृताहिना शम्भोः करेण तत्प्रथमावलम्बनं कथं नु सहिष्यते?

अनुवाद → तुच्छ वस्तु के प्रति आग्रह रखने वाली हे पार्वती! विवाह के मङ्गल कङ्कणसूत्र को धारण किया हुआ तुम्हारा यह हाथ सर्प का कंकण पहने हुए शिव के हाथ के प्रथम ग्रहण को किस प्रकार सहन कर सकेगा?

शब्दार्थ → **अवस्तुनिर्बन्धपरे** = (निःसाराग्रहवति/तुच्छवस्तुहठपरे, असारवस्तुहठपरे पार्वति)हे असार/तुच्छ वस्तु को पाने का हठ करने वाली पार्वती, **आमुक्तविवाहकौतुकः** = (आसज्जितविवाहकङ्कणसूत्रः/आसज्जितपरिणयहस्तसूत्रः, आबद्धविवाहहस्तसूत्रः) विवाह के समय हाथ में मङ्गलसूत्र को धारण किया हुआ, **अयम्** = (पुरोवर्ती, एषः) यह, **ते** = (तव)तुम्हारा, **करः** = (पाणिः, हस्तः) हाथ, **शम्भोः =**

(शिवस्य)शिव के, **वलयीकृताहिना** = (आभूषणीकृतसर्पेण, भूषणीकृतभुजगेन)सर्प का ही कंकण पहने, **करेण** = (हस्तेन)हाथ के द्वारा, **तत्** = उस, **प्रथमावलम्बनम्** = (तत्प्रथमग्रहणम्)प्रथम स्पर्श अथवा ग्रहण को, **कथम् नु** = (केन प्रकारेण) कैसे, **सहिष्यते** = (सहनं करिष्यति, मर्षिष्यति) सह सकेगा।

भावार्थ → शिव में अनासक्ति उत्पन्न करने के उद्देश्य से ब्रह्मचारी पार्वती को समझा रहा है - हे पार्वती! तुम सारहीन और तुच्छ वस्तु की प्राप्ति के लिए व्यर्थ में हठ कर रही हो। तुम कल्पना करो कि यदि तुम्हारा विवाह शिव के साथ हो भी जाता है तो विवाह के समय तुम्हारे हाथ में मङ्गलसूत्र और शिव के हाथ में सर्प होगा तब बताओ कि पाणिग्रहण संस्कार के समय शिव तुम्हारा हाथ पकड़ेंगे तो तुम उस स्पर्श को कैसे सहन कर पाओगी?

भावार्थः → हे तुच्छवस्तुहठपरे पार्वति! शिवः स्वहस्ते कङ्कणरुपेण सर्पमेव धारयति। मङ्गलसूत्रयुक्तः तव हस्तं यदा शिवः पाणिग्रहणकाले ग्रहिष्यति तदा शिवहस्तदर्शनमात्रेण त्वं सभया सती पलायिष्यसे इति भावः।

व्याकरणम् → **अवस्तुनिर्बन्धपरे** - सम्बोधने प्र॰वि॰, एक॰व॰, न वस्तु इति अवस्तु (नञ् तत्पु॰ समास) अवस्तुनि निर्बन्धः अवस्तुनिर्बन्धः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) अवस्तुनिर्बन्धः परं यस्याः (बहु॰ समास)। **आमुक्तविवाहकौतुकः** - (आ+√मुच्+क्त) विवाहस्य कौतुकं विवाहकौतुकम् (ष॰ तत्पु॰ समास) आमुक्तं (पिनद्धम् - बंधा हुआ) विवाहकौतुकं यस्य सः (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ते** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **अयं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **करः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वलयीकृताहिना** - (वलय+च्वि+√कृ+क्त) अवलयः वलयः सम्पद्यमानः कृतः वलयीकृतः (च्वि प्रत्यय), वलयीकृतः अहिः यस्मिन् (बहु॰ समास) तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **शम्भोः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **करेण** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **तत्** - प्र॰वि॰, **अवलम्बनम्** - (अव+√लम्ब्+ल्युट्) तदेव प्रथमं तत्प्रथमं (कर्मधा॰ समास) तत्प्रथमञ्च अवलम्बनञ्च तत्प्रथमावलम्बनम् (कर्मधा॰ समास) तत् पुनस्तदेव द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **कथम्** - अव्ययपद। **नु** - अव्ययपद। **सहिष्यते** - √षह मर्षणे+लृट् लकार, आत्मने॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **आमुक्त** - आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धश्चापिनद्धवत्। **विवाह** - विवाहोपयमौ समौ। तथा परिणयोद्वाहोपयामाः पाणिपीडनम्।

शम्भु - शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः। **वलय** - कटको वलयोऽस्त्रियाम्। **अहि** - भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गमः। इत्यमरकोशः।

67

प्रसङ्ग → अमाङ्गलिक वस्त्रों को धारण करने वाले शिव के वस्त्र और पार्वती के वस्त्रों की तुलना करते हुए ब्रह्मचारी कहता है -

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितबन्दुवर्षि च॥

(सञ्जी०) त्वमेवेति। हे गौरि! **त्वम् एव स्वयम्** आत्मना। **तावत्** इति मानार्थे। यावन्मात्रं विचारणीयं तावन्मात्रमित्यर्थः। इदमेवोदाहृतं च गणव्याख्याने। **परिचिन्तय** पर्यालोचय। किमिति? **कलहंसलक्षणं** कलहंसचिह्नम्। 'चिह्न लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः। वध्वा नवोढाया दुकूलं **वधूदुकूलम्**। 'वधूः स्नुषा नवोढा स्त्री' इति विश्वः। तथा [**शोणितबन्दुवर्षि**] शोणितबिन्दून्वर्षतीति तथोक्तम्। आर्द्रमित्यर्थः। **गजाजिनं च** कृत्तिवासश्च। तत्पिनाकिन इत्याशयः। **एते कदाचित्** जात्वपि **योगं** संगतिम् **अर्हतः यदि** अर्हतः किम्? एतत्त्वमेव चिन्तयेति पूर्वेणान्वयः। पाणिग्रहणकाले वधूवरयोर्वस्त्रान्तग्रन्थिः क्रियते। कृत्तिवाससा पाणिपीडने तु दुकूलधारिण्यास्तव कथं संघटिष्यत इति भावः॥

(शिशु०) त्वमेवेति। भो गौरि! तावत्प्रथमं त्वमेव स्वयमात्मना परिचिन्तय विचारय। कदाचिदपि यदि एते द्वे योगं सम्बन्धमर्हतः प्राप्नुतः। एते के? कलहंसलक्षणं कलहंसो लक्षणं चिह्नं यस्य तत्तादृशं। वधूदुकूलं पट्टवस्त्रं क्व? शोणितबिन्दुवर्षिशोणितबिन्दून् वर्षतीति गजाजिनं गजचर्म च क्व॥

अन्वयः → (हे गौरि!) त्वमेव स्वयं तावत् परिचिन्तय कलहंसलक्षणं वधूदुकूलं तथा शोणितबिन्दुवर्षि गजाजिनं च एते कदाचित् योगम् अर्हतः यदि?

अनुवाद → हे पार्वती! तुम ही स्वयं थोड़ा विचार करो कि राजहंस के लक्षणों (चिह्नों) से चित्रित नवविवाहिता वधू को रेशमी वस्त्र और रक्त के बूंदों की वर्षा करने वाला हाथी की खाल - क्या ये दोनों कभी साथ रहने के योग्य हो सकते हैं?

शब्दार्थ → **त्वम्** = (गौरि!) हे पार्वती! तुम, **एव** = ही, **स्वयं** = (आत्मना) अपने आप, **तावत्** = (तावन्मात्रं) भली प्रकार तब, **परिचिन्तय** = (पर्यालोचय, विचारय) अच्छे से विचार करो, **कलहंसलक्षण-**

म् = (राजहंसचित्रचिह्नितं, कलहंसचित्रचित्रितम्) राजहंसो के चित्रों से युक्त, **वधूदुकूलम्** = (नवोढाक्षौमं, वधूक्षौमवस्त्रम्, नवोढोत्तरीयम्) वधू की रेशमी साड़ी, **च** = और, **शोणितबिन्दुवर्षि** = (रक्तबिन्दुस्रावि) रक्त की बूंदों को टपकाता हुआ, **गजाजिनम्** = (गजचर्म हस्त्यजिनम्) हाथी की खाल, **एते** = (इमे द्वे वस्तुनि) ये दोनों, **प्राप्नुतः** = लभेते किमु, **कदाचित्** = (कथमपि, जातु) कभी भी, **योगम्** = (सङ्गतिम्) संयोग के, **अर्हतः** = (योग्यतां प्राप्नुतः)योग्य हो सकते हैं? **यदि** = (किम्) क्या?

भावार्थ → ब्रह्मचारी पार्वती को समझा रहा है कि विवाह सर्वदा समान गुण वाले लोगों के बीच ही शोभा देता है। अतः हे पार्वती! मेरी बात को समझने का प्रयास करो। तुम स्वयं ही सोच- विचार कर यह बताओ कि यदि तुम दोनों का विवाह हो भी गया तो तुम सुन्दर हंसों के चित्र से युक्त रेशमी वस्त्रों को धारण करोगी और शिव के कन्धे पर खून की बून्दें टपकाती हुई हाथी का चर्म होगा। विवाह के समय वर और वधू के वस्त्रों का गठबन्धन किस प्रकार का दिखेगा? अर्थात् सभी लोग इस असंगत विवाह से असहमत ही होंगे।

भावार्थः → हे पार्वति! त्वं तावत् स्वयमेव विचारय यत् हसंपक्षीचिन्हाङ्कितं सूक्ष्मं नवोढावस्त्रं रूधिरबिन्दुस्त्रावि गजासुरचर्मरूपवसनं चेतिद्वयं कथं परस्परं संगति प्राप्स्यतीति विचारय।

व्याकरणम् → **त्वम्** - (युष्मद्) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **एव** - अव्ययपद। **स्वयं** - अव्ययपद। **तावत्** - (तद्+वतुप्) अव्ययपद। तावत्परिमाणमस्य तद्+वतुप्। **परिचिन्तय** - परि उपसर्ग पूर्वक √चिन्त् स्मृत्याम्+णिच्+-लोट् लकार, परस्मै॰ म॰ पु॰ एक॰व॰। **कलहंसलक्षणं** - कलश्चासौ हंसश्च (कर्मधा॰ समास) कलहंसस्य लक्षणं यस्मिन् (बहु॰ समास), तत् कलहंस लक्षणम् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। वधूदुकूलं - वध्वाः दुकूलम् (ष॰ तत्पु॰ समास) - तत् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **शोणितबिन्दुवर्षि** - (वर्ष+णिनि) शोणितस्य बिन्दवः शोणितबिन्दवः (ष॰ तत्पु॰ समास) शोणितबिन्दून् वर्षतीति - शोणितबिन्दुवर्षि - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **गजाजिनं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰, गजस्य अजिनं (ष॰ तत्पु॰ समास)। **एते** - प्र॰वि॰, द्वि॰व॰। **कदाचित्** - अव्ययपद। **योगम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अर्हतः** - √अर्ह+-लट् लकार, परस्मै॰ प्र॰पु॰, द्वि॰व॰।

कोशः → **तावत्** - यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे। **कलहंस** - कादम्बः कलहंसः स्यात्। **लक्षण** - चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्। **दुकूल** -

क्षौमं दुकूलं स्यात्। **शोणित** - रक्तक्षतजशोणितम्। **बिन्दु** - पृजन्ति बिन्दु पृषताः। **गज** - मतङ्गजो गजो कुञ्जरो वारणः करी। **अजिन -** अजिनं चर्मकृत्तिः स्त्री। **योगः** - सन्नहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु योगः।

अलङ्कार → यहाँ अनौचित्य के कारण अनेक वस्तुओं में अन्वय (सम्बन्ध) की कल्पना किए जाने के कारण विषम अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

68

प्रसङ्ग → ब्रह्मचारी समझाते हैं कि अमाङ्गलिक वस्तुओं को धारण करने वाले शिव के साथ श्मशान में किस प्रकार रह सकोगी -

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः परोऽपि को नाम तवानुमन्यते।
अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयोर्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु॥

(सञ्जी०) चतुष्केति। [**चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः**] चतुष्के गृहविशेषे यः पुष्पप्रकरस्तत्रावकीर्णयोर्न्यस्तयोः। कुसुमास्तृतदिव्यभवनभूसंचारोचितयोरित्यर्थः। **तव पादयोः अलक्तकाङ्कानि** लाक्षारञ्जितानि **पदानि** पादाकाराणि पादन्यासचिह्नानि। 'पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायोपदेशयोः। पादतच्चिह्नयोः' इति विश्वः। विकीर्णा विक्षिप्ताः केशाः शवशिरोरुहा यासु तासु **विकीर्णकेशासु**। 'अतत्स्थं तत्र दृष्टं च' इति वचनात्। ''स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्'' इति विकल्पान्न ङीप्। **परेतभूमिषु** प्रेतभूमिषु। श्मशानेष्वित्यर्थः। **परोऽपि** शत्रुरपि **को नाम अनुमन्यते**। न कोऽपीत्यर्थः नामेति कुत्सायाम्। पिनाकपाणिपाणिग्रहणे तस्य परेतभूसञ्चारित्वेन साहचर्यात्तवापि तत्र सञ्चारोऽवश्यं भावीति भावः।।

(शिशु०) चतुष्केति। भो पार्वति! चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोश्चतुःशाला ख्यग्रहभेदे यः पुष्पप्रकरस्तत्रावकीर्णयोविक्षितप्तयोस्तत्र सञ्चरणोचितयोरित्यर्थः। तव पादयोश्चरणयोरलक्तकाङ्कानि अलक्तो लाक्षारसस्तस्याङ्कं येषु तादृशानि पदानि न्यासान् विकीर्णकेशासु विकीर्णाः प्रसृताः केशा अस्थीनि च यासु तादृशीषु परेतभूमिषु श्मशानभूमिष्वित्यर्थः। परोपि शत्रुरपि को वाऽनुमंस्यतेऽनुज्ञास्यति॥

अन्वयः → चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः तव पादयोः अलक्तकाङ्कानि पदानि विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु परोऽपि को नाम अनुमन्यते?

अनुवाद → चतुष्कोण आँगन में बिखड़े हुए फूलों पर रखे जाने वाले तुम्हारे महावर के रंग से युक्त पैरों के चिह्न; मृतकों के केशों से आच्छादित श्मशान भूमि में रखने की अनुमति तुम्हारा शत्रु भी नहीं देगा।

शब्दार्थ → **चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः** = (पूष्पाच्छादितदिव्य-भूसञ्चारयोग्ययोः, प्राङ्गणपुष्पसमूहव्याप्तयोः)भवन के आँगन में बिखड़े हुए पुष्पसमूह पर रखे गए, **तव** = (ते, भवत्याः) तुम्हारे, **पादयोः** = (चरणयोः)दोनों पैरों के, **अलक्तकाङ्कानि** = (लाक्षारसरञ्जितानि, लक्षा-रसलिप्तानि) महावर/आलते के रंग से रंगे हुए, **पदानि** = (चरणचिह्नानि) चरण चिह्न, **विकीर्णकेशासु =** (विकीर्णेषु शिरोरुहासु परिक्षिप्तकचेषु, विक्षिप्तप्रेतशिरोरुहासु) मृतकों के बिखरे पड़े बालों वाली, **परेतभूमिषु** = (प्रेतभूमिषु, श्मशानस्थलेषु) श्मशान भूमियों में (पड़े ऐसा), **परः** = (शत्रुः) शत्रु, **अपि** = भी, **कः नाम** = (कः जनः निन्दार्थे कथम्, न कोऽपीत्यर्थः) कैसे, **अनुमन्यते** = (अनुज्ञास्यति, समर्थयते, अनुमतिं दास्यति) अनुमति दे सकता है? अर्थात् कोई नहीं दे सकता है।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पुनः शिव और पार्वती के निवासस्थान के पारस्परिक वैषम्य की ओर संकेत करते हुए कह रहा है कि हे पार्वती! तुम अब तक पिता के राजमहल में बिछे हुए फूलों पर चलती रही हो। विवाहोपरान्त तुम्हें शिव के साथ अपवित्र श्मशान भूमियों में विचरण करना पड़ेगा, उस श्मशान में शवों के बचे हुए केश, चर्म, अस्थि इत्यादि यत्र- तत्र बिखड़े हुए होते हैं। चुँकि मैं तुम्हारा मित्र हो गया हूँ अतः तुम्हारा हित चाहते हुए तुम्हें शिव से विवाह करने की इच्छा का त्याग करने को कह रहा हूँ। तुम्हारा कोई शत्रु भी ऐसा नहीं चाहेगा कि तुम्हारे सुकोमल और रंगे हुए पैर उस अपवित्र, अमंगल और वीभत्स श्मशान भूमि पर पड़ें।

भावार्थः → हे पार्वती! स्वपितुः प्रासादे त्वं पुष्पाच्छादितस्य प्राङ्गणस्य भूभागे सदा विचरणं करोषि परञ्च शिवः मृतकाणां केशैः आच्छादिते श्मशाने निवसति। विवाहात् परं त्वयाऽपि तत्रैव निवासं करणीयं भवि-ष्यति। एतादृशीं स्थितिं शत्रुजनोऽपि न स्वीकरिष्यति किमुत आत्मीय इति भावः।

व्याकरणम् → **चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः - (**प्रकर = प्र+√कृ-+अप् ; अवकीर्ण = अव+√कृ+क्त) पुष्पाणां प्रकरः (ष॰ तत्पु॰ समास), चतुष्के पुष्पप्रकरः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) चतुष्कपुष्पप्रकरेण अवकीर्णौ (तृ॰ तत्पु॰ समास), तयोः - ष॰वि॰, द्वि॰वि॰। **तव** - ष॰व॰, एक॰व॰। **पादयोः** - ष॰वि॰, द्वि॰वि॰।**अलक्तकाङ्कानि -** अलक्तकस्य अङ्कः येषां (बहु॰ समास) तानि द्वि॰वि॰, बहु॰व॰।**पदानि** - द्वि॰वि॰, बहु॰व॰।**विकी-**

र्णकेशासु - (वि+√कृ+क्त) विकीर्णाः केशाः यासु ताः (बहु॰ समास), तासु सप्त॰ वि॰, बहु॰व॰। **परेतभूमिषु** - सप्त॰ वि॰, बहु॰व॰, परलोकम् इतः गतः इति परेतः, परेतानां भूमयः (ष॰ तत्पु॰ समास) तासु। **परः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **नाम** - अव्ययपद। **अनुमन्यते** - अनु उपसर्ग पूर्वक √मन्+यक्, लट् लकार, आत्मने॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **पुष्प** - सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्। **परेत** - परासुप्राप्तपञ्चत्व परेतप्रेतसंस्थिताः। **पद** - पदं व्यसतित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रवस्तुषु। **अङ्क** - उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः।

अलङ्कार → यहाँ अनौचित्य के कारण अनेक वस्तुओं में अन्वय (सम्बन्ध) की कल्पना किए जाने के कारण विषम अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

69

प्रसङ्ग → पतिगृह में अमाङ्गलिक शिव के अङ्गों का स्पर्श भी अनुचित होगा ऐसा समझाते हुए ब्रह्मचारी कहते हैं -

अयुक्तरूपं किमतः पर वद त्रिनेत्रवक्षः सुलभं तवापि यत्।
स्तनद्वयेऽस्मिन्हरिचन्दनास्पदे पदं चिताभस्मरजः करिष्यति॥

(सञ्जी॰) अयुक्तेति। **त्रिनेत्रवक्षः**। त्र्यम्बकालिङ्गनमित्यर्थः। **तव** तत्सम्बन्धितया **सुलभम् अपि** सुप्रापं च। भवतीति शेषः। तवेति शेषे षष्ठी। ''न लोकाव्ययः'' इत्यादिना कृद्योगलक्षणषष्ठ्या निषेधात्। **अतःपरम्** अस्मात्त्रिनेत्रवक्षोपामादन्यद **अयुक्तरूपम्** अत्यन्तायुक्तं **किं वद**। न किंचिदित्यर्थः। ''प्रशंसायां रूपम्'' इति रूपप्रत्ययः। कुतः? **यत्** यस्मात्कारणात् [**हरिचन्दनास्पदे**] हरिचन्दनास्पदे हरिचन्दनस्यास्पदे स्थानभूते **अस्मिन् स्तनद्वये** [**चिताभस्मरजः**] चिताभस्म श्मशानभस्म तदेव रजश्चूर्णं कर्तृ। **पदं करिष्यति** पदं निधास्यति। भर्तुर्भवस्य भस्माङ्गरागादिति भावः॥

(शिशु॰) अयुक्तेति। अतःपरमस्मात्परं किमयुक्तरूपमनुचितं भवेत्। तद्वद। यत् त्रिनेत्रवक्षः सुलभं शम्भोर्वक्षसः सुलभं योग्यं चिताभस्मरजः कर्तृ हरिचन्दनास्पदे कुंकुमाङ्किते तवाप्यस्मिन् स्तनद्वये पदं स्थानमालिङ्गनवशात्करिष्यति।

अन्वयः → त्रिनेत्रवक्षः तव सुलभम् अपि, अतः परम् अयुक्तरूपं किम्? वद यत् हरिचन्दनास्पदे अस्मिन् स्तनद्वये चिताभस्मरजः पदं करिष्यति।

अनुवाद → शिव का वक्षस्थल यदि तुम्हें प्राप्त हो भी गया तो इससे बढ़कर अनुचित बात और क्या हो सकती हे? बताओ। क्योंकि हरिचन्दन से लिप्त इन दोनों स्तनों पर चिता की भस्म की धुलि लग जाएगी।

शब्दार्थ → **त्रिनेत्रवक्षः** = (शङ्करस्य उरःस्थलम्, शिवोरःस्थलम्) तीन आँखों वाले शिव का वक्षस्थल, **तव** = (भवत्याः)तुम्हें, **सुलभम्** = (सुप्राप्तम्, अपि) सरलता से प्राप्त हो जाने पर, **अपि** = भी, **अतः** = (अस्मात्) इससे, **परम्** = (इतोऽन्यत्) बढ़कर, **अयुक्तरूपम्** = (अत्यन्तमयुक्तम्, अनुचितम् किम्) अनुचित बात, **किम्** = (किमपि नास्ति) और क्या होगी?, **वद** = (कथय)यह बताओ। **यत्** = (यस्मात् कारणात्) जो, **हरिचन्दनास्पदे** = (हरिचन्दनस्थानभूते, दिव्यचन्दनचर्चिते, हरिचन्दनाङ्किते) सुगन्धित हरिचन्द लेप के योग्य, **अस्मिन्** = (एतस्मिन्) इन, **स्तनद्वये** = (कुचद्वये) दोनों स्तनों पर, **चिताभस्मरजः** = (श्मशानभस्मधूलिः, श्मशानभस्मरेणुः, श्मशानभस्मरजः) चिता के राख की धूल, **पदम्** = (स्थानम्) अपना स्थान, **करिष्यति** = (निधास्यति) प्राप्त कर लेगी अर्थात् लग जायेगी।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पार्वती को समझाते हुए कहता है कि शिव के साथ तुम्हारा विवाह कदापि उचित नहीं माना जा सकता है। तुम अपने सुन्दर स्तनों पर दिव्य हरिचन्दन का लेप करती हो और वह शिव अपने वक्षस्थल पर चिता की भस्म लगाता है। आलिङ्गन के समय शिव के वक्षस्थल पर लगी श्मशान की राख जब तुम्हारे स्तनों पर लग जाएगी तो ऐसी स्थिति में बताओ कि इससे बढ़कर अनुचित और क्या होगा?

भावार्थः → हरिचन्दनलेपयोग्ये तव स्तनद्वये शिवससमागमसमये चिताभस्मस्थानं करिष्यति। अस्मात् परं किम् अनुचितं भविष्यति?

व्याकरणम् → **त्रिनेक्षवक्षः** - त्रीणि नेत्राणि यस्य सः त्रिनेत्रः (बहु॰ समास), तस्य त्रिनेत्रस्य वक्षः इति त्रिनेत्रवक्षः (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सुलभम्** - (सु+√लभ्+खल्) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अपि** - अव्ययपद। **अतः** - अव्ययपद। **परम्** - अव्ययपद। **अयुक्तरूपम्** - न युक्तम् अयुक्तम् (नञ् तत्पुरुष), अतिशयेन अयुक्तम् - अयुक्तरूपम् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **किम्** - अव्ययपद। **यत्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **हरिचन्दनास्पदे** - हरेः चन्दनम् इति हरिचन्दनम् (ष॰ तत्पु॰ समास), हरिचन्दनस्य आस्पदं (ष॰ तत्पु॰ समास), तस्मिन् सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **अस्मिन्** - सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **स्तनद्वये** - सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **चिताभस्मरजः** - चितायाः

भस्म (ष॰ तत्पु॰ समास) चिताभस्मनः रजः (ष॰ तत्पु॰ समास) - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पदं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **करिष्यति** - √डुकृञ् करणे+लृट् लकार, परस्मै॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **युक्त** - युक्तमौपयिकं लभ्यं भजमानाभिनीतवत्। न्याय्यञ्च। **वक्ष** - उरो वत्सञ्च वक्षश्च। **हरिचन्दन** - पञ्चैते देवतरवः मन्दारः पारिजातकः। सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्। **आस्पदम्** - प्रतिष्ठा कृत्यमास्पदम्। **चिता -** चिता चित्या चितिः स्त्रियाम्। **भस्म** - भूतिर्भसित भस्मनी। **रजः** - रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना न द्वयोः रजः। इत्यमरकोशः।

70

प्रसङ्ग → सम्भावित विवाहोपरान्त आप दोनों को वृद्ध नन्दी बैल पर बैठकर जाते हुए देखकर समाज के लोग किस प्रकार उपहास करेंगे यह बताते हुए ब्रह्मचारी कहता हैं -

इयं च तेऽन्या पुरतो बिडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति॥

(सञ्जी०) इयमिति। **इयं च ते** तव **पुरतः** आदावेव **अन्या विडम्बना**। परिहास इत्यर्थः। का सेत्यत्राह - **ऊढया** परिणीतया। वहेः कर्मणि क्तः। **वारणराजहार्यया त्वया अधिष्ठितम्** आरूढं वृद्धमुक्षाणं **वृद्धोक्षम्**। ''अचतुः'' इत्यादिना निपातः **विलोक्य महाजनः** साधुजनः **स्मेरमुखः** स्मितमुखः **भविष्यति** उपहसिष्यति **यत्**। इयमिति पूर्वेण सम्बन्धः स्मेरेति। ''नमिकम्पिस्म्यजस॰' इत्यादिना रप्रत्ययः॥

(शिशु०) इयमिति। भो गौरि! पुरतोऽग्रतस्ते तवान्या विडम्बना परिहासः यत्कारणात् ऊढया विवाहितयाऽधिष्ठितमारूढं वृद्धवृषभं विलोक्य महाजनः स्मेरमुखो हसितवक्त्रो भविष्यति। कीदृश्या? वारणराजहार्यया वारणराजेनैरावतेन नेतव्यया। इन्द्रहस्त्यारोहणयोग्येत्यर्थः। वृद्धश्चासावुक्षश्चेति "अचतुरविचतुर॰'' इत्यादिना निपातितः॥

अन्वयः → इयं च ते पुरतो अन्या बिडम्बना (अस्ति)। ऊढया वारणराजहार्यया त्वया अधिष्ठितं वृद्धोक्षं विलोक्य महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति।

अनुवाद → (हे पार्वती) तुम्हारे सम्मुख एक और उपहासास्पद स्थिति होगी। विवाहित होकर श्रेष्ठ गजराज पर बैठ कर जाने योग्य तुम्हें वृद्ध नन्दी बैल पर बैठे हुए देखकर सज्जन लोग हँसेंगे।

शब्दार्थ → **च** = और, **इयम्** = (एषा, च)यह, **ते** = (भवत्याः, तव)

तुम्हारे, **पुरतः** = (सम्मुखम्, आरम्भे एव पतिगृहप्रस्थानवेलायाम्, प्रथम-मेव) सामने, **अन्या** = (अपरा, भिन्ना) एक दूसरी, **विडम्बना** = (परि-हासस्थितिः, परिहासः) परिहास की स्थिति होगी, **यत् =** कि, **उढया** = (कृतविवाहया, विवाहितया, विवाहितया) शादी करने के बाद, **वारणरा-जहार्यया** = (गजराजनेतव्या, गजराजवाहनयोग्यया) श्रेष्ठ गजराज पर ले जाने योग्य, **त्वया =** (भवत्या) तुम्हारे द्वारा, **अधिष्ठितम्** = (आरूढम्) आरूढ, **वृद्धोक्षम् =** (वृद्धवृषभं नन्दिनं परिणातवयसम्क्षाणाम्)बुढ़े नन्दी बैल को, **विलोक्य** = (दृष्ट्वा) देखकर, **महाजनः** = (साधुजनः, मान्य-जनः) समाज के प्रतिष्ठित लोग, **स्मेरमुखः =** (स्मितानन:, स्मितमुखः) मुस्कुराते हुए मुख वाले, **भविष्यति** = (भविता) हो जायेंगे।

भावार्थ → ब्रहाचारी पार्वती को समझा रहा है कि यदि तुमने शिव से विवाह कर ही लिया तो तुम्हारे सम्मुख बहुत बड़ी विडम्बना उपस्थित हो जाएगी। विवाहोपरान्त वर के साथ श्रेष्ठ गजराज पर जाने योग्य तुम्हें शिव के बूढ़े नन्दी बैल पर बैठकर ससुराल जाना पड़ेगा। तब वहाँ उप-स्थित सज्जन लोग तुम्हें देखकर उपहास करते हुए हँसी उड़ायेंगे। तनिक कल्पना करो कि वह क्षण तुम्हारे लिए कैसी विडम्बना वाली होगी। तुम्हें ऐसी भावी परिहास की स्थिति का विचार करते हुए शिव से विवाह का विचार त्याग देना चाहिए।

भावार्थः → तव कृते उपयुक्तं गजराजवाहनं वर्तते। शिवस्य वाहनं वृद्धः नन्दीवृषभः वर्तते। किन्तु पतिगृहगमनवेलायां इयं विचित्रा विडम्बना भविष्यति यत् यदा त्वं शिवेन सह नन्दीवृषभम् आरूह्य प्रयाणं करिष्यसि तदा तत्र उपस्थिताः सभ्यजनाः एतत् दृश्यं दृष्ट्वा हसिष्यन्ति।

व्याकरणम् → **इयम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पुरतः** - अव्ययपद। **अन्या** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **बिडम्बना** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ऊढया** - √वह प्रापणे+कर्म में क्त प्रत्यय - स्त्रीत्व विवक्षा में टाप्, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **वारणराजहार्यया -** (√हृय+ण्यत+टाप्) वारणानां राजा वारणराजः (ष॰ तत्पु॰ समास) वारणराजेन हर्तुम् योग्या, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **त्वया -** तृ॰वि॰, एक॰व॰। **अधिष्ठितं -** अधि उपसर्ग पूर्वक √स्था+इट्+क्त - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वृद्धोक्षं -** वृद्धश्चासौ उक्षः च (कर्मधा॰ समास), तम् वृद्धोक्षम्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विलोक्य** - (वि+√लोक+ल्यप्) वि उपसर्ग पूर्वक √लोक् दर्शने+क्त्वा के स्थान पर ल्यप् अव्ययपद। **महाजनः** - महांश्चासौ जनश्च (कर्मधा॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **स्मेरमुखः** - स्मेरं

मुखं यस्य सः (बहु० समास) प्र०वि०, एक०व०। **भविष्यति** - √भू+लृट् लकार, परस्मै०, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **पुरतः** - स्यात्पुरः पुरतोऽग्रतः। **वारणः** - कुञ्जरो वारणः करी। **वृद्धोक्षः** - वृषो महान् महोक्षः स्यात् वृद्धोक्षस्तु जरद्गवः। इत्यमरकोशः।

71

प्रसङ्ग → शिव से विवाह हेतु हतोत्साहित करते हुए ब्रह्मचारी पार्वती की शोचनीय स्थिति का वर्णन कर रहे हैं -

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥

(सञ्जी०) द्वयमिति। **पिनाकिनः** ईश्वरस्य **समागमप्रार्थनया** प्राप्तिकामनया। क्रियमाणयेति शेषः। **सम्प्रति द्वयं शोचनीयतां** शोच्यत्वं **गतम्**। किं तदाह - **सा** प्रागेव हरशिरोगता। अत्र सेति प्रसिद्धार्थत्वान्न यच्छब्दापेक्षा। तदुक्तं काव्यप्रकाशे - 'प्रकान्तप्रसिद्धानुभूतार्थविषयस्तच्छब्दो यदुपादानं नापेक्षते' इति **कान्तिमती**। नित्ययोगे मतुप्। **कलावतः** चन्द्रस्य **कला** षोडशो भागः **च**। **अस्य लोकस्य नेत्रकौमुदी**। नेत्रानन्दिनीत्यर्थः। **त्वं च**। कान्तिमतीत्वनेत्रकौमुदीत्वविशेषणयोरुभयत्राप्यन्वयः। प्रागेकैव शोच्या। सम्प्रति तु त्वमप्यपरेति द्वयं शोच्यमिति पिण्डितार्थः। शोच्यत्वं च निकृष्टाश्रयणादिति भावः॥

(शिशु०) द्वयमिति। भो गौरि! कपालिनः शम्भोः समागमप्रार्थनया समागमाभिलाषेण सम्प्रति द्वयं शोचनीयतां दीनतां गतं प्राप्तम्। किं तद् द्वयमित्याह। कलावतश्चन्द्रमसः कान्तिमती दीप्तिमती शम्भोः शिरसि वर्तमाना कला च। अस्य लोकस्य नेत्रकौमुदी चन्द्रिका त्वं च। कलावत इति विदग्धस्येत्यर्थान्तरम्॥

अन्वयः → पिनाकिनः समागमप्रार्थनया सम्प्रति द्वयं शोचनीयतां गतम्; सा कान्तिमती कलावतः कला, अस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी त्वं च।

अनुवाद → शिव को प्राप्त करने की इच्छा से इस समय दो वस्तुएँ शोक करने योग्य हैं - एक तो चन्द्रमा की कान्तिपूर्ण वह कला (सोलहवाँ भाग) और दूसरी तुम जो इस संसार के नेत्रों की ज्योत्सना (चाँदनी) हो।

शब्दार्थ → **पिनाकिनः** = (शङ्करस्य, शिवस्य) पिनाकी शिव की, **समागमप्रार्थनया** = (प्राप्तिकामनया, प्राप्तिवाञ्छया) संगति की कामना (पतिरूप में प्राप्ति की इच्छा) के कारण, **सम्प्रति** = (साम्प्रतं, इदानीम्)

इस समय, **द्वयम्** = (द्वितयम्, वस्तुद्वयम्) दो वस्तुएँ, **शोचनीयताम्** = (शोकवास्तव्यताम्, शोकावस्थाम्) शोचनीय स्थिति को, **गतम्** = (प्राप्तम्) प्राप्त हो गयी है, **सा** = (प्रसिद्धा, प्रागेव हरशिरोगता) वह, **कान्तिमती** = (दीप्तिमती, शोभातिशययुक्ता) मनोहर प्रकाश/शोभा से युक्त, **कलावतः** = (चन्द्रस्य, सुधाकरस्य) चन्द्रमा की, **कला** = (षोड्शभागरूपा, रेखा) कला (शिव के मस्तक पर स्थित सोलहवाँ भाग), **च** = और, **अस्य** = (एतस्य) इस, **लोकस्य** = (भुवनस्य, जगतः) संसार के, **नेत्रकौमुदी** = (नयनचन्द्रिका, दर्शनमात्रेण नयनाह्लादिनी, लोचनचन्द्रिका) आँखों को चाँदनी के समान आनन्दित करने वाली, **त्वम् च** = (भवती च) तुम।

भावार्थ → अमाङ्गलिक शिव को प्राप्त करने पर पार्वती के भावी दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए ब्रह्मचारी कह रहा है कि हे पार्वती! तुम शिव के साथ विवाह करने का हठ छोड़ दो। अमाङ्गलिक शिव के संसर्ग को प्राप्त करके चन्द्रमा की प्रसिद्ध कान्तिमती कला शोचनीय स्थिति को प्राप्त हो गई है। अर्थात् पूर्णिमा की चन्द्रमा अपनी कई कलाओं को खोकर अपना प्रकाश क्षीण करवा चुकी है। पुनः तुम भी वही कार्य करना चाहती हो। अच्छी से अच्छी वस्तु भी अमङ्गल के संसर्ग से अपनी शोभा खो देती है। तुम अपने रूप गुण शील और सौन्दर्य के कारण इस संसार की ज्योत्स्ना हो। अमाङ्गलिक शिव की अर्धांगिनी बनकर शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रकला की भाँति तुम भी शोचनीय स्थिति को प्राप्त करोगी।

भावार्थः → सम्प्रति शिवस्य समागमप्रार्थनया वस्तुद्वयं सम्प्रति शोच्यतां गतम्। एका शिवशिरोगता अतिकान्तिमती लोकप्रसिद्धा चन्द्रमसः कला, द्वितीया च त्रिलोकवासिनो जनस्य नेत्रकौमुदी नयनानन्दजननी त्वम्। अतः त्वया शिवप्राप्तिकामना व्यक्तव्या इति भावः।

व्याकरणम् → **पिनाकिनः** - (पिनाक+इनि) पिनाकः अस्यास्तीति मतुपर्थे इनि प्रत्यय - ष॰वि॰, एक॰व॰। **समागमप्रार्थनया** - (सम्+आ-+√गम्+अप्) समागमस्य प्रार्थना (ष॰ तत्पु॰ समास), तया, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **सम्प्रति** - अव्ययपद। **द्वयम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **शोचनीयताम्** - (√शुच्+णिच्+अनीयर्+टाप्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰) शोचितुं योग्यं शोचनीयम् (शुच्+अनीयर्) तस्य भावः शोचनीयता, ताम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **गतम्** - √गम्+क्त प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कान्तिमती - (कान्ति+मतुप्+ङीप्) कान्तिः अस्याम् अस्तीति- प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कलावतः** - (कला+वतुप्) कलाः अस्य सन्तीति कलावान्, तस्य कलावतः, ष॰वि॰, एक॰व॰। **कला** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **लोकस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **नेत्रकौमुदी** - नेत्राणां कौमुदी (ष॰ तत्पु॰ समास) - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **त्वम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कोशः → **सम्प्रति** - एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुनासाम्प्रतं तथा। **कला** - कला तु षोडशो भागः। **कान्तिः** - शोभा कान्तिद्युतिश्छविः। **लोकः** - लोकस्तु भुवने जने। **कौमुदी** - चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना। इत्यमरकोशः।

72

प्रसङ्ग → कन्या के अनुरूप वर की खोज की जाती है किन्तु तुम्हारे अनुरूप शिव में एक भी गुण अथवा योग्यता नहीं है -

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥

(सञ्जी॰) वपुरिति। **वपुः** तावदस्य विरूपाणि विकृतरूपाण्यक्षीणि नेत्राणि यस्य तद् **विरूपाक्षम्**। ''बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्'' इति षच्प्रत्ययः। वैरूप्यं च त्रिनेत्रत्वादिति क्षीरस्वामी। अतो न सौन्दर्यवार्तापीत्यर्थः। [**अलक्ष्यजन्मता**] अलक्ष्यमज्ञातं जन्म यस्य तस्य भावस्तत्ता। कुलमपि न ज्ञायत इत्यर्थः। 'अलक्षिता जनिः' इति पाठे, जनिरुत्पत्तिरलक्षिता न ज्ञाता। 'जनिरुत्पत्तिरुद्भवः' इत्यमरः। **वसु** वित्तं **दिगम्बरत्वेन** एव **निवेदितम्**। नास्तीति ज्ञापितमित्यर्थः। यदि वित्तं भवति तदा कथं दिगम्बरो भवति। अतो ज्ञेयं निर्धनोऽयमिति। किं बहुना हे **बालमृगाक्षि** पार्वति! **वरेषु** वोढृषु 'वरो जामातृवोढारौ' इति विश्वः। **यत्** रूपवित्तादिकं **मृग्यते** कन्यातद्बन्धुभिरन्विष्यते **तत् त्रिलोचने** त्र्यम्बके **व्यस्तम्**। एकम् **अपि** समस्तं मा भूदिति भावः। **अस्ति किम्**? नास्त्येवेत्यर्थः॥

(शिशु॰) वपुरिति। बालमृगस्याक्षिणी इवाक्षिणी यस्यास्तत्सम्बुद्धौ वरेषु रूपकूलवित्तादि यदपेक्ष्यते। तद्व्यस्तमेकमपि त्रिलोचने हरेस्ति स्वयं विचारय। समस्तं तिष्ठतु। यतोस्य शम्भोर्वपुर्विरूपमग्निरूपमान्। पिङ्गलत्वाच्च। कीदृशं वपुः? विरूपाक्षं विरूपं भीषणमक्षि तृतीयनेत्रं यस्य यत्। अलक्षमज्ञेयं जन्म यस्य तस्य भावः। तस्य कुलमपि न ज्ञायत इत्यर्थः। दिगम्बरत्वेन नग्नतया वसुधानमपि निवेदितं सूचितमिति भावः॥

अन्वयः → वपुः विरूपाक्षम् अलक्ष्यजन्मता वसु दिगम्बरत्वेन निवेदितम् बालमृगाक्षि! वरेषु यद् मृग्यते तत् व्यस्तमपि त्रिलोचने अस्ति किम्?

अनुवाद → शरीर विकृत नेत्रों वाला है, जन्म का कुल अज्ञात है, नग्न रहने से धन- सम्पन्ति का पता चल रहा है। हे बालमृग के समान नेत्रों वाली पार्वती! वर के विषय में जिन- जिन बातों की खोज की जाती है; उनमें से एक भी शिव में है क्या?

शब्दार्थ → **वपुः =** (शरीरम्)शरीर, **विरूपाक्षम्** = (विकृतलोचनम् त्रिलोचनत्वात्, विकृतनयनम्) तीन आँखें होने के कारण विकृत रूप वाला, **अलक्ष्यजन्मता =** (अज्ञातजन्मत्वम्, कुलमपि न ज्ञायते इत्यर्थः, अज्ञातोत्पत्तिता) अज्ञात जन्म तथा कुल वाले, **वसु** = (धनम्) धन सम्पत्ति, **दिगम्बरत्वेन =** (नग्नत्वेन) दिशा रूपी वस्त्र वाला होने (अर्थात् नग्न रहने) के कारण, **निवेदितम्** = (सूचितम्)सूचित हो गया, **बालमृगाक्षि =** (बालहरिणनयने, हे बालकुरङ्गलोचने)बालमृग के समान नेत्रों वाली गौरी! **वरेषु** = (वोढृषु पाणिग्रहणकर्तृषु) वरों (विवाह योग्य पुरुषों) में, **यत्** = (रूपवित्तादिकं, धनरूपकुलादिकम्, रुपधनादिकम्)जो कुछ, **मृग्यते** = (अन्विष्यते) खोजा जाता है, **तद् =** रूपधनादिकम्, **तत् =** वह, **त्रिलोचने** = (त्रिनेत्रे शिवे) तीन नेत्रों वाले शिव में, **व्यस्तम् अपि** = (एकम् अपि) अलग- अलग एक भी, **अस्ति** = (वर्तते, विद्यते) है, **किम्** = क्या?

भावार्थ → पार्वती की मानसिक दृढ़ता को जाँचने के उद्देश्य से ब्रह्मचारी कहता है कि वर में अनेक योग्यताओं की परीक्षा की जाती है; यथा - कुल, रूप, धन, विद्या आदि। परन्तु शिव को दो आँखों की जगह तीन आँखें हैं। जन्म का स्थान, काल और कुल अज्ञात है। नग्न रहने के कारण उसकी दरिद्रता सर्वविदित है। कहने का अभिप्राय यह है कि वर में जितनी भी योग्यतायें होनी चाहिए उनमें से एक भी शिव में नहीं है। इन सब बातों को जानते हुए तुम अनजान क्यों बन रही हो और अपनी स्थिति को क्यों शोचनीय बनाना चाहती हो?

भावार्थः → प्रायः लोके कन्याभिः बान्धवैश्च विवाहात् पूर्वं वरस्य सौन्दर्यं, कुलीनतां सम्पन्नतां च अन्विष्यते। तेषु एकमापि शिवे नास्ति अपितु तत् सर्वं विपरीतमेव दृश्यते यतोहि शङ्करस्य देहं तावतं त्रिलोचनं वर्तते अस्योत्पत्तिरपि न ज्ञातास्ति। नग्नवेशत्वेनास्य धनाभावो ज्ञायते। अतएव शिवप्राप्तिकामनां त्यजतु इति भावः।

व्याकरणम् → **वपुः** - प्र०वि०, एक०व०। **विरूपाक्षम्** - विरूपम् अक्षि यस्य यस्मिन् वा इति विरूपाक्ष (बहु० समास) प्र०वि०, एक०व०।

अलक्ष्यजन्मता - (जन्म+तल्) न लक्ष्यम् अलक्ष्यम् (नञ्तत्पुरुष) अलक्ष्यं जन्म यस्य स अलक्ष्यजन्मा (बहु॰ समास), अलक्ष्यजन्मनो भावः - अलक्ष्यजन्मता - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वसु** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **दिगम्बरत्वेन** - दिक् एव अम्बरं यस्य सः दिगम्बरः (बहु॰ समास) तस्य दिगम्बरस्य भावः दिगम्बरत्वम् तेन, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **निवेदितम्** - (नि+√विद्+णिच्+-क्त) नि उपसर्ग पूर्वक √विद्+इट्+क्त - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **बालमृगाक्षि** - बालश्चासौ मृगश्च (कर्मधा॰ समास) बालमृगः, तस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः (बहु॰ समास) सा, सम्बो॰ एक॰व॰। **वरेषु** - (√वृ+अप्) सप्त॰ वि॰, बहु॰व॰। **मृग्यते** - √मृज्+यक्+आत्मने॰ लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **त्रिलोचने** - त्रीणि लोचनानि यस्य सः त्रिलोचनः (बहु॰ समास) तस्मिन् सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **व्यस्तम्** - वि+अस्+क्त, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अस्ति** - √अस् भुवि+परस्मै॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **दिगम्बर** - नग्नोऽवासा दिगम्बरः। **वसु** - वसू रश्मौ धने वसु। **विरूपाक्षः** - विरूपाक्षस्त्रिलोचने। **व्यस्त** - व्यस्ते त्वप्रगुणाकुलौ। इत्यमरकोशः।

73

प्रसङ्ग → शिव की पर्याप्त निन्दा कर लेने के उपरान्त अनेक प्रकार से विवाह की अभिलाषा के अनौचित्य का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्मचारी पार्वती को करणीय कार्य का उपदेश देता है -

निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा।
अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया॥

(सञ्जी॰) निवर्तयेति। **अस्मादसदीप्सितात्** अनिष्टमनोरथात् **मनः निवर्तय** निवारय। **तद्विधः** पूर्वोक्ता विधा प्रकारो यस्य तथोक्तः। अमङ्गलशील इत्यर्थः। क्व? महदन्तरमित्यर्थः। **पुण्यलक्षणा** प्रशस्तभाग्यचिह्ना **त्वं च क्व**? अतो न तवायमर्ह इत्यर्थः। तथाहि। **साधुजनेन**। 'साधुर्वाधुषिके चारौ सज्जने चाभिधेयवत्' इति विश्वः। **श्मशानशूलस्य** श्मशानभूमिनिखातस्य वध्यशङ्कोः। **वैदिकी** वेदोक्ता यूपो नाम पशूबन्धनसाधनभूतः संस्कृतदारुविशेषस्तस्य सत्क्रिया प्रोक्षणाभ्युक्षणादिसंस्कारो **यूपसत्क्रिया न अपेक्ष्यते** नेष्यते। यथा श्मशानशूले यूपसत्क्रिया न क्रियते तथा त्वमपि तस्मै न घटस इति तात्पर्यार्थः॥

(शिशु॰) निवर्तयेति। अस्मादसदीप्सितादसाध्वभिलाषान्मनश्चित्तं निवर्तय। यतस्तद्विधः सा पूर्ववर्णिता श्मशानवासादिरूपा विधा प्रकारो यस्य

स हरः क्व? पुण्यं रम्यं लक्षणं यस्याः सा त्वं क्व? अत्यन्तासङ्गतिद्योतको क्वशब्दौ। यतः साधुजनो वध्यस्थाने चौरनिग्रहार्थं निखातस्य शूलस्य वैदिकी वेदोक्तां यूपसत्क्रियां यज्ञयूपस्य सत्क्रिया तां नापेक्षते न कुरुते। यथा यज्ञयूपसंस्कारा शूलं नार्हन्ति। तथा दुर्भगो हरस्त्वत्सबन्धेन संस्कारं नार्हतीत्यर्थः॥

अन्वयः → अस्मात् असदीप्सितात् मनः निवर्तय। तद्विधः क्व? पुण्यलक्षणा त्वं च क्व? साधुजनेन श्मशानशूलस्य वैदिकी यूपसत्क्रिया न अपेक्ष्यते।

अनुवाद → इस अनिष्टकारी अभिलाषा से मन को हटा लो। उस प्रकार का कहाँ वह (अमंगल शिव) है और कहाँ पुण्य लक्षणों वाली तुम हो। सज्जन व्यक्ति श्मशान में गड़े शूल (खूटाँ, स्तम्भ) का वेदों मे वर्णित यज्ञ- स्तम्भ के लिए उपयोग नहीं करते हैं।

शब्दार्थ → **अस्मात्** = (एतस्मात्) इस, **असदीप्सितात्** = (अनिष्टमनोरथात्, अनिष्टेच्छायाः) अनिष्टकारी इच्छा से, **मनः** = (चित्तं हृदयम्, वतः) मन को, **निवर्तय** = (निवारय)हटा लो, **तद्विधः** = (तादृशः अमङ्गलरूपः शिवः, तादृशः अमङ्गलशीमः हरः क्व) उस प्रकार का (अमङ्गलकारी शिव), **क्व** = (कुत्र, असीति शेषः)कहाँ? **च** = और, **पुण्यलक्षणा** = (प्रशस्तभाग्यचिह्ना, उत्तमलक्षणसम्पन्ना, प्रशस्तवधूलक्षणापूर्णा)शुभ लक्षणों से सम्पन्न, **त्वम् च** = (भवती च)तुम, **क्व** = (कुत्र, असीति शेषः)कहाँ? (अर्थात् दोनों में पर्याप्त विषमतायें हैं), **साधुजनेन** = (सज्जनेन, विवेकिना) सज्जनों के द्वारा, **श्मशानशूलस्य** = (श्मशानभूमिनिखातस्य, वध्यारोपणशङ्कोः, शमशानभूमिस्थितवधारोपणशूलस्य) श्मशान में शवदाह हेतु गड़ी हुई लकड़ी का, **वैदिकी** = (वेदविहिता, वेदोक्ता) वेद विहित, **यूपसत्क्रिया** = (यज्ञस्तम्भसंस्कारः, यूपसंस्कारः) यज्ञ में लगाये गये स्तम्भ संस्कार, **न** = (नहि) नहीं, **अपेक्ष्यते** = (इष्यते, क्रियते) सम्पन्न किये जाते हैं।

भावार्थ → ब्रह्मचारी पार्वती को समझाते हुए कहता है कि हे पार्वती! मैंने शिव के सम्बन्ध में सभी वास्तविकताओं से तुम्हें अवगत करा दिया है। अतः उस अमङ्गलकारी शिव को प्राप्त करने की अभिलाषा का परित्याग कर दो। तुम्हारे और उसके गुणों में जमीन और आसमान का अन्तर है। परस्पर समान गुण रहने पर ही विवाह उचित होता है। जिस प्रकार श्मशान में शव को जलाने के लिए गाड़ी गई अपवित्र लकड़ी पवित्र

यज्ञस्थल में स्तम्भ आदि निर्माण के लिए उपयुक्त नहीं होती है उसी प्रकार श्मशानवासी यह अपवित्र शिव तुम्हारे लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

भावार्थः → पूर्वोक्तकारणाद् हे पार्वति! पतिरुपेण शिवप्राप्तिरूपात् अनिष्टमनोरथात् स्वकीयं मनो निवारय। पूर्वकथितसम्पूर्णदोषाधिष्ठान-भूतः स शिवः क्व सामुद्रिकशास्त्रोक्तसकललक्षणसम्पन्ना च त्वं क्व? उभयोः अस्ति महदन्तरम्। यथा वैदिको यूपसंस्कारः श्मशानस्तम्भस्य न भवति तथा त्वादृशायाः सौभाग्यवत्या वध्वाः सम्बन्धः श्मशानवासिना शिवेन सह न युज्यते।

व्याकरणम् → **अस्मात्** - पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **असद्- ईप्सितात्** - न सत् असत् (नञ् तत्पु॰ समास) असच्च तदीप्सितञ्च (कर्मधा॰ समास) असदीप्सितम्, तस्मात्, पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **मनः** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **निवर्तय** - नि उपसर्ग पूर्वक √वृतु वर्त्तने+णिच्+परस्मै॰, लोट् लकार, म॰ पु॰, एक॰व॰। **तद्विधः** - सा विधा यस्य सः - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **क्व -** अव्ययपद। **पुण्यलक्षणा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰, पुण्यानि लक्षणानि यस्याः सा (बहु॰ समास)। **साधुजनेन** - साधुश्चासौ जनश्च (कर्मधा॰ समास), तेन, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **श्मशानशूलस्य** - श्मशानस्य शूलम् (ष॰ तत्पु॰ समास), तस्य, ष॰वि॰, एक॰व॰। **वैदिकी** - (वेद+ठक्+ङीप्) वेदे प्रोक्ता भवा वा, - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **यूपसत्क्रिया** - सती चासौ क्रिया च सत्क्रिया (कर्मधा॰ समास) यूपस्य सत्क्रिया - (ष॰ तत्पु॰ समास) - सा, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अपेक्ष्यते** - अप उपसर्ग पूर्वक √ईक्ष् दर्शने+यक्+आ-त्मने॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **साधु** - महाकुलकुलीनार्थसभ्यसज्जनसाधवः। **श्मशान** - श्मशानं स्यात्पितृबनम्। **शूल** - अस्त्री शूलं रुगायुधम्। **पुण्य** - पुण्यन्तु चार्वपि। इत्यमरकोशः। **विध** - विधः विधौ प्रकारे च।

अलंकार → अप्रस्तुतप्रशंसा

74

प्रसङ्ग → ब्रह्मचारी के द्वारा शिव की निन्दा और शिव को पति प्राप्ति की अभिलाषा का परित्याग करने की बातें सुनकर पार्वती क्रोधपूर्वक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रही है -

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया।
विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते॥

(सञ्जी॰) इतीति - **इति** एवं प्रकारेण **द्विजातौ** द्विजे **प्रतिकूलवादि-**

नि सति [**प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया**] प्रवेपमानेन चञ्चलेनाधरेणाधरोष्ठेन लक्ष्योऽनुमेयः कोपः क्रोधो यस्यास्तथोक्तया **तथा** पार्वत्या **उपान्तलोहिते** प्रान्तरक्ते **विलोचने** [**विकुञ्चितभ्रूलतं**] विकुञ्चिते कुटिलिते भ्रूलते यस्मिंस्तत्तथा। सभ्रूभङ्गमित्यर्थः। **तिर्यक्** साचि **आहिते** निहिते अनादरात्तिर्यगैक्ष्यतेत्यर्थः॥

(शिशु०) इतीति। इति प्रतिकूलवादिनि प्रतिकूलमप्रियं वदतीति तादृशे द्विजातौ विप्रे सति तया विलोचने नेत्रे तिर्यगाहिते क्षिप्ते। कीदृशे नेत्रे उपात्तलोहिते रोषात्सम्मुखदर्शनं। विकुञ्जिता कुटिलीकृता भ्रूलता यत्र तत्। एवं यथा स्यात्तथा। कीदृश्या तया? प्रवेपमानाभ्यामधराभ्यां लक्ष्यः कोपो यस्यास्तया॥

अन्वयः → इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया तया उपान्तलोहिते विलोचने विकुञ्चितभ्रूलतं तिर्यक् आहिते।

अनुवाद → इति प्रकार ब्राह्मण के द्वारा प्रतिकूल वचन बोलने पर फड़कते हुए अधरों से जिसका क्रोध अभिव्यक्त हो रहा था; ऐसी उस पार्वती की आँखें क्रोध के कारण लाल हो गई, भृकुटियाँ टेढी हो गई और वह वक्र दृष्टि से देखने लगी।

शब्दार्थ → **इति** = (इत्थम्, एवं प्रकारेण, एवम्) इस प्रकार से, **द्विजातौ** = (ब्राह्मणे, द्विजे) ब्राह्मण के द्वारा, **प्रतिकूलवादिनि** = (अप्रियभाषिणी विरुद्धवादिनि सति, विपरीतभाषिणि) विरुद्ध वचन बोलने पर, **प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया** = (कम्पमानौष्ठानुमेयक्रोधया, प्रकम्पमानोष्ठानुमेयक्रोधया) काँपते अधर से व्यक्त होते क्रोध वाली, **तया** = (पार्वत्या) उस पार्वती के द्वारा, **उपान्तलोहिते** = (प्रान्तरक्ते, अपाङ्गरक्तके) नेत्र के किनारों पर लालिमा युक्त, **विलोचने** = (नेत्रे, नयने) दोनों नेत्रों को, **विकुञ्चितभ्रूलतम्** = (कुटिलभ्रूलतम्, सभ्रूभङ्गम्) भौहों को सिकोड़ते हुए, **तिर्यक्** = (साचि)तिरछा, **आहिते =** (निहिते, अकारिषाताम्) किया गया।

भावार्थ → शिव की निन्दा सुनकर पार्वती ब्रह्मचारी पर क्रोधित हो गई। क्रोध के कारण पार्वती की भौंहें टेढ़ी और आखें लाल हो गयी। पार्वती के होंठ काँपने लगे। अत्यधिक क्रोध के कारण पार्वती ने सीधी दृष्टि से ब्रह्मचारी को नहीं अपितु तिरस्कार के उद्देश्य से तिर्यक (वक्र) दृष्टि से देखा।

भावार्थः → यदा ब्रह्मचारी शिवं प्रति अनेकविधविरुद्धकथनमकरोत्

तदा क्रोधवशात् कम्पमानाधरलोचना रक्तापाङ्गनेत्रा पार्वती स्वकीयं वक्रीकृत्य तं ब्रह्मचारिणमपश्यत्।।

व्याकरणम् → **द्विजातौ** - द्वे जाती (जन्मनी) यस्य सः (बहु॰ समास) द्विजातिः, तस्मिन् समास, एक॰व॰। **प्रतिकूलवादिनि** - प्रतिकूलं वदतीति - प्रतिकूल+वद+णिनि - तस्मिन्, सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया** - (प्र+√वेप्+शानच्, कोप = √कुप्+घञ्) प्रवेपमानश्चासौ अधरश्च (कर्मधा॰ समास), प्रवेपमानाधरेण लक्ष्यः कोपः यस्याः (बहु॰ समास) सा, तया - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **उपान्तलोहिते** - उपान्तयोः लोहितः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, द्वि॰व॰। **विलोचने** - द्वि॰वि॰, द्वि॰व॰। **विकुञ्चितभ्रूलतं** - भ्रू लता एव (उपमानोत्तरकर्मधा॰ समास) भ्रूलते, विकुञ्चिते भूलते यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा - विकुञ्चितभ्रूलतम्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **तिर्यक्** - अव्ययपद। **आहिते** - आङ् उपसर्ग पूर्वक √धा+क्त द्वि॰वि॰, द्वि॰वि॰।

कोशः → **प्रतिकूल** - प्रसव्यं प्रतिकूलं स्यादसव्यमपष्ठु च। **भ्रू** - ऊर्ध्वे दृग्भ्यां ध्रुवौ स्त्रियौ। **लोचन** - लोचनं नयनं नेत्रम्। **तिर्यक्** - तिरोऽन्तर्धौ तिर्यगर्थे हा विषादाशु गतिषु। **लोहित** - लोहितो रोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः। **द्विजाति** - द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः। **कोप** - कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिधारुट्क्रुधौ स्त्रियौ। इत्यमरकोशः।

75

प्रसङ्ग → शिवविषयक निन्दावचनों को सुनकर पार्वती ने ब्रह्मचारी को प्रत्युत्तर देना शुरू किया -

उवाच चैनं परमार्थतो हरं न वेत्सि नूनं यत् एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्॥

(सञ्जी॰) उवाचेति। अथ **एनं** ब्रह्मचारिणं **उवाच च**। किमिति **परमार्थतः** तत्त्वतः **हरं न वेत्सि** न जानासि **नूनम्**। कुतः? **यतः मामेवम्** उक्तया रीत्यात्थ ब्रवीषि। ''ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः'' इति रूपसिद्धिः। अज्ञानादेवायं शिवद्वेषस्तवेत्याशयेनाह - **मन्दाः** मूढाः। 'मूढाल्पापटुनिर्भाग्या मन्दाः'। इत्यमरः। लोकसामान्यमितरजनसाधारणं न भवती इति **अलोकसामान्यम् अचिन्त्यहेतुकं** दुर्बोधकारणकं **महात्मनां चरितं द्विषन्ति** हेत्वपरिज्ञानाद्दूषयन्ति। विद्वांसस्तु कोऽप्यत्र हेतुरस्तीति बहु मन्यन्त इत्यर्थः॥

(शिशु॰) उवाचेति। न केवलं नेत्रे तस्मिन् तिर्यक्क्षिप्तो एवं वर्णिन-

मुवाच च। परमार्थतस्त्वं हरं न वेत्सि यतो मामेवमात्थ ब्रूषे। शम्भोरज्ञाने हेत्वन्तरमाह। यतो मन्दा मूर्खा महात्मनामुत्तमानां चरितं द्विषन्ति निन्दन्ति। कीदृशं? अलोकसामान्यं सर्वोत्कृष्टं। पुनः कीदृशमचिन्त्यहेतुकं लोकैरचिन्त्यो ज्ञेयो हेतुर्यस्य तत्तादृशम्॥

अन्वयः → एनम् उवाच च - नूनम् त्वं परमार्थतः हरं न वेत्सि। यतः माम् एवम् आत्थ। मन्दाः अलोकसामान्यम् अचिन्त्यहेतुकं महात्मनां चरितं द्विषन्ति।

अनुवाद → और (उस पार्वती ने) इस (ब्रह्मचारी) से कहा - तुम निश्चय ही वास्तविक रूप में शिव को नहीं जानते हो अतएव मुझसे (शिव के बारे में) ऐसा कह रहे हो। मूर्ख लोग महात्माओं के असाधारण और अचिन्तनीय चरित्र से द्वेष करते हैं।

शब्दार्थ → **च** = और, **त्वम्** = तुम, **एनम्** = (ब्रह्मचारिणम्, च, वर्णिनम्) इस ब्रह्मचारी को, **उवाच** = (अब्रवीत्, अब्रवीच्च)कहा, **नूनम्** = (निश्चितरूपेण, निश्चयेन) निश्चय ही, **परमार्थतः** = (यथार्थतः, स्वरूपतः)वास्तविक रूप में, **हरम्** = (शिवम्) शिव को, **न** = (नहि) नहीं, **वेत्सि** = (जानासि)जानते हो, **यतः** = (यस्मात् हेतोः, येन कारणेन) जिस कारण से, **माम्** = (पार्वतीम्) मुझको, **एवम्** = (इत्थम्, उक्तप्रकारेण) इस प्रकार, **आत्थ** = (ब्रवीषि, कथयसि, ब्रूषे) कह रहे हो। **मन्दाः** = (मूढाः मन्दबुद्धयः) मूर्ख लोग, **महात्मनाम्** = (महानुभावानां महापुरुषाणाम्, महताम्) श्रेष्ठजनों के, **अलोकसामान्यम्** = (असाधारणम्, लोकविलक्षणम्) सांसारिक दृष्टि से विलक्षण अर्थात् असाधारण, **अचिन्त्यहेतुकम्** = (दुर्बोधकारकम्, दुर्ज्ञेयकारणकम्) अकल्पनीय कारण वाले, **चरितम्** = (चरित्रम्, आचरणम् व्यवहारम् वा) चरित्र से, **द्विषन्ति** = (दूषयन्ति) द्वेष करते हैं।

भावार्थ → क्रोधित पार्वती शिव की निन्दा का प्रतिकार करने के उद्देश्य से ब्रह्मचारी से कह रही है कि तुम वास्तव में शिव को अच्छी तरह से नहीं जानते हो तभी ऐसी अनर्गल बातें कर रहे हो। यदि तुम शिव के यथार्थ स्वरूप को जानते तो कदापि उनकी निन्दा करने का साहस न करते। मूढ़ और अल्पज्ञ होने के कारण ही तुम शिव के यथार्थ स्वरूप को नहीं समझ पाए। वस्तुतः महापुरूषों का चरित्र संसार के आचरण से भिन्न होता है; जिसे समझ पाना सबके लिए सम्भव नहीं है।

भावार्थः → तं ब्रह्मचारिणं क्रुद्धा पार्वती एवं वचनं उवाच - हे ब्र-

ह्मचारिन्! त्वं निश्चयेन सर्वेश्वरं शिवं तत्त्वतो न जानासि, अतः तं प्रति विरूद्धं ब्रवीषि। तव आचरणं तथैव वर्तते यथा वास्तविक- ज्ञान- रहिताः मूर्खाः अवाङ्मनसगोचरं महापुरूषाणां चरित्रं निन्दन्ति।

व्याकरणम् → **एनम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **उवाच** - √वच् परिभाषणे+लिट् लकार, परस्मै॰ प्र॰पु॰, एक॰व॰। **त्वम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **परमार्थतः** - (परमार्थ+तसिल् पञ्चम्यर्थे, अव्ययपद) परमश्चासौ अर्थश्च परमार्थः (कर्मधा॰ समास) तस्मात्। **हरं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **वेत्सि** - √विद्+लट् लकार, परस्मै॰ म॰पु॰ एक॰व॰। **यतः** - अव्ययपद। **नूनम्** - अव्ययपद। **माम्** - (अस्मद्) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **आत्थ** - √ब्रू+लट् लकार, परस्मै॰, म॰ पु॰, एक॰व॰। **मन्दाः** - प्र॰वि॰, बहु॰व॰। **अलोकसामान्यम्** - (समान+ष्य) न लोकसामान्यम् इति अलोकसामान्यम् (नञ् तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अचिन्त्यहेतुकं** - (न+√चिन्त्+णिच्+यत्) चिन्तयितुं शक्यः चिन्त्यः, न चिन्त्यः अचिन्त्यः (नञ् तत्पुरुष), अचिन्त्यः हेतुर्यस्य तत् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **महात्मनाम्** - महांश्चसौ आत्मा च (कर्मधा॰ समास) अथवा महान् आत्मा येषां ते, (बहु॰वि॰समास) - तेषाम्, ष॰वि॰, बहु॰व॰। **चरितम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **द्विषन्ति** - √द्विष्+लट् लकार, परस्मै॰, प्र॰पु॰, बहु॰व॰।

कोशः → हर - हरः स्मरहरो भर्गः। **नूनम्** - नूनं तर्केऽर्थनिश्चये। **लोक** - लोकस्तु भुवने जने। **सामान्य** - साधारणः समानश्च सदृक्षः सदृशः सदृक्। **मन्द -** मूढाल्पापटुनिर्भाग्यामन्दाः। **हेतु** - हेतुर्ना कारणं बीजम्। **एवम्** - ववा यथा तथैवैवम्॥

अलङ्कार → प्रस्तुत श्लोक में (तुम यथार्थतः शिव को नहीं जानते हो) इस विशेष कथन का समर्थन (मुर्ख व्यक्ति महापुरूषों के असाधारण चरित्र को नहीं जानने के कारण निन्दा करते हैं) इस सामान्य कथन से किए जाने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

76

प्रसङ्ग → ब्रह्मचारी द्वारा शिवनिन्दा विषयक समस्त कथनों का पार्वती आगामी 6 श्लोकों में क्रमशः परिहार कर रही है -

विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः॥

सम्प्रति 'अमङ्गलाभ्यासरतिम्' इत्याद्युक्तं दूषणजातम् 'विपद्' इत्यादि-

भिः षड्भिः श्लोकैः परिहर्तुमारभते -

(सञ्जी०) विपदिति। **विपत्प्रतीकारपरेण**। अनर्थपरिहारार्थिनेत्यर्थः। ''उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्'' इति दीर्घः। **भूतिसमुत्सुकेन** ऐश्वर्यकामेन वा **मङ्गलं** गन्धमाल्यादिकं **निषेव्यते**। शरणे रक्षणे साधुः शरण्यः। ''तत्र साधुः'' इति यत्प्रत्ययः।'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। जगतः शरण्यस्तस्य **जगच्छरण्यस्य निराशिषः** निरभिलाषस्य **सतः** शिवस्य।'आशीरुरगदंष्ट्रायां विप्रवाक्याभिलाषयोः' इति शाश्वतः॥ [**आशोपहतात्मवृत्तिभिः**] आशया तृष्णयोपहता दूषितात्मवृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्येषां तैः **एभिः** मङ्गलैः **किम्**? वृथेत्यर्थः। पूर्वं मङ्गलमित्येकवचनस्य जात्यभिप्रायत्वादेभिरिति बहुवचनेन परामर्शो न विरुध्यते। इष्टावाप्त्यनिष्टपरिहारार्थिनो हि मङ्गलाचारनिर्बन्धः। तदुभयासंसृष्टस्य तु यथाकथञ्चिदास्ताम्। को दोष इत्यर्थः। एतेन 'अमङ्गलाभ्यासरतिम्' इत्युक्तं प्रयुक्तम्॥

(शिशु०) विपदिति। विपत्प्रतीकारपरेण विपदी रागादयस्तासां प्रतीकारो नाशस्तत्परेण भूतिसमुत्सुकेनैश्वर्याभिलाषिणा पुंसा मङ्गलं वस्तु निषेव्यते सेव्यते। जगच्छरण्यस्य जगतः शरणे साधो रक्षकस्य तस्य। तथा निराशिषः परिपूर्णत्वादाशंसनेभ्यो निर्गतस्य निष्कामस्य निरभिलाषस्य सतो भवतः शम्भोरेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिराशयोपहता निन्दितात्मवृत्तिः स्वरूपं येषां तैर्मङ्गलैः किं प्रयोजनमित्यर्थः॥

अन्वयः → विपत्प्रतीकारपरेण वा भूतिसमुत्सुकेन मङ्गलं निषेव्यते जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः आशोपहतात्मवृत्तिभिः एभिः किम् (प्रयोजनम्)?

अनुवाद → विपत्तियों के निवारण करने में तत्पर अथवा ऐश्वर्य की कामना करने वाले व्यक्तियों के द्वारा माङ्गलिक वस्तुओं का सेवन किया जाता है। किन्तु सम्पूर्ण जगत् को शरण देने वाले तथा कामनाओं से रहित होते हुए शिव के लिए आशाओं के द्वारा अन्तः करण की वृत्ति को दूषित करने वाली इन माङ्गलिक वस्तुओं की क्या आवश्यकता हैं?

शब्दार्थ → **विपत्प्रतीकारपरेण** = (आपत्परिहाराऽर्थिना, अनर्थपरिहरणसंलग्नेन, अनिष्टपरिहारार्थिना) विपत्तियों के निवारण में तत्पर, **वा** = अथवा, **भूमिसमुत्सकेन** = (ऐश्वर्यकामेन, महदैश्वर्यार्थिना) ऐश्वर्य की प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति के द्वारा, **मङ्गलम्** = (गन्धमाल्याधिकं, कल्याणजनकं वस्तु, शुभानुबन्धि वस्तु) शुभ/कल्याणकारी वस्तु का, **निषेव्यते** = (सेव्यते)सेवन किया जाता है। **जगच्छरण्यस्य** = (लोकशरणसाधोः,

विश्वशरणसमर्थस्य, लोकपरित्राणसाधो) संसार को शरण देने में समर्थ, **निराशिषः** = (निरभिलाषस्य, कामनारहितस्य) कामनाओं/इच्छाओं से रहित, **सतः** = (शङ्करस्य) शिव को, **आशोपहतात्मवृत्तिभिः** = (आशा-दूषितान्तः करणप्रवृत्तिभिः, तृष्णाकलुषितचित्तवृत्तिभिः) आशा और तृष्णा से दूषित अन्तःकरण की वृत्ति को नष्ट कर देने वाले, **एभिः** = (एतैः मङ्गलैः) इन (शुभ माङ्गलिक वस्तुओं) से, **किं प्रयोजनम्** = किं कार्यम्, न किमपीत्यर्थः, **किम्** = (प्रयोजनम्) क्या प्रयोजन (आवश्यकता) है?

भावार्थ → ब्रह्मचारी ने शिव को अमाङ्गलिक वस्तुओं का सेवन करने वाला बताकर निन्दा किया था। इस कथन का परिहार (खण्डन) करते हुए पार्वती कह रही है कि विपत्ति के निवारण और ऐश्वर्य को प्राप्त करने की अभिलाषा से ही लोग शुभ वस्तुओं का सेवन करते हैं। किन्तु जो स्वयं संसार को शरण देने में समर्थ है और समस्त कामनाओं से रहित है ऐसे शिव को मङ्गल और अमङ्गल वस्तुओं से क्या प्रयोजन है? पार्वती शिव को साक्षात ईश्वर के रूप में प्रतिपादित करती हुई ब्रह्मचारी को बताना चाह रही है कि मङ्गल और अमङ्गल का विचार मनुष्यों के लिए ही है न कि शिव के लिए।

भावार्थः → यः मानवः आत्मनः विपत्तिनिवारणपूर्वकम् आत्मनः वैभवपूर्णम् उन्नतिं वाञ्छति तेन माङ्गलिकवस्तुसेवनं करणीयम्। परन्तु शिवसन्दर्भे एवं नास्ति। सः न तु विपम्तिग्रस्तः न चैव वैभवहीनः वर्तते अपितु जगतः रक्षकः पालकः चैव वर्तते। यः स्वयं निरभिलाषः वर्तते तस्य मांगलिकपदार्थैः किं प्रयोजनम्? यतोहि माङ्गलिकपदार्थाः अन्तः-करणस्य तृष्णां जनयन्ति।

व्याकरणम् → **विपत्प्रतीकारपरेण** - (प्रति+√कृ+घञ्) विपदः प्र-तीकारः (ष॰ तत्पु॰ समास), विपत्प्रतीकारः परः यस्य सः (बहु॰ समास) तेन - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **भूतिसमुत्सुकेन** - भूत्यां/भूतौ समुत्सुकः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) तेन, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **मङ्गलम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **नि-षेव्यते** - नि उपसर्ग - √सेव्+यक्+णिच्, लट् लकार, आत्मने॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **जगच्छरण्यस्य** - शरणे साधुः - शरण्यः (शरण+यत्), जगतां/जगतः शरण्यः इति जगच्छरण्यः (ष॰ तत्पु॰ समास) तस्य, ष॰वि॰, एक॰व॰। **निराशिषः** - निर्गता आशिषः यस्मात् - (बहु॰ समास), तस्य - ष॰वि॰, एक॰व॰। **सतः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **आशोपहतात्मवृत्तिभिः** - (उप+√हन्+क्त) आशया उपहता (तृ॰ तत्पु॰ समास), आत्मनः वृत्तिः

आत्मवृत्तिः (ष॰ तत्पु॰ समास), आशोपहता आत्मवृत्तिः येषां तैः आशोपतात्मवृत्तिभिः (बहु॰ समास) तैः, तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **एभिः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **किम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰।

कोशः → **विपत् -** विपत्त्यां विपदापदौ। **मङ्गल** - कल्याणं मङ्गलं शुभम्। **भूति** - विभूतिभूतिरैश्वर्यम्। **उत्सुक** - इष्टार्थोद्युक्त उत्सुकः। **जगत्** - जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्। **शरण** - शरणं गृहरक्षित्रोः। **आशीस्** - स्त्री त्वाशीः शुभाशंसादिदंष्ट्रयोः। **आशा** - आशा तृष्णापि चायता। इत्यमरकोशः।

77

प्रसङ्ग → शिव की निन्दा का परिहार करती हुई पार्वती कहती है कि शिव में परस्पर विरोधी गुणों का निवास है -

अकिञ्चनः सन्प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

(सञ्जी॰) अकिञ्चनेति। **स** हरः। न विद्यते किञ्चन द्रव्यं यस्य स **अकिंचन** दरिद्रः **सन् सम्पदां** प्रभवत्यस्मादिति **प्रभवः** कारणम्। **पितृसद्मगोचरः** श्मशानाश्रयः सन् [**त्रिलोकनाथः**] त्रयाणां लोकानां नाथः। "तद्धितार्थ" इत्यादिनोत्तरपदसमासः। **स** देवो **भीमरूपः** भयंकराकारः सन् **शिवः** सौम्यरूप **इत्युदीर्यते** उच्यते। अतः **पिनाकिनः** हरस्य [**याथार्थ्यविदः**] यथाभूतोऽर्थो यथार्थस्तस्य भावो याथार्थ्यं तत्त्वं तस्य विदः **न सन्ति**। लोकोत्तरमहिम्नो निर्लेपस्य यथाकथञ्चिदवस्थानं न दोषायेति भावः। एतेन 'अवस्तुनिर्बन्धपरे' इति परिहृतं वेदितव्यम्॥

(शिशु॰) *अकिञ्चनेति*। अकिञ्चनोपि दरिद्रोऽपि सन् स शम्भुः सम्पदां प्रभव उत्पत्तिस्थानम्। पितृसद्मगोचरोपि श्मशानवास्यपि त्रिलोकनाथस्त्रैलोक्यस्वामी। भीमरूपोऽपि स शिव इत्युदीर्यते कथ्यते। अतः परस्परदर्शनात् पिनाकिनः याथार्थ्यविदः स्वरूपस्य वेत्तारो न सन्ति॥

अन्वयः → सः अकिञ्चनः सन् सम्पदां प्रभवः, पितृसद्मगोचरः सन् त्रिलोकनाथः। सः भीमरूपः सन् शिवः इत्युदीर्यते, पिनाकिनः याथार्थ्यविदः न सन्ति।

अनुवाद → वह शिव दरिद्र होते हुए भी सम्पत्तियों का कारण है, श्मशानवासी होने पर भी तीनों लोकों का स्वामी है, भयङ्कर आकृति वाला होने पर भी वह शिव (कल्याणकारक) कहा जाता हैं। अतः शिव

को यथातथ्य रूप में समझने वाला कोई नहीं हैं।

शब्दार्थ → **सः** = (त्रिपुरारिः, शिवः)वह शिव, **अकिञ्चनः** = (दरिद्रः, निर्धनः)दरिद्र, **सन्** = (अपि) होते हुए भी, **सम्पदाम् =** (सम्पत्तीनाम्, ऐश्वर्याणाम्) सम्पत्तियों के, **प्रभवः** = (कारणम्, उत्पत्तिरूपः अस्ति, उत्पत्तिस्थानम्) उत्पादक या कारणरूप है, **पितृसद्मगोचरः** = (श्मशानवासी सन् अपि श्मशानाश्रयः भवन्) श्मशान में रहते हुए, **त्रिलोकनाथः** = (लोकत्रयपतिः, भुवनत्रयस्वामी अस्ति, लोकत्रयाधिपः) तीनों लोकों के स्वामी हैं, **भीमरूपः** = (भयंकराकारः, भयङ्ररूपधारी, भीषणाकृतिः) भयङ्कर आकृति वाले, **सन् =** (अपि, भवन्)होकर भी, **शिवः** = (सौम्यरूपः, कल्याणरूपः, सौम्याकृतिः) कल्याणकारी, **इति** = इस प्रकार, **उदीर्यते** = (उच्यते, कथ्यते)कहे जाते हैं, **अतः =** अस्माद् हेतोः, **पिनाकिनः** = (शङ्करस्य, शिवस्य) शिव के, **याथार्थ्यविदः** = (तत्त्ववेत्तारः, तत्त्वज्ञाः) वास्तविक रूप को जानने वाले, **न** = (नहि)नहीं, **सन्ति** = (वर्तन्ते, विद्यन्ते) हैं।

भावार्थ → शिव की महिमा का वर्णन करती हुई पार्वती ब्रह्मचारी की बातों का खण्डन करती है। वह ब्रह्मचारी को जबाव देती हुई कह रही है कि शिव दरिद्र और दिगम्बर होते हुए भी समस्त ऐश्वर्य के स्वामी हैं तथा प्रसन्न होने पर अपने भक्तों को प्रभूत सम्पत्ति प्रदान करते हैं। श्मशान में निवास करते हुए भी तीनों लोकों के स्वामी हैं। अर्थात् इच्छानुसार कहीं भी विचरण करते हैं। सर्प और तृतीय नेत्र को धारण करने के कारण यद्यपि उनकी आकृति भयङ्कर है तथापि संसार में वे शिव (कल्याणकारक) के रूप में विख्यात हैं। परस्पर विरोधाभासों के कारण शिव का वास्तविक स्वरूप वस्तुतः अज्ञेय है।

भावार्थः → स शङ्करः दरिद्रः सन्नपि महदैश्वर्याणां जनकः अस्ति, श्मशानवासी सन् त्रिभुवननाथः वर्तते, भयङ्काराकारोऽपि शान्तस्वरूपः पुराणादौ वर्णितः। त्रिषु लोकेषु कः पुरूषोऽस्ति यः सदाशिवं यथार्थरूपेण न जानाति? अर्थात् तादृशः कोऽपि नास्ति इति भावः।

व्याकरणम् → **अकिंचन**ः - न विद्यते/नास्ति किञ्चन यस्य सः (बहु॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सन्** - √अस्+शतृ - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सम्पदाम्** - ष॰वि॰, बहु॰व॰। **प्रभवः** - प्र उपसर्ग पूर्वक √भू+अच् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पितृसद्मगोचरः** - पितृणां सद्म (ष॰ तत्पु॰ समास) पितृसद्म, पितृसद्मनि गोचरः (सप्त॰ तत्पु॰ समास)

सः, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **त्रिलोकनाथः** - त्रयाणां लोकानां समाहारः इति त्रिलोकः (द्विगु॰ समास), त्रिलोकस्य नाथः इति त्रिलोकनाथः (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **भीमरूपः** - भीमं रूपं यस्य (बहु॰ समास) सः, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **शिवः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **उदीर्यते** - उत् उपसर्ग पूर्वक √ईर्+यक्+आत्मने॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **पिनाकिनः** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **याथार्थ्यविदः** - यथा अर्थं (सप्सपा), यथार्थस्य भावः याथार्थ्यम्, याथार्थ्यम्, विदन्ति इति यथार्थ्यविदः। प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सन्ति** - √अस्+लट् लकार, प्र॰पु॰, बहु॰व॰।

कोशः → **प्रभव** - स्याज्जन्महेतुः प्रभवः स्थानं चाद्योपलब्धये। **गोचर** - गोचरा इन्द्रियार्थश्च। **भीम** - दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम्। **शिव** - श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्। इत्यमरकोशः।

78

प्रसङ्ग → शिव के वास्तविक स्वरूप को उनके गजचर्म और सर्पमाला धारण करने से नहीं जाना जा सकता हैं। इस प्रकार कहती हुई पार्वती शिव की व्यापकता और अद्वितीयता को अभिव्यक्त कर रही है -

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः॥

(सञ्जी॰) विभूषणेति। विश्वं मूर्तिर्यस्येति **विश्वमूर्तेः** अष्टमूर्तेः शिवस्य **वपुः** शरीरं भूषणैरुद्भासत इति **भूषणोद्भासि स्यात्**। **पिनद्धभोगी** आमुक्तभुजङ्गमं **वा स्यात्**। पिनद्धेति नह्यतेरपिपूर्वात्कर्मणि क्तः। 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इत्यकारलोपः। **गजाजिनालम्बि स्यात्**। अथवा **दुकूलधारि स्यात्**। कपालमस्यास्तीति **कपालि** ब्रह्मशिरः कपालशेखरं **वा स्यात्**। **इन्दुशेखरं वा स्यात्। न अवधार्यते** न निर्धार्यते। सर्वं सम्भवतीत्यर्थः। एतेन 'त्वमेव तावत्' इति श्लोकोक्तं प्रत्युक्तमिति ज्ञेयम्॥॥

(शिशु॰) विभूषेति। विश्वमूर्तेविरूपस्य शम्भोर्वपुरीदृशमेवेति। नावधार्यते न निश्चीयते। विभूषणैरुद्भासत इति। तादृशम् अथवा पिनद्धभोगि पिनद्धा बद्धा भोगिनः सर्पा यत्र तत्। वाऽथवा गजाजिनालम्बि करिवर्माच्छादितं दुकूलधारि क्षौमावृतं वा। कपालि कपालयुक्तं चन्द्रशेखरं चन्द्रमुकुटं वा। विश्वमूर्तित्वाच्छम्भुः कदाचिन्मनोज्ञ इत्यर्थः।।78॥

अन्वयः → विश्वमूर्तेः वपुः विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा, गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा, कपालि वा अथवा इन्दुशेखरं स्यात् इति न

अवधार्यते।

अनुवाद → विश्वरूपात्मक शिव का शरीर आभूषणों से प्रकाशमान है अथवा सर्पों से लिपटा हुआ है, गजचर्म लटका रखा है अथवा रेशमी वस्त्र, कपाल (नरमुण्ड) की माला धारण किए हुए है या सिर पर चन्द्रमा को धारण किए हुए हैं - यह निश्चय नहीं किया जा सकता है।

शब्दार्थ → **विश्वमूर्तेः** = (त्रिलोकात्मकस्य शङ्करस्य, जगदात्मकस्य)त्रिलोकात्मक/विश्वरूप शिव का, **वपुः =** (शरीरम्) शरीर, **विभूषणोद्भासि** = (अलङ्कारप्रकाशितं, अलङ्कारोपशोभतम्) आभूषणों से प्रकाशित है, **वा** = अथवा, **पिनद्धभोगि** = (बद्धसर्पः, बद्धभुजङ्गमः, उरगावेष्टितम्) साँपों से लिपटा हुआ है, **गजाजिनालम्बि** = (गजासुरचर्मावलम्बि, करिचमलिङ्कृतम्) गज चर्म को धारण किया है, **वा** = अथवा, **दुकूलधारि** = (क्षौमवस्त्रधारि, क्षौमधारि वा) रेशमी वस्त्र धारण किए है, **कपालि =** (कपालयुक्तम्, नरमुण्डयुक्तं) कपालों/नरमुण्डों से युक्त है अथवा, **अथवा =** यद्वा, **इन्दुशेखरं** = (चन्द्रमुकुटं, चन्द्रचूडं, शशिमुकुटम्)मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले, **स्यात्** = (भवेत्) हैं, **इति** = ऐसा, **न अवधार्यते** = (न निश्चेतुं शक्यते, निर्धार्यते) कुछ भी निश्चय नहीं किया जा सकता है।

भावार्थ → शिव सर्वव्यापक और विश्वरूप हैं। संसार शिव का ही व्यक्त रूप है। अर्थात् इस संसार में कुछ भी शिव से भिन्न नहीं है। ऐसी स्थिति में शिव के शरीर (स्वरूप) का यथार्थतः निरूपण मूढ़ लोगों के द्वारा नहीं किया जा सकता है। शिव के सम्बन्ध में यह बात अविचारणीय है कि वे रेशमी वस्त्र धारण करते हैं अथवा रक्त बिन्दु टपकाते हुए गजचर्म। उनके मस्तक पर चन्द्रकला सुशोभित है या नरमुण्ड। विश्वमूर्ति (विश्व में सर्वत्र व्याप्त रहने वाले) शिव कुछ भी धारण कर सकते हैं। उनके शरीर, वस्त्र और आभूषण के सम्बन्ध में औचित्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता है।

भावार्थः → शिवः विश्वरूपः वर्तते। तस्य शरीरस्वरूपस्य निर्धारणं निश्चयेन कर्तुं न शक्यते केनापि। तस्य शरीरं विविधाभूषणैः सुसज्जितं भवतु अथवा सर्पैः अवलिप्तं भवतु। शरीरे गजचर्म भवेत् अथवा क्षौमवस्त्रं भवेत्। सः शिरसि कपालं धारयेत् उत चन्द्रम् इति केनापि निश्चयेन वक्तुं न शक्यते।

व्याकरणम् → **विश्वमूर्तेः** - विश्वं मूर्तिः यस्य सः विश्वमूर्तिः

(बहु॰ समास) तस्य, ष॰वि॰, एक॰व॰। **वपुः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **विभूषणोद्भासि** - (वि+√भूष्+ल्युट्) विशिष्टानि भूषणानि विभूषणानि, तैः उद्भासते तच्छीलं+णिनि, विभूषणोद्भासि - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पिनद्धभोगि** - भोगः अस्यास्तीति भोगी, अपि उपसर्ग पूर्वक √नह्+क्त = अपिनद्धः; यहाँ आचार्य भागुरि के मत से अपि के अकार का लोप हो जाता है - पिनद्धः भोगी येन - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **गजाजिनालम्बि** - गजस्य अजिनं गजाजिनम् (ष॰ तत्पु॰ समास), तत् अवलम्बते - तच्छीलार्थ में णिनि प्रत्यय- गजाजिनालम्बि - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **दुकूलधारि** - दुकूलं धारयतीति दुकूलधारि - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कपालि -** कपालमस्यास्तीति - कपाल +इनि - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **इन्दुशेखरं** - इन्दुः शेखरे यस्य, सः इन्दुशेखरः (बहु॰ समास) तम्, द्वि॰वि॰, ए॰व॰। **अवधार्यते** - अव उपसर्ग पूर्वक √धारि (√धृ+णिच्) +यक्, आत्मने॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **भोगी** - अहेः शरीरं भोगः स्यात्। उरगः पन्नगः भोगी जिह्मगः पवनाशनः। **कपाल** - स्यात् कर्परः कपालोऽस्त्री।

79

प्रसङ्ग → प्रस्तुत श्लोक में पार्वती यह प्रतिपादित कर रही है कि अशुभ और अपवित्र वस्तुएँ भी शिव के सम्पर्क से शुभ और पवित्र हो जाती है -

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये।
तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम्॥

(सञ्जी॰) तदिति। [**तदङ्गसंसर्गम्**] तस्य शिवस्याङ्गं तस्य संसर्गम् **अवाप्य** आसाद्य चिताभस्मैव रजो **विशुद्धये कल्पते**। अलं पर्याप्नोतीत्यर्थः। अलमर्थयोगात् ''नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषट्योगाच्च'' इत्यनेन चतुर्थी। **ध्रुवं** शोधकत्वम्। प्रमाणसिद्धमित्यर्थः। प्रमाणमेवाह। **तथाहि**। प्रसिद्धमेवेत्यर्थः। [**नृत्याभिनयक्रियाच्युतं**] नृत्ये ताण्डवे योऽभिनयोऽर्थव्यञ्जकचेष्टाविशेषः स एव क्रिया तया निमित्तेन च्युतं पतितम्। **चिताभस्मरजः** इति शेषः। **अम्बरौकसां** देवानां **मौलिभिः विलिप्यते** ध्रियते। अशुद्धं चेत्कथमिन्द्रादिभिर्ध्रियेतेत्यर्थापत्तिरनुमानं वा प्रमाणमित्यर्थः॥

(शिशु॰) तदङ्गेति। तदङ्गसंस्पर्शं तस्य शम्भोः शरीरसम्पर्कमवाप्य चिताभस्मरजोरेणुध्रुवन्निश्चितं विशुद्धये कल्पते जायते। कथमित्याह। तथाहि।

नृत्ताभिनयक्रियाच्युतं। नृत्ते येऽभिनयाः करचरणादिप्रक्षेपास्ते एव क्रियास्ताभिश्च्युतं भस्म। अम्बरौकसां देवानां मौलिभिः शिरोभिर्विलुप्यते। भूगतं तदेव शिरोभिर्वहन्तीत्यर्थः॥

अन्वयः → तदङ्गसंसर्गम् अवाप्य चिताभस्मरजः ध्रुवम् विशुद्धये कल्पते। तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतम् अम्बरौकसां मौलिभिः विलिप्यते।

अनुवाद → शिव के शरीर का सम्पर्क पाकर निश्चय ही चिता के भस्म की राख भी पवित्र करने वाली बन जाती है, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि ताण्डवनृत्य की मुद्राओं (अभिनय की क्रियाओं) के समय गिरि हुई धुलि को देवगण अपने मस्तक पर लगाते करते हैं।

शब्दार्थ → तदङ्गसंसर्गम् = (शङ्करवपुःसम्पर्कम्, शिवशरीरसंसर्गम्, शिवावयवसम्पकम्)शिव के अङ्ग स्पर्श को, **अवाप्य** = (प्राप्य, उपलभ्य, सम्प्राप्य) प्राप्त करके, **चिताभस्मरजः =** (चितायाः भस्मधूलिः, चिता-भस्मधूलिः) चिता के राख की धूलि, **ध्रुवम्** = (निश्चयेन, निश्चितम्) निश्चय ही, **विशुद्धये** = (पवित्रतायै, पावनाय) पवित्रता प्रदान करने के लिए, **कल्पते** = (जायते, पर्याप्तम्) समर्थ हो जाती है, **तथा हि** = (यतः प्रसिद्धमेव यत्, अत एव)क्योंकि इसी कारण से, **नृत्याभिनयक्रियाच्युतम्** = (ताण्डवाभिनयकर्मपतितम्, ताण्डवनर्तनाभिनयनिश्चितम्) ताण्डव नृत्य के समय गिरी हुई, **तत्** = (भस्म) वह भस्म, **अम्बरौकसाम्** = (देवानाम्) देवताओं के, **मौलिभिः** = (ललाटैः, शिरोभिः) ललाटों के द्वारा, **विलिप्यते =** (ध्रियते, धार्यते) लगाई जाती है/धारण की जाती है।

भावार्थ → 'विवाहोपरान्त शिव के शरीर की चिताभस्म आलिङ्गन के समय तुम्हारे स्तनों पर लग जाएगी।'' ब्रह्मचारी के इस कथन का खण्डन करती हुई पार्वती उत्तर दे रही है कि शिव के शरीर के सम्पर्क से अपवित्र चिताभस्म भी पवित्र हो जाता है। अपनी बात का समर्थन करने के उद्देश्य से दृष्टान्त देते हुए पार्वती कह रही है कि विभिन्न मुद्राओं में ताण्डव नृत्य करते समय शिव के शरीर से गिरे हुए चिताभस्म को देवता लोग भी अपने शिर पर श्रद्धापूर्वक धारण करते हैं। इसलिए शिव के आलिङ्गन के समय मेरे शरीर में चिताभस्म यदि लग भी जाता है तो मुझे इसमें कुछ भी अनुचित नहीं दिखता है। वस्तुतः यह मेरे शरीर को पवित्र करने वाला ही होगा।

भावार्थः → चिताभस्मधुलिरपि शिवशरीरसम्बन्धं सम्प्राप्य निश्चयेन शुद्धिकरो जायते। अत एव ताण्डवनृत्याभिनयकाले शिवस्य शरीरात् पतितं

चिताभस्मरजो देवैः सहर्षं शिरोभिः धार्यते। यदि तत् अशुद्धं चेत् कथमिन्द्रादिभिर्देवैः शिरस्सु ध्रियेतेति भावः।

व्याकरणम् → **तदङ्गसंसर्गम्** - (सम्+√सृज्+घञ्) तस्य अङ्गं तदङ्गम्, तदङ्गस्य संसर्गः इति तदङ्गसंसर्गः (ष॰ तत्पु॰ समासः) तम्, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **अवाप्य** - अव उपसर्ग पूर्वक √आप्+क्त्वा और उसके स्थान पर ल्यप् प्रत्यय होकर - अव्ययपद। **चिताभस्मरजः** - चितायाः भस्म इति चिताभस्म (ष॰ तत्पु॰ समास), चिताभस्मनः रजः, तत् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **विशुद्धये** - वि उपसर्ग √शुध्+क्तिन् विशुद्धिः, च॰वि॰, एक॰व॰। **कल्पते** - √कृपु सामर्थ्य+आत्मने॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **ध्रुवम्** - अव्ययपद। **तथाहि** - अव्ययपद। **नृत्याभिनयक्रियाच्युतम्** - (अभि+√नी+अच्, च्युतं = √च्यु+क्त) नृत्ये अभिनयः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) नृत्याभिनयः, स एव क्रिया (कर्मधा॰ समास) नृत्याभिनयस्य क्रिया (ष॰ तत्पु॰ समास), तया क्रियया च्युतम् (तृ॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अम्बरौकसाम्** - अम्बरमेव ओकः येषां ते (बहु॰ समास), तेषाम् ष॰वि॰, बहु॰व॰। **मौलिभिः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **विलिप्यते** - वि उपसर्ग पूर्वक लिप्+यक्+आत्मने॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **अङ्ग** - अङ्गं प्रतीकोऽवयवः। **ध्रुव** - ध्रुवो भभेदे क्लीबन्तु निश्चिते शाश्वते त्रिषु। **नृत्य** - ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं च नृत्यञ्च वर्त्तने। **अभिनय** - व्यञ्जकाभिनयौ समौ। **मौलि** - चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः। **अम्बर** - व्योमं पुष्करमम्बरम्। **ओकः** - सद्माश्रयश्चौकाः। इत्यमरकोशः।

80

प्रसङ्ग → ब्रह्मचारी ने शिव को दरिद्र, नग्न और वृद्ध नन्दी बैल की सवारी करने वाला कहकर निन्दा की थी जिसका प्रतिकार करती हुई पार्वती कह रही है -

असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली॥

(सञ्जी॰) असम्पद इति। [**प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः**] प्रभिन्नो मदस्रावी दिग्वारणो दिग्गजो वाहनं यस्य सः। ऐरावतेनोढ इत्यर्थः। **वृषा** देवेन्द्रः **असम्पदः** दरिद्रस्य **वृषेण गच्छतः** वृषभारूढस्य **तस्य** ईश्वरस्य **पादौ**

मौलिना मुकुटेन **उपगम्य**। प्रणम्येत्यर्थः। [**विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली**] विनिद्राणां विकसितानां मन्दाराणां कल्पतरुकुसुमानां रजोभिः परागैररुणा अङ्गुलयो ययोस्तौ तथोक्तौ **करोति**। दिग्गजारोहिणामिन्द्रादीनामपि वन्द्यस्येन्दुमौलेः किं सम्पदा, वृषारोहणे वा को दोष इत्यर्थः।

(शिशु०) असम्पद इति। प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः प्रभिन्नो मदस्रावी ऐरावतो वाहनं यस्य सः। वृषा इन्द्रो वृषेण वृद्धोक्षेण गच्छतोऽतएव सम्पदः सम्पद्राहतस्य तस्य शम्भोः पादावुपगम्य मस्तकेन विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली विनिद्राणां विकसितानां मन्दाराणां देवतारूणां रजोभिः परागैररुणा अंगुलयो ययोस्तौ करोति।

अन्वयः → प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः वृषा असम्पदः वृषेण गच्छतः तस्य पादौ मौलिना उपगम्य विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली करोति।

अनुवाद → मदोन्मत्त ऐरावत हाथी रूपी वाहन वाला इन्द्र निर्धन एवं बैल पर सवारी करने वाले उन शिव के चरणों को अपने सिर से प्राप्त (प्रणाम) करके, विकसित मन्दार पुष्प के पराग कणों की धुलि में पैरों की अंगुलियों को लाल कर देते हैं।

शब्दार्थ → **प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः** = (मदस्राविदिग्गजयानः, मदस्राविऐरावतवाहनः, मदोन्मत्तैरावतयानः) मद टपकने वाले ऐरावत नामक हाथी के वाहन वाला, **वृषा** = (देवेन्द्रः, देवराजः इन्द्रः, वासवः)इन्द्र, **असम्पदः** = (निर्धनस्य, द्ररिद्रस्य) दरिद्र, **वृषेण** = (बलीवर्देन, वृषभेन, वृषभेणा) बैल के द्वारा, **गच्छतः** = (गमनकर्तुः, व्रजतः, गमनशीलस्य) जाते हुए, **तस्य** = (शिवस्य)उस शिव के, **पादौ** = (चरणौ) दोनों चरणों पर, **मौलिना** = (शिरसा, मस्तकेन, मुकुटेन) मस्तक के द्वारा, **उपगम्य** = (गत्वा, प्राप्य, प्रणम्य वा) सपीप जाकर, **विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली** = (विकसितमन्दारपुष्पपरागरक्ताङ्गुली, उत्फुल्लमन्दारद्रुमपुष्पपरागरक्ताङ्गुली) खिले हुए मन्दार पुष्पों के पराग से उनकी (शिव की) उँगलियों को लाल- लाल, **करोति** = (विदधाति) करते हैं।

भावार्थ → शिव को दरिद्र और वृद्ध नन्दी बैल की सवारी करने वाला कहकर ब्रह्मचारी ने शिव की निन्दा की थी। इस कथन का खण्डन करते हुए पार्वती कह रही है कि ऐरावत हाथी की सवारी करने वाले देवराज इन्द्र भी जब शिव के चरणों में अपना मस्तक झुका कर प्रणाम करते हैं; उस समय इन्द्र के मस्तक पर स्थित मन्दार पुष्प के पराग के झड़ कर गिरने से शिव जी के पैरों की अंगुलियाँ भी लाल हो जाती है। अब तुम

ही बताओ कि ऐश्वर्यवान् इन्द्र भी जब शिव के चरणों में अपना मस्तक रखकर स्वयं को गौरवान्वित मानता है तो वह स्वयं अकिञ्चन और दरिद्र कैसे हुआ? वास्तविकता तो यह है कि शिव देवाधिदेव और महादेव हैं। समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले साक्षात् परमेश्वर हैं।

भावार्थः → कदाचित् शिवः वृषारुढः सन् गच्छति तदा ऐरावतगजारुढः इन्द्रः अपि मार्गे अनायासं विलोक्य तस्य दरिद्रस्य शिवस्य चरणौ शिरसा प्रणमति। तदा इन्द्रशिरसि उपस्थितैः मन्दारवृक्षस्य पुष्पपरागैः शिवस्य चरणौ रञ्जितौ जायेते।

व्याकरणम् → **प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः** - (प्र+√भिद्+क्त) दिशः वारणः दिग्वारणः, प्रभिन्नः दिग्वारणः वाहनं यस्य (त्रिपद बहु॰ समास) सः - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वृषा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **असम्पदः** - अविद्यमाना सम्पद् यस्य सः (बहु॰ समास) तस्य, ष॰वि॰, एक॰व॰। **वृषेण** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **गच्छतः** - √गम् का गच्छ्+शतृ) ष॰वि॰, एक॰व॰। **तस्य** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **पादौ** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **मौलिना** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **उपगम्य** - (उप+√गम्+ल्यप्) उप उपसर्ग पूर्वक गम्+क्त्वा उसके स्थान पर ल्यप् प्रत्यय, अव्ययपद, **विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली** - विनिद्राणि च तानि मन्दाराणि च (कर्मधा॰ समास) विनिद्रमन्दाराणां रजांसि विनिद्रमन्दाररजांसि, (ष॰ तत्पु॰ समास), विनिद्रमन्दाररजोभिः अरुणाः, अङ्गुलयः ययोः (बहु॰ समास) तौ - द्वि॰वि॰, द्वि॰वि॰। **करोति** - √कृ+परस्मै॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **प्रभिन्न** - प्रभिन्नो गर्जितो मत्तः। **दिग्गजः** - ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः। **वृषा** - वासवो वृत्रहा वृषा। **वृष** - ऋषभो वृषभो वृषः। **अरुण** - अव्यक्तरागस्त्वरुणः। इत्यमरकोशः।

81

प्रसङ्गः → ब्रह्मचारी द्वारा शिव को 'अलक्ष्यजन्मता' कहकर कुलीन होने के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया गया था जिसका प्रत्युत्तर देते हुए पार्वती कहती है -

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति॥

(सञ्जी॰) विवक्षतेति। **च्युतात्मना** नष्टस्वभावेन अतएव **दोषं** दूषणं **विवक्षता** वक्तुमिच्छतापि **त्वयेशं प्रति एकम्** 'अलक्ष्यजन्मता' इत्ये-

तदेकम्। वच इत्यर्थः। **साधु भाषितं** सम्यगुक्तम्। कुतः **यम्** ईश्वरम् **आत्मभुवोऽपि** ब्रह्मणोऽपि। 'ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः' इत्यमरः। **कारणम् आमनन्ति** उदाहरन्ति। विद्वांस इति शेषः "पाघ्राध्यमास्थाम्नादाण्" इत्यादिना मनादेशः। **स** ईश्वरः **कथं लक्ष्यप्रभवः** लक्ष्यजन्मा **भविष्यति।** अनादिनिधनस्य भगवतः कारणशङ्काकलङ्कश्च नान्विष्यत इत्यर्थः।।

(शिशु०) दोषमपि विवक्षता भाषमाणेन त्वया ईशं प्रति एकं साधु सम्यग् भाषितं कथितम्। कीदृशेन त्वया? च्युतात्मना च्युतो भ्रष्ट आत्मा चित्तं यस्य तादृशेन। यमीशं आत्मभुवोपि ब्रह्मणोपि कारणं जनकमामनन्ति स लक्ष्यः प्रभव उत्पत्तिर्यस्य स कथं भविष्यति।

अन्वयः → दोषं अपि विवक्षता च्युतात्मना त्वया ईशं प्रति एकं साधु भाषितम्। यम् आत्मभुवः अपि कारणम् आमनन्ति सः कथं लक्ष्यप्रभवः भविष्यति?

अनुवाद → केवल दोष कथन की इच्छायुक्त नष्ट स्वभाव वाले तुम्हारे द्वारा भगवान् शिव के प्रति एक अच्छी बात कह दी गई। जिसे स्वयम्भू ब्रह्मा भी स्वयं की उत्पत्ति का कारण मानते हैं, उन शिव की उत्पत्ति कैसे ज्ञात की जा सकती है?

शब्दार्थ → **दोषम्** = (दुर्गुणम्, दूषणानि)केवल दोष को, **अपि** = ही, **विवक्षता** = (वक्तुम् इच्छताऽपि) कहने की इच्छा वाले, **च्युतात्मना** = (नष्टस्वभावेन, भ्रष्टात्मना, पतितात्मना) पतितात्मा, **त्वया** = (भवता) तुम्हारे द्वारा, **ईशं प्रति** = (नीलकण्ठम् प्रति, शिवस्य विषये, शिवमुद्दिश्य) भगवान् शिव के सम्बन्ध में, **एकम् =** (एकं कथनम्, वचनम्) एक बात तो, **साधु** = (सम्यक्, समीचीनम् एव) बहुत अच्छी तरह, **भाषितम्** = (कथितम्, उक्तम्) कही गई, **यम्** = (अजातं सनातनम् आत्मभवं शङ्करम्, शिवम्) जिस अजन्मे शिव को, **आत्मभुवः** = (स्वयम्भुवः, ब्रह्मणः, बह्मणोऽपि) स्वयम्भू ब्रह्मा का, **अपि** = (अपि) भी**, कारणम्** = (उत्पत्तिस्थानम्, बीजम्) कारण, **आमनन्ति** = (घोषयन्ति, उदाहरन्ति, मन्यन्ते) माना जाता है, **सः** = (शिवः)वह शिव, **लक्ष्यप्रभवः =** (लक्ष्यजन्मा) ज्ञात जन्म वाला, **कथम्** = (केन प्रकारेण) कैसे,**भविष्यति** = (सम्भवति) हो सकते हैं।

भावार्थ → ब्रह्मचारी ने जन्म और कुल अज्ञात होने के कारण शिव को 'अलक्ष्यजन्मा' कहकर निन्दा किया था। इसी कथन का निराकरण करती हुई पार्वती ब्रह्मचारी से कह रही है कि हे ब्रह्मचारी! तुम्हारी

आत्मा अवश्य मर चुकी है, जो तुम शिव की निन्दा करते हुए उसे अलक्ष्यजन्मा कह रहे हो। किन्तु तुमने शिव के सम्बन्ध में अनजाने ही सत्य बात कह दी। प्रजापति ब्रह्मा के भी सृष्टिकर्ता शिव का जन्म (प्रादुर्भाव) कदापि और केनापि ज्ञेय नहीं है।

भावार्थः → त्वम् केवलं शिवस्य दोषमेव वक्तुं वाञ्छति किन्तु नष्टस्वभावे त्वया तमुद्दिश्य 'अलक्ष्यजन्मता' इत्येतत् सम्यगुक्तम्। वेदा यं शिवं ब्रह्मणोऽपि जनयितारं घोषयन्ति स शिवः लक्ष्यजन्मा कथं भविष्यतीति भावः।

व्याकरणम् → **च्युतात्मना** - च्युतः आत्मा यस्य सः तेन च्युतात्मना; (बहु॰ समास), **तेन** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **दोषम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विवक्षता** - वि उपसर्ग पूर्वक √वच्+सन् प्रत्ययान्त +शतृ, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **त्वया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **ईशं** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **प्रति -** कर्मप्रवचनीय। **एकं** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **साधु** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **भाषितम्** - (√भाष्+क्त) प्र॰वि॰, एक॰व॰ √भाष+इट्+क्त। यम् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **आत्मभुवः** - आत्मना भवतीति आत्मभूः, तस्य आत्मभुवः, ष॰वि॰, एक॰व॰। **कारणम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **आमनन्ति** - आङ् उपसर्ग पूर्वक √म्ना अभ्यासे+परस्मै॰, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **सः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कथम्** - अव्ययपद। **लक्ष्यप्रभवः** - लक्षितुं योग्यः लक्ष्यः, लक्ष्यः प्रभवः यस्य सः (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **भविष्यति -** √भू+परस्मै॰, लृट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **च्युत** - भ्रष्टं स्कन्नं च्युतं गलितम्। **ईश** - शम्भुरीशः पशुपतिः। **साधु** - सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु भोजनम्। **भाषितम्** - भाषितं वचनं वचः। **आत्मभूः** - ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः। **प्रभवः** - स्याज्जन्महेतुः प्रभवः। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में पार्वति ब्रह्मचारी के कथन 'अलक्ष्यजन्मता' का वक्रोक्ति द्वारा अपने मनोवाञ्छित अर्थ का आश्रय लेते हुए निराकरण करती है; अतः यहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

82

प्रसङ्ग → ब्रह्मचारी को व्यर्थ के विवाद करने से रोकती हुई पार्वती अपने दृढ़संकल्प का परिचय देती है -

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।

ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते॥

(सञ्जी०) अलमिति। अथवा **विवादेन** कलहेन **अलम्**। **त्वया यथा** येन प्रकारेण **स** ईश्वरः **श्रुतः अशेषं** कात्स्र्न्येन **तथाविधः** तावत्प्रकार एव **अस्तु**। **मम मनस्तु** अत्रेश्वरे [**भावैकरसं**] भावः शृङ्गार एकोऽद्वितीयो रस आस्वाद्यो यस्य तत्तथा स्थितम्। तथाहि। **कामवृत्तिः** स्वेच्छाव्यवहारी **वचनीयम्** अस्थानसङ्गापवादं **नेक्षते** न विचारयति। न हि स्वेच्छासञ्चारिणो लोकापवादाद्बिभ्यतीति भावः।।

(शिशु०) अलमिति। विवादेन कलहेनालं पूर्यताम्। स शम्भुस्त्वया यथा यादृशः श्रुतस्तावद्रूपस्तथाविधस्तादृशोऽस्तु शेषं सर्वं यथा स्यात्तथास्तु। अत्र शम्भौ भावैकरसं भावो भक्तिस्तेनैकरसमेकस्वरूपं मम मनः स्थितं। तत्र हेतुमाह। कामवृत्तिः स्वेच्छया व्यवहारो वचनीयं नेष्यते॥

अन्वयः → विवादेन अलम् त्वया सः यथा श्रुतः अशेषं तावत् तथाविधः अस्तु। मम मनः अत्र भावैकरसं स्थितं, कामवृत्तिः वचनीयं न ईक्षते।

अनुवाद → विवाद व्यर्थ है। तुमने उन शिव को जैसे सुना है भले ही वैसे ही है किन्तु मेरा मन उनके प्रेम में पूर्णतया निश्चल है। क्योंकि इच्छानुसार काम करने वाला व्यक्ति लोकनिन्दा की चिन्ता नहीं करता है।

शब्दार्थ → **विवादेन** = (कलहेन) कलह, **अलम्** = (न कोऽपि लाभः, कृतम्) मत करो, **त्वया** = (भवता) तुम्हारे द्वारा, **सः** = (शिव) वह शिव, **यथा** = (येन रूपेण, येन प्रकारेण)जैसा, **श्रुतः** = (आकर्णितः) सुना है, **अशेषम्** = (निखिलम्, कात्स्र्न्यम्, साकल्येन) सम्पूर्ण रूप से, **तावत्** = भले, **तथाविधः** = (तादृशः एव)वैसे, **अस्तु** = (भवतु) हो; परन्तु, **मम** = (मदीयम्, मे) मेरा, **मनः** = (चित्तम्, हृदयम्) मन, **अत्र** = (शिवे, शम्भौ) शिव में, **भावैकरसं** = (अभिलाषैकपक्षपाति, हरविषयाभिलासमात्रे तत्परं, तदभिलाषमात्रपरम्) एकमात्र प्रेम भावरस से, **स्थितम्** = (स्थिरम् अस्ति) लगा है, **कामवृत्तिः** = (यदृच्छाव्यवहारी, स्वेच्छाव्यवहारी, स्वेच्छाचारी) अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करने वाला, **वञ्चनीयम्** = (निन्दाम्, अपवादम्) निन्दा को, **न** = (नहि) नहीं, **ईक्षते** = (विचारयति, गणयति) विचार करता है।

भावार्थ → शिव के विषय में कहे गए समस्त आलोचनाओं का निराकरण करने के उपरान्त पार्वती इस विवाद को और अधिक लम्बा

नहीं खींचना चाहती है। अतः वह ब्रह्मचारी को स्पष्ट रूप से कहती है कि तुमने शिव के विषय में जितनी निन्दनीय बातें कहनी थी वह कह लिया और मैंने उनका समुचित प्रतिकार भी कर दिया है। शिव के विषय में मैं अब और कुछ भी नहीं सुनना चाहती हूँ। शिव तुम्हारी दृष्टि में भले ही कैसे भी हो, मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मेरा मन एकमात्र शिव के प्रति ही अनुरक्त है। मैं सिर्फ शिव से ही विवाह करूँगी। तुम्हारी शिव- विषयक निन्दा को सुनकर मैं कदापि अपने विचार को बदलने वाली नहीं हूँ। अतः अब अपना अनर्गल प्रलाप और विवाद बन्द करो।

भावार्थः → कलहेन अलम्। स शिवो भवता यथा श्रुतः तथैवास्तु। तत्र शिवे मम चित्तं स्थिरं वर्तते। स्वेच्छाव्यवहारी लोकापवादं न विचारयतीति भावः।

व्याकरणम् → **विवादेन** - (वि+√वद्+घञ् तेन) विरुद्धो वादः विवादः (प्रादि समास) तेन, तृ॰वि॰, एक॰व॰। **अलं** - अव्ययपद। **त्वया** - तृ॰वि॰, एक॰व॰। **यथा** - अव्ययपद। **श्रुतः** - √श्रु धातु+क्त प्रत्यय - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अशेषम्** - अविद्यमानः/न विद्यते शेषः यस्मिन् कर्मणि तत् अशेषम् (बहु॰ समास) ; प्र॰वि॰, एक॰व॰, **तथाविधः** - तथा विधा यस्य सः (बहु॰ समास) - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अस्तु** - √अस् भुवि,परस्मै॰, लोट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **मम** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **मनः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अत्र** - अव्ययपद। **भावैकरसं** - भावे एकः रसः यस्य सः (बहु॰ समास) तत् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **स्थितम्** - (√स्था+क्त) √ष्ठा गति निवृत्तौ+इट्+क्त - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **कामवृत्तिः** - कामा/कामेन वृत्तिः यस्य सः कामवृत्तिः (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **वचनीयम्** - √वच्+अनीयर् - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **ईक्षते** - √ईक्ष दर्शने+आत्मनेपद, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **अशेषम्** - विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तम्। **रसः** - शृंगारादो विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः। **काम** - इच्छा मनोभवौ कामौ। इत्यमर-कोशः।।

अलङ्कार → "कामवृत्तिः वचनीयं न ईक्षते" इस सामान्य कथन के द्वारा शिव के विषय में पूर्वार्ध के विशेष कथनों का समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

83

प्रसङ्ग → मना करने के बाद भी ब्रह्मचारी पुनः जब कुछ बोलने के

लिए तत्पर हुआ तो पार्वती अपनी सखी से कहती है -

निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥

(सञ्जी०) निवार्यतामिति। हे **आलि** सखि! 'आलिः सखी वयस्याऽथ' इत्यमरः। **स्फुरितोत्तराधरः** स्फुरणभूयिष्ठोष्ठोः **अयं बटु** माणवकः **पुनः किम् अपि विवक्षुः** वक्तुमिच्छुः। ब्रुवः सन्नन्तादुप्रत्ययः। **निवार्यताम्**। तर्हि वक्तुमेव कथं न ददासीत्याह - तथाहि। **यः महतः** पूज्यान् **अपभाषते** अपवदति **न केवलं स पापभाक्** भवति। किन्तु **तस्मात्** अपभाषमाणात्पुरुषात् **यः श्रृणोति सोऽपि पापभाक्**। भवतीति शेषः। अत्र स्मृतिः - 'गुरोः प्राप्तः परीवादो न श्रोतव्यः कथञ्चन। कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः' इति।

(शिशु०) निवार्यतामिति। भो आलि सखि! स्फुरितोत्तराधरः स्फुरच्च तदुत्तरोऽधरो यस्या अतएव पुनः किमपि दूषणं विवक्षुर्वक्तुमिच्छुरयं बटुर्निवार्यताम्। अयं वदतु नाम। का नो हानिरित्याह - यो महतामुत्तमानां विभाषते निन्दति स केवलं पापभाक् न भवति। तस्माद्वक्तुर्यः शृणोति सोपि पापभाग् भवति॥

अन्वयः → हे आलि! स्फुरितोत्तराधरः पुनः किमपि विवक्षुः अयं बटुः निवार्यताम्। यः महतः अपभाषते न केवलं स पापभाक् तस्मात् यः शृणोति सः अपि पापभाक् भवति।

अनुवाद → हे सखि! फड़कते हुए होठों से पुनः कुछ कहने की इच्छा वाले इस ब्रह्मचारी को रोक दो। क्योंकि महान् व्यक्ति की जो निन्दा करता है केवल वही नहीं अपितु उससे जो सुनता है वह भी पाप का भागी बनता है।

शब्दार्थ → **आलि** = (सखी) हे सखी, **स्फुरितोत्तराधरः** = (कम्पिताधरोष्ठः स्फुरणभूयिष्ठोष्ठः) काँपते अधरों वाला, **पुनः** = (भूयः) फिर से, **किम् अपि** = (किञ्चिदपि) कुछ भी, **विवक्षुः** = (वक्तुमिच्छुः, वक्तुकामः)कहने का इच्छुक, **अयम्** = (एषः) यह, **बटुः** = (वाचाटः, माणवकः, ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी, **निवार्यताम्** = (अपसार्यताम्, दूरे अपसारय, निस्सार्यताम्) रोका जाय। **यः** = (पुरुषः, जनः) जो, **महतः** = (पूज्यान् महापुरुषान्, महाजनान्) महापुरूष की, **अपभाषते** = (अपवदति, निन्दति)निन्दा करता है, **न** = नहीं, **केवलम्** = सिर्फ, **सः =** वह, **तस्मात्** = (अपभाषणकर्तुः, महाजननिन्दकात्) अपितु उससे, **यः**

= (अन्यः, पुरुषः)जो, **शृणोति** = (आकर्णयति)सुनता है, **सः** = (श्रोता) वह, **अपि** = भी, **पापभाक्** = (पापिष्ठः, पापीयान्) पाप का भागी, **भवति** = (जायते) होता है।

भावार्थ → शिव के सम्बन्ध में अनर्गल आक्षेपों का समाधान करने के उपरान्त पार्वती ने और अधिक विवाद करना उचित नहीं समझा और ब्रह्मचारी को चुप रहने का स्पष्ट निर्देश दिया। किन्तु ब्रह्मचारी को पुनः कुछ कहने को दुराग्राही देखकर पार्वती अपनी सखी को निर्देश देती है कि हे सखी! इस ब्रह्मचारी के होंठ कुछ कहने के लिए फड़फड़ा रहे हैं। यह पुनः शिव के विषय में कुछ निन्दापूर्णवचन कहेगा। यह कुछ और बोले इससे पहले ही इसे रोक दो और इसे यहाँ से जाने के लिए कह दो। क्योंकि महापुरूषों की निन्दा करने वाला ही पाप का भागी नहीं होता है; अपितु निन्दा को सुनने वाला भी पाप का भागी बनता है। मैं अब और पाप का भागी नहीं बनना चाहती हूँ।

भावार्थः → हे सखि! अस्य ब्रह्मचारिणः अधरोष्ठः स्फुरति। एषः पुनः किमपि वक्तुं वाञ्छतीति। अतः एनं दूरे अपसारय। यो हि जनः पूज्यान् महापुरूषान् निन्दति न केवलं स पापीयान् भवति किन्तु यो महापुरूष-निन्दकात् तन्निन्दावचनं शृणोति सोऽपि पापभाग्भवतीति भावः। वस्तुतः वक्तुरपेक्षया श्रोतुरधिकं पापं भवति। यतो हि श्रोतरि श्रवणोत्सुके सति वक्ता सविस्तरं वक्तुं प्रयतते। तस्माद् तत् स्थानं परित्यज्य अन्यत्र गन्तव्यम् इति भावः।

व्याकरणम् → **हे आलि** - सम्बो॰, एक॰व॰। **स्फुरितोत्तराधरः** - (√स्फुर्+क्त) स्फुरितम् उत्तरं (अधिकं) यस्य सः स्फुरितोत्तरः, स्फुरितोत्तरः अधरः यस्य सः (बहु॰ समास) उत्तरः च अधरः च उत्तराधरः (द्वन्द्व॰ समास), प्र॰वि॰, एक॰व॰। **विवक्षुः** - (√वच् +सन्+ड) √वच+सन्+'सनासंशभिक्ष उः' से 'उ' प्रत्यय - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अयम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **बटुः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **निवार्यताम्** - (नि+√वृ+-णिच्+लोट् लकार,) नि उपसर्ग पूर्वक √वारि+आत्मने पद, लोट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **यः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **महतः** - ष॰वि॰, एक॰व॰ अथवा द्वि॰वि॰, बहु॰व॰। **अपभाषते** - अप उपसर्ग पूर्वक √भाष्+आत्मनेपद, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **केवलम्** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **पापभाक्** - पापं भजते इति पापभाक् (पाप+भज्+ण्विः) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **तस्मात्** - पञ्च॰वि॰, एक॰व॰। **यः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **शृणोति** - √श्रु धातु

के श्रृ आदेश 'स्वादिभ्यःश्नु' से श्नु विकरण। **परस्मै०** - लट् लकार, प्र०पु०, एक०व०।

कोशः → **आलि** - आलिः सखी वयस्या च। **पुनः** - मुहुः पुनः पुनः शश्वद्। **उत्तर** - उपर्युदीच्यश्रेष्ठेष्वप्युत्तरः। **केवलम्** - निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गत्वेककृत्स्नयोः। **पाप** - पापं किल्विषकल्मषम्। इत्यमरकोशः।

टिप्पणी → ब्रह्मचारी के द्वारा किए जाने वाले शिव- निन्दा को रोकती हुई सामान्य कथन के द्वारा पार्वती तर्क देती है कि न केवल महापुरूषों की निन्दा करने वाला अपितु निन्दा को सुनने वाला भी पाप का भागी बनता है। मनुस्मृति में इस प्रकार का निर्देश प्राप्त होता है-

गुरोर्यत्र परिवादो निन्दा वापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥

- मनुस्मृति 2.220

84

प्रसङ्ग → पार्वती अब और शिवनिन्दा नहीं सुनना चाहती है अतः वहाँ से चली जाना चाहती है -

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः समाललम्बे वृषराजकेतनः॥

(सञ्जी०) इत इति। **अथवा इतः** अन्यत्र **गमिष्यामि इति वादिनी** वदन्ती [**स्तनभिन्नवल्कला**] स्तनाभ्यां भिन्नवल्कला रयवशात्कुचस्रस्तचीरा **बाला** पार्वती **चचाल**। **वृषराजकेतनो** वृषभध्वजः **च स्वरूपमास्थाय** निजरूपमाश्रित्य **कृतस्मितः** सन् **तां** पार्वतीं **समाललम्बे** जग्राह॥

(शिशु०) इत इति। सा च पार्वती चचाल। कीदृशी इतः स्थानात् गमिष्यामीति वादिनी भाषमाणा। तथा। स्तनभिन्नवल्कला स्तनाभ्यां भिन्नं त्रुटितं वल्कलं यस्याः सा। ततः कृतस्मितो विहितहासो वृषराजकेतनो हरः स्वरूपमास्थाय स्वमाकारं प्रतिपद्य तां गौरीं समाललम्बेऽनुगृहीतवानित्यर्थः॥

अन्वयः → 'अथवा इतः गमिष्यामि' इति वादिनी स्तनभिन्नवल्कला बाला चचाल। वृषराजकेतनः स्वरूपम् आस्थाय कृतस्मितः सन् तां समाललम्बे।

अनुवाद → 'अथवा मैं ही यहाँ से चली जाऊँगी' ऐसा कहती हुई स्तनों पर खिसके वस्त्रों वाली वह बालिका (पार्वती) जाने लगी तभी वृषभध्वज भगवान् शिव ने अपने वास्तविक स्वरूप को धारण कर

मुस्कुराते हुए उस पार्वती को पकड़ लिया।

शब्दार्थ → **अथवा** = (वा, यद्वा) या फिर (अगर यह बोलना बन्द नहीं करता है, तो स्वयं मैं ही), **इतः** = (अस्मात् स्थानात्, अस्मात् प्रदेशात्) यहाँ से, **गमिष्यामि** = (गच्छामि, यास्यामि)चली जाऊँगी, **इति** = (एवम्)ऐसा, **वादिनी** = (वदन्ती, कथयन्ती, कथनशीला) कहती हुई, **स्तनभिन्नवल्कला** = (कुचस्रस्तचीरा, पयोधरस्रस्तवल्कलवस्त्रा, कुचस्रस्तावरणा) स्तनों से कुछ खिसके हुए वल्कल वस्त्र वाली, **बाला** = (युवतिः, पार्वती) कुमारी पार्वती, **चचाल** = (गन्तुम् आरभत्, प्रतस्थे)चल पड़ी; **वृषराजकेतनश्च** = (वृषभध्वजश्च, वृषकेतुः शिवः च, वृषभध्वजः) बैल के चिह्न युक्त ध्वजा वाले शिव ने, **स्वरूपम्** = (निजरूपम्, आत्मन आकृतिम्) अपने वास्तविक रूप को, **आस्थाय** = (आश्रित्य, अवलम्ब्य) धारण करके, **कृतस्मितः** = (ईषत् हास्ययुक्तः सन्, विहितमन्दहास्यः) मुस्कराते हुए, **ताम्** = (पार्वतीम्) उस पार्वती को, **समाललम्बे** = (जग्राह, आददौ) सहारा देते हुए पकड़ लिया।

भावार्थ → अथवा यह ब्रह्मचारी अपना बकवास बन्द नहीं करता है तो मैं ही यहाँ से चली जाती हूँ। ऐसा कहकर जाने के लिए पार्वती जब वेग से उठी तभी उसके स्तनों पर से वल्कल वस्त्र थोड़ा सा खिसक गया। उसी समय शिव अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होकर हँसते हुए पार्वती को पकड़ लेते हैं।

भावार्थः → अथवा शिवपरिवादपरायणस्यास्य वर्णिनः समीपादहमेव दूरं गमिष्यामीति वदन्ती गमनोद्यमवशात् स्तनच्युतावरणवल्कला सा पार्वती त्वरितं गन्तुमारेभे। तदा शिवः ब्रह्मचारिवेषं परित्यज्य स्वकीयं वास्तविकं रूपं धृत्वा मन्दं स्मितं कृत्वा पार्वतीं जग्राहेति भावः।

व्याकरणम् → **अथवा** - अव्ययपद। **इतः** - अव्ययपद। **गमिष्यामि** - √गम्+परस्मै॰, लृट् लकार, उ॰पु॰, एक॰व॰। **वादिनी** - (√वद्+णिनि+ङीप्) वदतीति - वद+णिनि - ङीप् प्र॰वि॰, एक॰व॰। **स्तनभिन्नवल्कला** - स्तनाभ्यां भिन्नं वल्कलं यस्याः सा (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **बाला** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **चचाल** - √चल+परस्मै॰, लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **वृषराजकेतनः** - वृषाणां राजा (ष॰तत्पु॰ समास) वृषराजः केतनं केतने वा यस्य (बहु॰ समास) **सः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **स्वरूपम्** - स्वस्य रूपम् (ष॰ तत्पु॰ समास) द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **आस्थाय** - (आ+√स्था+ल्यप्) आङ् उपसर्ग पूर्वक √ष्ठा गतिनिवृत्तौ-

+क्त्वा, उसके स्थान पर ल्यप् - अव्ययपद। **कृतस्मितः** - कृतं स्मितं येन सः (बहु॰ समास) - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सन्** - अस्तीति सत् √अस्+शत् - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **ताम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **समाललम्बे** - सम्+आ उपसर्ग पूर्वक √लबि शब्दे अवसंस्रने च से, आत्मने॰, लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **भिन्न** - दारिते भिन्नभेदितौ। **केतन** - केतनं ध्वजमस्त्रियाम्। **वल्कल** - त्वक् स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्। **स्मितम्** - स्यादाच्छुरितकं हासः सोत्प्रासः स मनाक् स्मितम्।

85

प्रसङ्ग → जैसे ही पार्वती उस स्थान से उठकर जाने लगी तभी शिव अपने वास्तविक स्वरूप में आकर पार्वती का हाथ पकड़ लेते हैं। शिव को अचानक उपस्थित देखकर लज्जित हुई पार्वती का वहाँ रूकना भी सम्भव नहीं था और प्रियतम को देखने की उत्कट लालसा भी थी जिससे वह स्वयं को आगे बढ़ने से रोक भी नहीं पा रही थी। पार्वती के इसी द्वन्द्व का कालिदास ने इस श्लोक में अत्यन्त सुन्दर और काव्यात्मक वर्णन किया है -

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि -
आप र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥

(सञ्जी॰) तमिति। **तं देवं वीक्ष्य वेपथुमती** कम्पवती **सरसाङ्गयष्टिः** स्विन्नगात्री। महादेवदर्शनेन देव्याः सात्विकभावोदय उक्तः। **निक्षेपणाय** अन्यत्र विन्यासाय उद्धृतम् उत्क्षितं पदम् अङ्घ्रिम् **उद्वहन्ती शैलाधिराजतनया** पार्वती **[मार्गाचलव्यतिकराकुलिता]** मार्गेऽचलस्तस्य व्यतिकरेण समाहृत्या। अवरोधनेनेति यावत्। आकुलिता संभ्रमिता **सिन्धुः** नदी इव। 'देशं नद विशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिदिति स्त्रियाम्' इत्यमरः। **न ययौ न तस्थौ**। लज्जयेति भावः। वसन्ततिलकावृत्तमेतत्॥

(शिशु॰) तं वीक्ष्येति। शैलाधिराजतनया हिमवत्सुता तं शम्भुं वीक्ष्य प्रत्यक्षेण दृष्ट्वा वेपथुमती सकम्पा सरसाङ्गयष्टिः सरसा सस्वेदा अङ्गयष्टिर्यस्याः सा न ययौ न तस्थौ। कीदृशी? निक्षेप एव न्यासार्धमुतमुत्थापितं पदं चरणमुद्वहन्ती। सा केवलं मार्गाचले पर्वते यो व्यतिकरः सम्पर्कस्तेन

व्याकुलिता सिन्धुरिव यथा नदी शैलेन रुद्धत्वान्न याति न तिष्ठति॥

अन्वयः → तम् वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिः निक्षेपणाय उद्धृतं पदं उद्वहन्ती शैलाधिराजतनया मार्गाचलव्यतिकराकुलिता सिन्धुः इव न ययौ न तस्थौ।

अनुवाद → उस शिव को देखकर काँपती हुई, पसीने से युक्त शरीर वाली तथा जाने के लिए उठाए हुए पैरों वाली पर्वतराज हिमालय की पुत्री मार्ग में उपस्थित पर्वत के कारण अवरूद्ध नदी के समान न तो आगे बढ़ सकी और न ही वहाँ ठहर सकी।

शब्दार्थ → **तम्** = (शिवम्) उस शिव को, **वीक्ष्य** = (अवलोक्य, दृष्ट्वा) देखकर, **वेपथुमती** = (कम्पनवती) काँपती हुई, **सरसाङ्गयष्टिः** = (स्विन्नशरीरा, स्विन्नाङ्गी) पसीने से युक्त शरीर वाली, **निक्षेपणाय** = (अग्रे विन्यासाय, अन्यत्र पादविक्षेपाय) आगे रखने के लिए, **उद्धृतम्** = (उत्क्षिप्तम्, उपरिकृतम्) उठाए गए, **पदम्** = (चरणम्, पदाम्) पैर को, **उद्वहन्ती** = (धारयन्ती, दधाना) सम्भालती हुई (उठाये हुए पैर को ज्यों का त्यों सम्भालती हई), **शैलाधिराजतनया** = (गिरीशपुत्री, हिमालयपुत्री) पर्वतराज हिमालय की पुत्री, **मार्गाचलव्यतिकराकुलिता** = (पथपर्वतरोधसम्भ्रमिता, अध्वपर्वतारोधसम्भ्रान्ता) मार्ग में पर्वत के अवरोध से आकुलित, **नदी** = स्रोतस्विनी, **सिन्धुः** = (सरिता) नदी, **इव** = के समान, **न ययौ** = (प्रियतमावलोकनकौतुकहर्षवशात् न जगाम, न प्रतस्थे) न तो जा सकी, **न तस्थौ** = (लज्जया न स्थितवती/अतिष्ठत्) और न ही रुक सकी।

भावार्थ → अचानक अपने सामने प्रकट हुए प्रियतम शिव को देखकर पार्वती हर्ष, लज्जा,संकोच और भय के कारण काँपने लगी तथा उनका शरीर पसीने से भींग गया। जाने के लिए आगे बढाए गये कदम वहीं रूक गए। हतप्रभ पार्वती न तो आगे बढ़ सकी और न ही अपने बढाए गए पैर को वापस खींच सकी। इस स्थिति की उपमा देते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार प्रवहमान नदी के मार्ग में अचानक पर्वत उपस्थित हो जाता है तो उस पर्वत से टकराकर नदी का जल न तो आगे बढ़ पाता है और न ही वापस लौट पाता है; अपितु वहीं पर उमड़ता घुमड़ता रह जाता है। किंकर्तव्यविमूढ पार्वती की भी ऐसी ही स्थिति उस समय हो गयी थी।

भावार्थः → अकस्मात् स्वपुरतः साक्षात् प्रियतमं शिवमवलोक्य पा-

र्वत्या हृदये स्थितः रतिनामकः सात्विकभावः प्रकटितो जातः येन तस्याः शरीरं स्वेदयुक्तं जातम्। तदा तस्मात् स्थानात् अन्यत्र गमनाय सा पार्वती उत्थितं चरणं तथैव दधाना तथैव क्षणं स्तम्भसदृशं स्थिराऽभवत्। तस्याः तादृशी स्थितिः जाता यथा नदीजलप्रवाहमार्गे अकस्मात् पर्वतः समुपस्थितो भवति। तदा सा पर्वती परवशीभूता नदीव लज्जया न गन्तुं प्रवृत्ता न चैव गमनोद्यमात् विरामेत्यर्थः।

व्याकरणम् → **तम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **वीक्ष्य** - (वि+√ईक्ष्+ल्यप्) वि उपसर्ग पूर्वक √ईक्ष् दर्शने+क्त्वा के स्थान पर ल्यप्, अव्ययपद। **वेपथुमती** - (वेपथु+मतुप्+ङीप) वेपथुः अस्यास्तीति वेपथुमती - वेपथु+मतुप्+ङीप्, प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सरसाङ्गयष्टिः** - रसेन सहिता सरसा (सह पूर्वपद - बहु॰ समास), अङ्गमेव यष्टिः (कर्मधा॰ समास) अङ्गयष्टिः, सरसा अङ्गयष्टिः यस्याः सा (बहु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **निक्षेपणाय** - निक्षिप्यतेऽनेन नि उपसर्ग पूर्वक+क्षिप्+ल्युट्, च॰वि॰, एक॰व॰। **उद्धृतम्** - (उत्+√धृ+क्त) उत् उपसर्ग - √धृ+क्त - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **पदम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **उद्वहन्ती** - (उत्+√वह्+शतृ+ङीप) उत् उपसर्ग पूर्वक √वह् प्रापणे, शतृ+ङीप् स्त्रीत्व में प्र॰वि॰, एक॰व॰। **शैलाधिराजतनया** - अधिको राजा अधिराजः, शैलानाम् अधिराजः (ष॰ तत्पु॰ समास) शैलाधिराजः तस्य तनया (ष॰ तत्पु॰ समास) प्र॰वि॰, एक॰व॰। **मार्गाचलव्यतिकराकुलिता** - (वि+अति+√कृ+अप्) मार्गे अचलः (सप्त॰ तत्पु॰ समास) मार्गाचलः तस्य व्यतिकरः (ष॰ तत्पु॰ समास) मार्गचलव्यतिकरः तेन आकुलिता (तृ॰ तत्पु॰ समास) सा प्र॰वि॰, एक॰व॰। **सिन्धुः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **इव** - अव्ययपद। **ययौ** - (√या+-लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰) √या प्रापणे+परस्मै॰ लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **तस्थौ** - √ष्ठा गति निवृत्तौ, परस्मै॰ लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰।

कोशः → **वेपथुः** - वेपथुः कम्पोऽथ। **अचल/शैल** - अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचल शैलशिलोच्चयः। **मार्ग** - अयनवर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः। **सिन्धु** - देशे नदविशेषेषु शेऽब्धौ सिन्धुना सरिद्। **पदम् -** पदं व्यवसितं त्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु। इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → प्रस्तुत पद्य में अचानक शिव के उपस्थित होने पर पार्वती की तुलना उस नदी से की गई है जिसके मार्ग में अचानक पर्वत के उपस्थित हो जाने पर नदी का जल न आगे बढ़ पाता है और न ही

पीछे लौट पाता है। यहाँ उपमालंकार है तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

छन्द → इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। इसकी परिभाषा है -

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

वसन्ततिलका छन्द के प्रत्येक चरण में चौदह वर्ण होते हैं तथा क्रमशः तगण (ऽऽ।), भगण (ऽ। ।), जगण (। ऽ।) जगण (। ऽ।) दो गुरु - इस क्रम में वर्ण होते हैं-

तगण	भगण	जगण	जगण	गु गु
ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ।	। ऽ।	ऽ ऽ

तं वीक्ष्य वेपथु मतीस रसाङ्ग यष्टिः

टिप्पणी → प्रायः अश्वघोष के सौन्दरनन्द महाकाव्य के निम्न पद्य -

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।

सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंतरङ्गेष्विव राजहंसः॥

में आये "न ययौ न तस्थौ" पद प्रकृत पद्य में भी आने से तुलना की जाती है, इससे अश्वघोष पर कालिदास का प्रभाव देखा जा सकता है। यद्यपि कुछ आलोचक अश्वघोष को कालिदास का पूर्ववर्ती सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, जो शोध का विषय है।

86

प्रसङ्ग → स्वयं के प्रति अनन्य आसक्ति और प्रेम को देखकर शिव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। पार्वती को कठोर तप का फल प्रदान करते हुए स्वयं को तप से खरीदा हुआ दास बताते हैं -

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्लाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते॥

(सञ्जी०) अद्येति। **चन्द्रमौलौ** शिवे। **हे अवनताङ्गि** पार्वति! अद्य प्रभृति। अस्माद्दिनादारभ्येत्यर्थः। प्रभृतियोगादद्येति सप्तम्यर्थवाचिना पञ्चम्यर्थो लक्ष्यते। **तव तपोभिः क्रीतः**। दासृ दाने। दासत आत्मानं ददातीति **दासः अस्मीति वादिनि** वदति सति। **सा** देवी **अह्लाय** सपदि। 'स्रग्झटित्यञ्जसाह्लाय द्राङ्झङ्क्षु सपदि द्रुते' इत्यमरः। **नियमजं** तपोजन्यं **क्लेमं** क्लेशं **उत्ससर्ज**। फलप्राप्त्या क्लेशं विसस्मारेत्यर्थः। तथाहि। **क्लेशः फलेन** फल-

सिद्ध्या **पुनर्नवतां विधत्ते**। पूर्ववदेवाक्लिष्टतामापादयतीत्यर्थः। सफलः क्लेशो न क्लेश इति भावः॥

(शिशु०) अद्येति। भो अवनताङ्गि! अवनतमंसलक्षणमङ्गं यस्यास्तत्सम्बुद्धौ गौरि! अद्यप्रभृति प्रारभ्य तपोभिः क्रीतस्तव दासोऽस्मि। इति चन्द्रमौलौ हरेर्वादिनि वदति सति सोमाऽह्नाय तत्क्षणान्नियमजं व्रतजनितं क्लममुपतापमुत्ससर्जात्याक्षीत्। कथमित्याह। हि यतः क्लेशः फलेन पुनर्नवतां विधत्ते। किंतु फलदर्शनात्। क्लेशो न भवतीत्यर्थः। अह्नयेति निपातः॥

अन्वयः → 'हे अवनताङ्गि! अद्य प्रभृति तव तपोभिः क्रीतः दासः अस्मि ' इति चन्द्रमौलौ वादिनि, सा अह्नाय नियमजं क्लमम् उत्ससर्ज। हि क्लेशः फलेन पुनः नवतां विधत्ते।

अनुवाद → हे विनम्र अङ्गों वाली पार्वती! आज से मैं तुम्हारी तपस्या से खरीदा हुआ दास हूँ ऐसा चन्द्रशेखर शिव के बोलने पर वह पार्वती तुरन्त ही तपोजन्य कष्ट को भूल गई (त्याग दी)। क्योंकि कार्य सिद्धि हो जाने पर समस्त क्लेश स्वतः ही भूलकर व्यक्ति पुनः नवीनता को धारण कर लेता है।

शब्दार्थ → **अवनताङ्गि** = (हे नम्रशरीरे गौरि, अवनतावयवे) हे नम्र शरीर पार्वती! **अद्य प्रभृति** = (अस्माद् दिनात् आरभ्य, अस्माद् दिवसाद् आरभ्य) आज से, **तव** = (भवत्याः, ते) तुम्हारे, **तपोभिः** = (नियमैः, तपश्चरणैः)तपस्या के द्वारा, **क्रीतः** = (स्वायत्तीकृतः, वशीकृतः) खरीदा गया, **दासः** = (सेवकः, भृत्यः) अनुचर, **अस्मि** = हूँ। **इति** = (इत्थम्, एवम्) इस प्रकार, **चन्द्रमौलौ** = (चन्द्रशेखरे शिवे) चन्द्रशेखर शिव के, **वादिनि** = (कथिते सति, कथयति सति) कहने पर, **सा** = (पार्वती)उस पार्वती ने, **अह्नाय** = (शीघ्रम् सपदि, झटिति) तुरन्त ही, **नियमजम् =** (तपोजन्यम्, तपोव्रतजनितम्) तपस्या व्रतादि नियमों के पालन से उत्पन्न, **क्लमम्** = (क्लेशम्, श्रमम्) क्लेश/कष्ट को, **उत्ससर्ज** = (त्यक्तवती, फलप्राप्त्या क्लेशं विसस्मार, परित्यक्तवती) त्याग दिया, **हि** = (यतः) क्योंकि, **क्लेशः** = (दुखम्, कष्टं, श्रमः) कष्ट, **फलेन** = (फलोपलब्धिना, फलसिद्धया, फलप्राप्त्या) फल प्राप्ति के उपरान्त, **पुनः =** (भूयः) फिर से, **नवताम्** = (नूतनताम) नवीनता को, **विधत्ते** = (धारयति विघाति, विदधाति) धारण कर लेता है।

भावार्थ → पार्वती की कठोर तपस्या से प्रसन्न शिव ने तप के फल के रूप में आत्मसमर्पण कर दिया। वे पार्वती से कहते हैं कि ''हे पार्वती!

मैं आज से तुम्हारा खरीदा हुआ दास हूँ'' इस कथन को सुनकर पार्वती ने अपने तपजन्य समस्त क्लेशों का परित्याग कर दिया। क्योंकि कार्य की सिद्धि होने पर श्रमजन्य समस्त क्लेश स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। पार्वती ने तपजन्य समस्त क्लेशों को सहा तथा अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं हुई। ब्रह्मचारी के द्वारा पार्वती की मानसिक दृढ़ता की परीक्षा किए जाने पर भी वह सफल रही और अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। इससे यह सिद्ध होता है कि निष्ठापूर्वक किया गया तप फलदायी होता है।

भावार्थः → हे विनयशीले पार्वति! अहमद्यारभ्य तव तपोभिः क्रीतो दासः जातः इत्येवं शिवे कथयति सति सा पार्वति तत्काले तपोजन्यं क्लेशं विसस्मार। यतो हि फलसिद्ध्या श्रमजन्यक्लेशः खलु क्लेशो न गण्यते जनैरिति भावः।

व्याकरणम् → **हे अवनताङ्गि**! - अवनतम् अङ्गम् यस्याः सा अवनताङ्गी (बहु॰ समास) सम्बोधने प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अद्य** - अव्ययपद। **प्रभृति** - अव्ययपद। **तव** - ष॰वि॰, एक॰व॰। **तपोभिः** - तृ॰वि॰, बहु॰व॰। **क्रीतः** - √डुक्रीञ् - द्रव्यविनिमये+क्त+प्र॰वि॰, एक॰व॰। **दासः** - √दास दाने+प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अस्मि** - √अस् भुवि+परस्मै॰, उ॰पु॰, एक॰व॰। **चन्द्रमौलौ** - चन्द्रः मौलौ यस्य सः (बहु॰ समास) तस्मिन् सप्त॰ वि॰, एक॰व॰। **वादिनि** - √वद+णिनि, सप्त॰वि॰, एक॰व॰। **सा** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **अह्नाय** - अव्ययपद। **नियमजं** - जायते इति नियमजः (उपपद तत्पु॰ समास) तम्। नियमाज्जातः 'पञ्चम्यामजातौ' सूत्र से नियम उपपद रहते √जन् धातु से 'डः' प्रत्यय द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **क्लमम्** - द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **उत्ससर्ज** - उत्+√सृज विसर्गे, परस्मै॰, लिट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰। **क्लेशः** - प्र॰वि॰, एक॰व॰। **फलेन** - तृ॰वि॰, एक॰व॰ 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र से तृ॰वि॰। **नवताम्** - नवस्य भावः कर्म वा नवता - नव+तल् 'तस्य भावः त्वतलौ' सूत्र से, द्वि॰वि॰, एक॰व॰। **विधत्ते** - वि उपसर्ग पूर्वक √डुधाञ् धारणे+आत्मने॰, लट् लकार, प्र॰पु॰, एक॰व॰, जुहोत्यादिगण की धातु होने से द्वित्व।

कोशः → **दास** - भृत्ये दासेरदासेयदासगोप्यकचेटकाः। नियोज्यकिङ्करप्रैष्यभुजिष्यपरिचारकाः। **चन्द्रमौलि** - चन्द्रमौलिः सदाशिवः। (विष्णुधर्मोत्तरे) **अह्नाय** - स्राग्झटित्यञ्जसाह्नायद्राङ्मङ्क्षु सपदि द्रुते। **क्लम** - प्राधारः क्लमथ क्लमे। **क्लेश** - आदीनवास्रवौ क्लेशे। **नियम** - संविदागूः प्रतिज्ञानं नियमाश्रयसंश्रयाः। **नव** - प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो

नवः॥ इत्यमरकोशः।

अलङ्कार → "प्रस्तुत पद्य में अभीष्ट वर की प्राप्ति के उपरान्त पार्वती ने तपजन्य अपने समस्त कष्टों को भूला दिया" इस विशिष्ट कथन का समर्थन "फल प्राप्ति के उपरान्त कष्ट समाप्त हो जाता है और नवीनता आ जाती है" इस सामान्य कथन से किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

महाकवि कालिदास ने इस सर्ग का आरम्भ और समापन दोनों अर्थान्तरन्यास अलङ्कार से किया है। सर्गारम्भ में प्रश्न कथन है कि उस सौन्दर्य से क्या लाभ जो प्रियतम को न आकृष्ट कर सके? इस प्रश्न का समाधान सर्गान्त में किया गया कि तप से सौन्दर्य भी सार्थक हो जाता है। पार्वती के कठोर तप से शिव स्वयं को पार्वती का दास घोषित कर देते हैं। इसी फलप्राप्ति (फलश्रुति) के कारण इस सर्ग का नाम 'फलोदय' सार्थक हुआ। लक्षण परिशिष्ट में देखें।

छन्द → इस पद्य में भी वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण पूर्ववत्।

॥इति कालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये पार्वतीतपः फलोदयो नाम पञ्चमः सर्गः॥

कुमारसम्भव में प्रयुक्त प्रमुख अलङ्कारों का विवेचन

(विस्तृत व्याख्या हेतु लेखककृत 'अलङ्कारभूषण' देखें)

1.अर्थान्तरन्यास

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। - का॰प्र॰ 65.109

जहाँ सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से (कारण द्वारा कार्य का अथवा कार्य द्वारा कारण का) साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के माध्यम से समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास नामक अलङ्कार होता है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. इसमें किसी पदार्थ का अन्य पदार्थ द्वारा समर्थन होता है।
2. इसमें दो अर्थ परस्पर भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं।
3. प्रथम पदार्थ से द्वितीय पदार्थ के भिन्न होते हुए भी उनकी सङ्गति हो जाती है।
4. इसमें समर्थनीय वाक्य की पुष्टि के लिए कारण निर्देश सहित किसी विशिष्ट शब्द का प्रयोग वाञ्छनीय होता है।
5. यह गम्यौपम्यसादृश्यमूलक अलङ्कार है। अर्थात् इसके मूल में सादृश्य होता है किन्तु वह शाब्द न होकर आर्थ या व्यङ्ग्य होता है।
6. इसमें साधर्म्य और वैधर्म्य इन दोनों ही स्थितियों में सामान्य का विशेष
   और विशेष का सामान्य से समर्थन होता है।
7. यह कविकल्पनाप्रसूत न होकर कवि के अनुभव पर अवलम्बित होता है।

इस अलङ्कार की चार स्थितियाँ होती हैं -

(क) सामान्य का विशेष से साधर्म्य द्वारा समर्थन
(ख) सामान्य का विशेष से वैधर्म्य द्वारा समर्थन
(ग) विशेष का सामान्य से साधर्म्य द्वारा समर्थन
(घ) विशेष का सामान्य से वैधर्म्य द्वारा समर्थन

2. उत्प्रेक्षा

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। - का॰प्र॰ 10.92

उपमेय (प्रकृत या प्रस्तुत वस्तु) में उपमान (अप्रकृत या अप्रस्तुत वस्तु) की सम्भावना करना ही उत्प्रेक्षा है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. यह अभेदप्रधान साधर्म्यमूलक अलङ्कार है।
2. इसमें उच्च कोटि के पदार्थ की सम्भावना होती है किन्तु यह सम्भावना सन्देह और निश्चय के बीच की स्थिति वाली होती है।
3. यहाँ स्वरूप, हेतु या फल की अन्य रूप में सम्भावना व्यक्त की जाती है।
4. यह सम्भावना सदा कविकल्पित या आहार्य होती है।
5. सम्भावना के वाचक शब्द - इव, मन्ये, ध्रुवम् आदि का प्रयोग करने पर वाच्या उत्प्रेक्षा होती है। वाचक शब्द का प्रयोग न होने पर गम्या या प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा होती है।

उत्प्रेक्षा दो प्रकार की होती है -

(क) **वाच्या** - जहाँ मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः, नूनम्, इव आदि उत्प्रेक्षा के वाचक शब्दों का प्रयोग होता है उसे वाच्या उत्प्रेक्षा कहते हैं।

(ख) **प्रतीयमाना** - जहाँ वाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता है उसे प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा कहते हैं।

3.उपमा

साधर्म्यमुपमा भेदे। - का॰प्र॰ 10.125

भिन्न पदार्थों के सादृश्य प्रतिपादन को उपमा कहते हैं। उपमा अलङ्कार में एक ही वाक्य में दो पदार्थों का वैधर्म्य रहित तथा वाच्य रूप सादृश्य होता है। यहाँ वैधर्म्ययुक्त पदार्थों का सादृश्य-वर्णन चमत्कार-जनक होता है जो कविप्रतिभाप्रसूत होता है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. यह भेदाभेद प्रधान साधर्म्यमूलक अलङ्कार है।
2. उपमा में गुणक्रियादि धर्म के आधार पर एक वस्तु की तुलना किसी अन्य वस्तु से की जाती है।
3. इसके चार तत्त्व होते हैं - उपमेय, उपमान, साधारण-धर्म तथा वाचक-शब्द। चारों तत्त्वों का प्रयोग होने पर पूर्ण उपमा होती है और एक या

अधिक का अभाव होने पर लुप्तोपमा होती है। मम्मट के अनुसार उपमा दो प्रकार की होती है - पूर्णोपमा और लुप्तोपमा।

4. दीपक

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्॥ - सा॰द॰ 10.48-49

जहाँ अप्रस्तुत (अप्रकृत या उपमान) तथा प्रस्तुत (प्रकृत या उपमेय) पदार्थों में से एक ही धर्म का सम्बन्ध बताया जाय अथवा क्रियाओं का एक ही कारक हो तो वहाँ दीपक अलङ्कार होता है।

इस अलङ्कार की संकल्पना 'दीपकन्याय' पर आश्रित है। जिस प्रकार एक स्थान पर रखा हुआ दीपक अपना प्रकाश चारों दिशाओं में बिखेर कर सभी वस्तुओं को प्रकाशित करता है ठीक उसी प्रकार साधारण धर्म प्रस्तुत और अप्रस्तुत से अन्वित होकर दोनों को प्रकाशित करता है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. दीपक गम्यौपम्यमूलक अलङ्कार है।
2. इसमें एक धर्म का अनेक पदार्थों के साथ अन्वय होने के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है।
3. इसमें एक वाक्य में अनेक पदार्थों का एकधर्माभिसम्बन्ध होता है।
4. कारकदीपक में एक कारक का अनेक क्रियाओं के साथ अन्वय होता है। उसमें औपम्य का होना आवश्यक नहीं है तथा साथ ही किसी भी समान धर्म का सङ्केत नहीं किया जाता है।
5. मालादीपक में क्रमिक पदार्थ एक दूसरे के उपकारक बनते जाते हैं। इनका धर्म एक ही होता है तथा उसका उल्लेख भी केवल एक ही बार किया जाता है। इनमें परस्पर कोई औपम्य नहीं होता है।

5. दृष्टान्त

दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्॥ - का॰प्र॰ 10.155

उममान, उपमेय उनके विशेषण और साधारण धर्म इन सबका बिम्बप्रतिबिम्बभाव होने पर दृष्टान्तालङ्कार होता है। दृष्टान्त का अर्थ है उदाहरण। इसमें किसी बात को कहकर उसकी पुष्टि के लिए तत्सदृश अन्य बात कही जाती है। इसमें उपमान और उपमेय के साधारण धर्म भिन्न-भिन्न होते हैं। इसकी विशेषता इस प्रकार है -

☞ ***ध्यातव्य तथ्य : -***

1. दृष्टान्त गम्यौपम्यमूलक अलङ्कार है।
2. इसमें दो वाक्य होते हैं - एक उपमेयवाक्य तथा दूसरा उपमानवाक्य।
3. ये दोनों वाक्य स्वतन्त्र या परस्परनिरपेक्ष होते हैं।
4. उपमेयवाक्य तथा उपमानवाक्य के धर्म भिन्न-भिन्न (बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव युक्त) होते हैं।
5. यह बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव धर्म एवं धर्मी दोनों में होता है।
6. यह साधर्म्यगत तथा वैधर्म्यगत दोनों तरह का होता है।
7. वैधर्म्यदृष्टान्त में उपमेय वाक्य या तो विधिपरक होता है या निषेध परक तथा उपमानवाक्य उसका बिलकुल उलटा होता है।

6. परिकर

उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः। - सा॰द॰ 10.59

जहाँ साभिप्राय विशेषणों (तीन या उससे अधिक) का प्रयोग किया जाता है वहाँ परिकर अलङ्कार माना जाता है। परिकर का शाब्दिक अर्थ है - उत्कर्षक वस्तु। इस अलङ्कार में अभिप्राय युक्त विशेषणों का प्रयोग होने से कथन में उत्कर्ष हो जाता है। यह उत्कर्ष ठीक उसी प्रकार आता है, जैसे सुन्दर उपकरण के प्रयोग से किसी वस्तु का सौन्दर्य बढ़ जाता है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. परिकर अलङ्कार में साभिप्राय विशेषण का प्रयोग होता है।
2. साभिप्राय विशेषणों के होने पर इस अलङ्कार में विशेष चमत्कार पाया जाता है।
3. परिकरालङ्कार में कवि व्यङ्ग्यार्थ प्रतीत होने वाले विशेषणों का प्रयोग करता है। यह विशेषण वाच्यार्थ का उपकारक होता है।
4. द्रव्य, गुण, क्रिया और जाति ये इसके चार भेद हैं।

7. प्रतिवस्तुपमा

प्रतिवस्तूपमा सा स्याद् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक्॥

- सा॰द॰10.45-50

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों में एक ही साधारण धर्म को भिन्न-भिन्न शब्दों से कहा जाय तो वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होता है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. यह गम्यौपम्यमूलक अलङ्कार है।
2. इसमें दो स्वतन्त्र वाक्यों का प्रयोग होता है, जिसमें एक वाक्य उपमेय तथा दूसरा वाक्य उपमान होता है।
3. प्रत्येक वाक्य में साधारण धर्म का निर्देश किया जाता है।
4. यह साधारण धर्म एक ही होता है किन्तु विभिन्न वाक्यों में भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा निर्दिष्ट होता है।
5. दोनों वाक्यों के साधारण धर्मों में परस्पर वस्तु- प्रतिवस्तुभाव होता है।
6. गम्यौपम्यमूलक अलङ्कार होने के कारण इसमें प्रकृत तथा अप्रकृत का सादृश्य अभिहित नहीं होता है अपितु उसकी केवल व्यञ्जना होती है।
7. इसमें न केवल साधर्म्य के द्वारा अपितु वैधर्म्य के द्वारा भी सादृश्य का निबन्धन होता है।

9. रूपक

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। - का॰प्र॰ 10.93

अतिशय सादृश्य के कारण प्रसिद्ध भेद के रहने पर भी उपमान और उपमेय में अभेद का वर्णन करना रूपकालङ्कार कहलाता है।

☞ ***ध्यातव्य तथ्य -***

1. रूपक अभेदप्रधान साधर्म्यमूलक अलङ्कार है।
2. इसमें सादृश्य सम्बन्ध (गौणी सारोपा) का लक्षण होना आवश्यक है।
3. इसमें उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है, अर्थात् यहाँ उपमेय को उपमान के रंग में रंग दिया जाता है।
4. यह आरोप सदा कविकल्पित एवं आहार्य होना चाहिए; वास्तविक या अनाहार्य नहीं।
5. इसमें आरोप सदा चमत्कारी होता है अन्यथा उसमें 'गौर्वाहीक' की तरह प्रयोग से रूपक अलङ्कार नहीं होगा।
6. उपमेय पर उपमान का आरोप शब्दगत होता है अर्थगत नहीं। अन्यथा वहाँ अर्थगत होने पर रूपक न होकर निदर्शना अलङ्कार हो जायेगा।

रूपक के तीन प्रमुख भेद हैं -

1. **निरङ्ग -** जहाँ अङ्गों के बिना उपमान का उपमेय में आरोप हो, वहाँ निरङ्गरूपक होता है।

2. **साङ्ग (सावयव)** - जहाँ अङ्गों सहित उपमान का उपमेय में आरोप हो, वहाँ साङ्गरूपक होता है।

3. **परम्परित -** जहाँ एक आरोप दूसरे आरोप का कारण हो वहाँ परम्परित

रूपक होता है। परम्परा का अर्थ है शृंखला। इसमें कई आरोप एक शृंखला के रूप में होते हैं तथा एक आरोप दूसरे आरोप पर टिका होता है।

10. वक्रोक्ति

यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।

श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वत्रोक्तिस्तथा द्विधा॥ - का॰प्र॰ 9.78

वक्ता के द्वारा किसी अन्य अभिप्राय: से कहे गये वाक्य को यदि श्रोता उससे भिन्न (विपरीत) तात्पर्य से अर्थ लगा लेता है तो वहाँ वक्रोक्ति नामक अलङ्कार होता है। वक्रोक्ति का चमत्कार श्लेष के कारण होता है

वक्रोक्ति का अर्थ है वक्र (टेढ़ी) उक्ति (कथन) अर्थात् कथन को टेढ़ा करना। अर्थात् जहाँ वक्ता के इष्टार्थ से सर्वथा भिन्न तात्पर्य ग्रहण की योजना होती है वहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार होता है। इस प्रकार के भिन्न अर्थ की कल्पना दो कारणों से सम्भव होती है-(1) श्लेष से या (2) काकु से।

☞ **ध्यायव्य तथ्य -**

1. वक्रोक्ति मुख्य रूप से श्लेष पर आश्रित होती है। इसका चमत्कार श्लेषाश्रित होता है।
2. इसमें वक्ता द्वारा कहे गये वाक्य के अर्थ को श्रोता उससे भिन्न अर्थ कल्पित कर देता है। अर्थात् वक्ता के कथन के अभिप्राय: से भिन्न अर्थ की योजना कर श्रोता उसका उत्तर देता है।
3. यह अर्थ परिवर्तन जान-बुझकर वक्ता या श्रोता द्वारा किया जाता है; जिससे कथन में चमत्कार उत्पन्न होता है। अर्थ परिवर्तन में निम्न तथ्य विचारणीय हैं -

(क) वक्ता द्वारा विशेष अभिप्राय से कथन।

(ख) उत्तरदाता द्वारा सुनते ही उसके पदों को तोड़कर जान-बूझकर उससे भिन्न उत्तर देना या वक्ता के कथन का अर्थान्तर कर देना।

(ग) वक्ता के अन्यार्थक वाक्य का श्रोता द्वारा श्लेष या काकु की

सहायता से अर्थान्तर कर देना।

4. चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कहीं श्लिष्ट शब्दों की सहायता से और कहीं काकु (कण्ठध्वनि-विकार) द्वारा अर्थान्तर का नियोजन किया जाता है।
5. छेकापह्नुति एवं वक्रोक्ति में साम्य होते हुए भी भिन्नता है। छेकापह्नुति में वक्ता अपने ही कथन को छिपाकर उसका अर्थ बदल देता है किन्तु वक्रोक्ति में अन्य की उक्ति को उलट कर श्रोता भिन्न अर्थ की कल्पना
कर लेता है।

11. व्यतिरेक

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्यूनताऽथवा।
व्यतिरेक.....।। - सा॰द॰ 10.55

उपमान की अपेक्षा उपमेय का व्यतिरेक (अधिकता या न्यूनता) का वर्णन ही व्यतिरेक अलङ्कार है।

व्यतिरेक का अर्थ है विशेष प्रकार का अतिरेक या आधिक्य।

☞ ***ध्यातव्य तथ्य :-***

1. इसमें उपमेय का उपमान से आधिक्य या न्यूनता वर्णित की जाती है। मम्मट तथा जगन्नाथ केवल उपमेय के आधिक्य में ही व्यतिरेक मानते
हैं, जबकि रुय्यक तथा अप्पय दीक्षित उपमान के आधिक्य वर्णन (उपमेय के न्यूनता वर्णन) में भी व्यतिरेक अलङ्कार मानते हैं।
2. इसमें उपमेय तथा उपमान के उत्कर्ष हेतु तथा अपकर्ष हेतु इन दोनों का अथवा किसी एक का निर्देश होना चाहिए अथवा दोनों के प्रसिद्ध होने के कारण उनका अनुपादान भी सकता है।
3. व्यतिरेक में दो पदार्थों में भिन्नता बताई जाती है। किन्तु कवि उनमें व्यञ्जना द्वारा सादृश्य को उपस्थित कर देता है।

12. सहोक्ति

सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्।

- का॰प्र॰ 10.170.112

'सह' अर्थ वाले शब्दों के द्वारा जहाँ एक ही शब्द से दो अर्थों का ज्ञान हो वहाँ सहोक्ति अलङ्कार होता है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. सहोक्ति गम्यौपम्याश्रय अलङ्कार है।
2. सहोक्ति में अनेक पदार्थों के साथ एक ही धर्म का उल्लेख होता है। इनमें एक पदार्थ (धर्मी) सदा प्रधान होता है, अन्य पदार्थ (धर्मी) गौण होते हैं। प्रधान धर्मी का प्रयोग कर्ता कारक में तथा गौण धर्मी का प्रयोग करण कारक में होता है।
3. प्रायः इसमें प्रधान धर्मी उपमेय तथा गौण धर्मी उपमान होता है, किन्तु कभी-कभी उपमान कर्ता कारक में तथा उपमेय करण कारक में भी होता है।
4. सहोक्ति के वाचक शब्द सह, साकम्, सार्धम् और समम् इत्यादि हैं, किन्तु कभी-कभी वाचक शब्द के अभाव में भी सहार्थ की विवक्षा होने पर सहोक्ति हो सकती है।
5. सहार्थ विवक्षा में चमत्कार होने पर ही सहोक्ति अलङ्कार होता है। सामान्य प्रयोग होने पर (सहयुक्तऽप्रधाने सूत्र से सामान्य व्याकरण -सम्मत प्रयोग) अलङ्कार नहीं होगा।

13. स्वभावोक्ति

स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तुवर्णनम्॥ - प्रतापरुद्रीयम् 8.128

किसी वस्तु (जाति, स्वभाव या गुण) का यथावत् सुन्दर वर्णन करना ही स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

☞ **ध्यातव्य तथ्य -**

1. इसमें किसी पदार्थ विशेषतः बालक, पशु आदि की चेष्टा या स्वभाव की रमणीयता का यथावत् वर्णन होता है।
2. इस वर्णन में उसके विविध अङ्गों का सूक्ष्म चित्रण होता है।
3. यह वर्णन चमत्कारयुक्त होता है।
4. कवि वर्णन में अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन करता है न कि तथ्य मात्र का शुष्क वर्णन करता है।

14. विषम

विषमं यदनौचित्यादनेकान्वयकल्पनम्।

अनौचित्य के कारण अनेक वस्तुओं में अन्वय (सम्बन्ध) की कल्पना किए जाने के कारण विषम अलङ्कार होता है।

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	संख्या	श्लोक	संख्या
अकिञ्चनः सन्प्रभवः	77	इयेष सा कर्तुम	
अगूढसद्भाव	62	02	
अतन्द्रिता सा .	14	उपात्तवर्णे चरिते	56
अतोऽत्र किञ्चिद्भवतीं	40	उवाच चैनं परमार्थतो	75
अथाग्रहस्ते मुकुली	63	कदाचिदासन्न	06
अथाजिनाषाढधरः	30	किमित्यपास्या	44
अथानुरूपाभिनि	07	कियच्चिरं श्राम्यसि	50
अथाह वर्णी	65	कुले प्रसूतिः	41
अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि	86	कृताभिषेकां	16
अनेन धर्मः	38	क्लमं ययौ	19
अपि क्रियार्थं	33	चतुष्कपुष्पप्र	68
अपि त्वदावर्जित	34	तं वीक्ष्य वेपथुमती	85
अपि प्रसन्नं	35	तथा प्रसिद्धैर्मधुरं	09
अयाचितोपस्थित	22	तथा समक्षं दहता	01
अयुक्तरूपं किमतः	69	तथातितप्तं सवितुर्ग	21
अरण्यबीजाञ्जलि	15	तदङ्गसंसर्गमवाप्य	79
अलं विवादेन	82	तदा प्रभृत्युन्मदना	55
अलभ्यशोकाभि	43	तमातिथेयी बहुमान	31
अवस्तुनिर्बन्धपरे	66	त्रिभागशेषासु निशासु	57
अवैमि सौभाग्य	49	त्वमेव तावत्परिचिन्तय	67
असम्पदस्तस्य	80	दिवं यदि प्रार्थयसे	45
असह्यहुंकार	54	द्रुमेषु सख्या	60
अहो स्थिरः	47	द्वयं गतं सम्प्रति	71
इति द्विजातौ	74	न वेद्मि सः प्रार्थित	61
इति ध्रुवेच्छामनु	05	निकामतप्ता विविधेन	23
इति प्रविश्याभिहिता	51	निनाय सात्यन्त	26
इतो गमिष्याम्यथवेति	84	निवर्तयास्माद	73
इयं च तेऽन्या पुरतो	70	निवार्यतामालि	83
इयं महेन्द्रप्रभृतीन	53	**श्लोक**	**संख्या**

श्लोक	संख्या
निवेदितं निश्वसितेन	46
निशम्य चैनां तपसे	03
पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया	13
प्रतिक्षणं सा कृतरोम	10
प्रयुक्तसत्कार	39
भवत्यनिष्टादपि	42
मनीषिताः सन्ति	04
महार्हशय्या	12
मुखेन सा पद्म	27
मुनिव्रतैस्त्वाम	48
मृणालिकापेल	29
यथा श्रुतं वेदविदां	64
यदा च तस्याधिगमे	59
यदा फलं पूर्वतपः	18
यदा बुधैः सर्वगत	58
यदुच्यते पार्वति!	36
वपुर्विरूपाक्ष	72
विकीर्णसप्तर्षि	37
विधिप्रयुक्तां परिगृह्य	32
विपत्प्रतीकारपरेण	76
विभूषणोद्भासि	78
विमुच्य सा हार	08
विरोधिसत्त्वोज्झि	17
विवक्षता दोषमपि	81
विसृष्टरागाद	11
शिलाशयां ताम	25
शुचौ चतुर्णां	20
सखी तदीया	52
स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु	24
स्वयं विशीर्णदु	28

परिशिष्ट 1

कुमारसम्भव (पञ्चम सर्ग) के अन्तर्गत आये हुये

सुभाषित

श्लोक	संख्या
1. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।	- 01
2. पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।	- 04
3. कः ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।	- 05
4. न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते।	- 09
5. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।	- 16
6. भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः।	- 31
7. शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।	- 33
8. सतां संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते।	- 39
9. पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं प्रसारयेत पन्नगरत्नसूचये।	- 43
10. वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते।	- 44
11. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।	- 45
12. सचेतसः कस्य मनो न दूयते।	- 48
13. न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम्।	- 49
14. मनोरथानामगतिर्न विद्यते।	- 64
15. अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया।	- 73
16. अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।	- 75
17. न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।	- 77
18. न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते।	- 82
19. न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।	- 83
20. मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनयान ययौ न तस्थौ।	- 85
21. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।	- 86

परिशिष्ट 2

कालिदास के सम्बन्ध में कही गई उक्तियाँ

1. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ गौरवम्।
   दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।
2. उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम।
   अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते॥
3. काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
   तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥
4. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्।
   तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः यत्र याति शकुन्तला।।
5. शाकुन्तलचतुर्थोऽङ्कक: सर्वोत्कृष्ट इति प्रथा।
   न सर्वसम्मता यस्मात् पञ्चमोऽस्ति ततोऽधिकः।।
6. पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
   अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।।
7. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
   प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥
   [बाण, हर्षचरित भूमिका श्लोक 13]
8. साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
   शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीलाकालिदासोक्ती ॥
   [गोवर्धनाचार्य, आर्यासप्तशती- भूमिका श्लोक 36]
9. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो।
   भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ॥
   हर्षो हर्षे हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।
   केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥
   जयदेव, प्रसन्नराधव 1/22।
10. भासो रामिलसोमिलौ वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कविः
    मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः स्कन्धः सुबन्धुश्च यः।
    दण्डी वाव दिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः
    सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते ॥
    [राजशेखर, शार्ङ्गधरपद्धति श्लोक 188]
11. एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।

शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

[राजशेखर, सूक्ति- मुक्तावली]

12. माघश्चोरो मयूरो मुररिपुरपरो भारविः सारविद्यः
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्याहवयो भोजराजः।
श्रीदण्डी दिण्डिमाख्यः श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लवो भट्टबाणः
ख्याताश्चान्ये सुबन्ध्वादय इह कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति।।

[विश्वगुणादर्शचम्पू श्लोक 149]

13. धनवन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहरो नृपते सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।

[ज्योतिर्विदाभरण 22/10]

14. येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकना जिनवेश्म।
सः जयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

[एहोल-शिलालेख (पुलकेशीन द्वितीय) शक संवत् 556 (634 ई0)]

15. श्रीकालिदासकविवर्यसरस्वतीयं कि वर्णयाभ्यतितिरां रसवाहिनीति।
यत् कालिका भगवती शुचिभाव योगाद् यस्यामहो मुहुरनुग्रहमादधाति।।

[विठोवामण्णो, सुश्लोक लाघव 417- 18]

16. लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरिः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम् ॥

[दण्डी अवन्तिसुन्दरीकथा- भूमिका, श्लोक 15]

17. कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद् विदुर्नान्ये तु मादृशाः।। [मल्लिनाथ]

18. अनघा गुणसम्पूर्णा समुचितविच्छत्तिवृत्तिरीतिरसौ।
प्रस्तुतरसन्दोहा सरस्वती जयति कालिदासस्य।

19. वाल्मिकेरजनि प्रकाशितगुणा व्यासेन लीलावती
वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्रीकालिदासं वरम्॥
याऽसूतामरसिंहमाघधनिकान् सेयं जरानीरसा
शुन्यालङ्करणा स्खलन्मधुपदा कं वा जनं नाश्रिता।

20. कालिदासकविता नवं वयो माहिषं दधि सशर्करं पयः।
शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्गसौख्यमुपभुञ्जते नराः ॥

21. कवयः कालिदासाद्याः कवयो वयमप्यमी।
पर्वत परमाणौ च पदार्थत्वं प्रतिष्ठितम्।।

22. कविरमरः कविरचलः कविरभिनन्दश्च कालिदासश्च।
अन्ये कवयः कपयश्चापलमात्रं परं दधति॥
23. वयमपि कवयः कवयोऽपि च कालिदासाद्याः।
दृष्टो भवन्ति दृषदश्चिन्तामणयोऽपि हा दृषदः ॥
24. वैदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।
25. सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।
सदश्वदमकस्येव काम्बोजतुरगाङ्गना ॥
26. श्रीकालिदासस्य वचो विचार्य नैवान्यकाव्ये रमते मतिर्मे।
किं पारिजातं परिहृत्य हन्त भृङ्गलिरानन्दति सिन्दुवारे।।
27. रसभारभरोद्भिन्नां भारतीममरादृते।
श्रीमतः कविकालिदासस्य ज्ञातुं कः क्षमः पुमान् ॥ [स्थिरदेव]
28. अपशब्दशतं माधे भारवौ च शतत्रयम्।
कालिदासे न गण्यन्ते कविरेको धनञ्जयः।।
29. पुष्पेषु जाती नगरीषु काञ्ची नदीषु गङ्गा कवि कालिदासः।
30. अस्पृष्टदोषा नलिनीव हृष्टा, हरावली न ग्रथिता गुणौधैः।
प्रियाङ्कपालीव प्रकामहृद्या, न कालिदासादपरस्य वाणी।।
31. भासयत्यपि भासादौ कविवर्गे जगत्त्रयम्।
के न यान्ति निबन्धारः कालिदासस्य दासताम्।।
32. अस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो।
द्वित्राः पञ्चसा एव वा महाकाव्य इति गण्यन्ते।।
[आनन्दवर्धनाचार्य]
33. ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः, शुद्धा सुदा स्वादुमती च यस्य।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसिन्धोः परं पारमवीप कीतिः।।
[सोड्ढल]